ISSN: 0971-8478

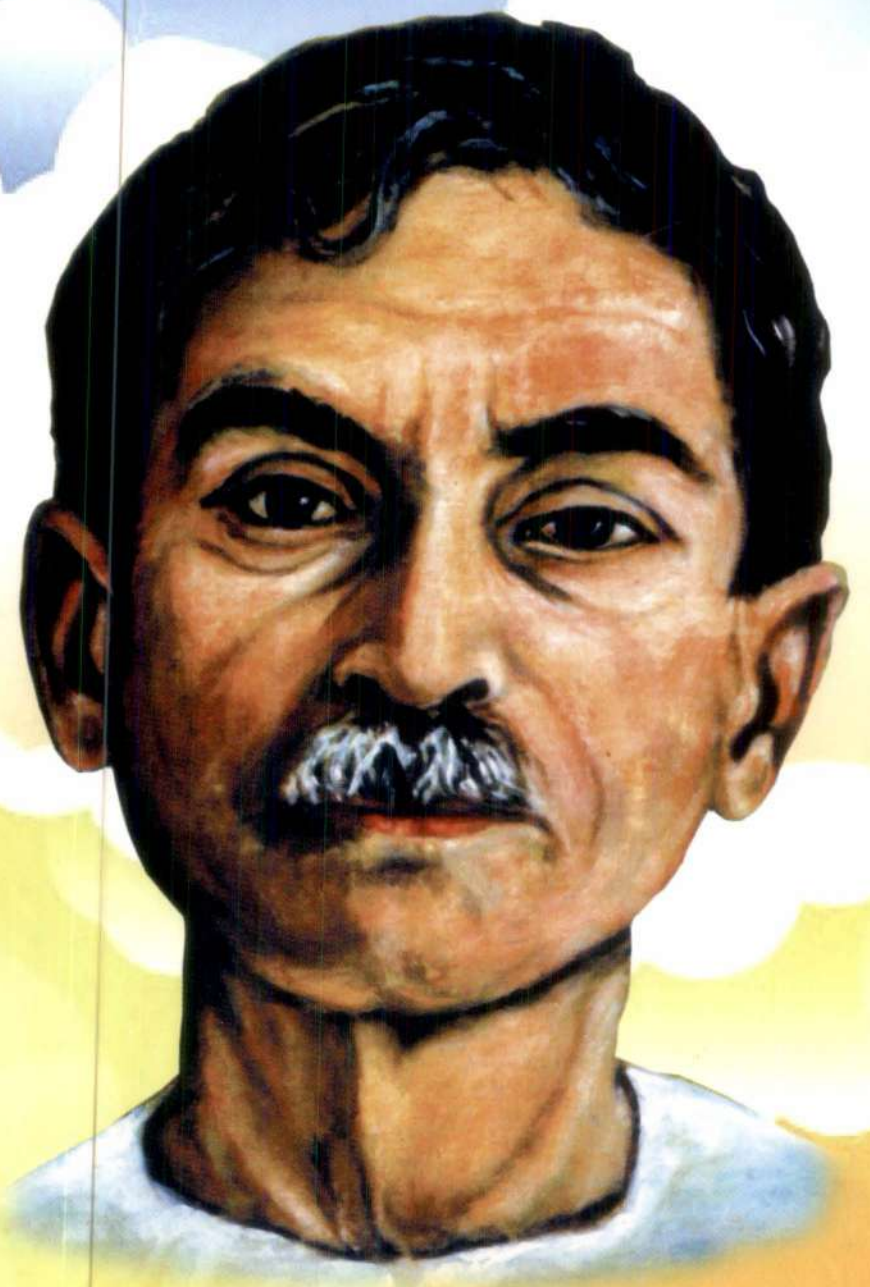
1945 से प्रकाशित

जुलाई 2015

₹ 10

आजकल

साहित्य और संस्कृति का मासिक



प्रेमचंद का विचार : गांधीवाद या समाजवाद
प्रेमचंद के पत्र-संकलन
प्रेमचंद की वंशावली
महोबा.....यहां रहते थे प्रेमचंद
दुर्लभ रचना : शकुंतला
गुलेरी और आंचलिकता
रेणु की कहानियों में गीतात्मक प्रयोग
नदियों से हमारा संबंध

दो कविताएं : **राम जैसवाल**

अंजुरी भर गंध

शाम
किसी गुन-गुनाई दुल्हन सी
धीरे, धीरे, पहाड़ी
के उस पार के
गांव में उतरती, चलती, आ रही है,

स्टेशन पर से
गांव-गांव ठहरने वाली
'शटल' गुज़र गई है
उसका सुरमई धुआं
धीरे-धीरे हवा के साथ घुल रहा है,
मंदिर में देवी की आरती
की शंखध्वनि, ध्वनित हो रही है
और पवित्र चंदन की गंध
हवा में तैरने लगी है।

पिछवाड़े के घर में लगे
'जंगल-जलेबी' पर
चिड़ियों के सामूहिक स्वर
घुंघरूओं से बज उठे हैं
और उधर नीचे
पहाड़ियों की तलहटी में
पारदर्शी कोहरे की
चादर तन गई है।

अब रात
किसी गंभीर गृहणी सी
उतरेगी
गोट-लगी, सितारों-जड़ी
नीली साड़ी पहने
उस टेढ़े मुंह वाले—कृष्ण-वक्षी
पंचमी के चंद्रमा के साथ
भोर तक जागेगी
मैं भी, तुम्हारी प्रतीक्षा में
रात भर
चमेली और पारिजात के
फूल चुनूंगा
और सुबह,
अंजुरी में भर कर
तुम्हें
महसूसुंगा।

रहन हो गए इंद्रधनुषी रंग

ये
किस नादीदे की
नज़र लगी कि
आधी रात, टूटे सपने
नींद बेचने लगे,

कि
फूलों से बिछुड़ी गंध
हवा को रंगने लगी
लाख समझाऊं पर भी
समझी नहीं
रूप को सजाती
प्रशंसा से मंत्रविद्ध
बाज़ार में आ लगी।

क्या हुआ, घर को
किस नादीदे की नज़र लगी
कि आंगन में
चहकती गौरयां
आकाश में चटकती-धूप
में समा गईं

हुआ क्या
कि फूल और तितली
के रिश्तों के टूटे हुए
रंगीन पर
और पंखुरियां ही
रह गए डालियों में

भाभी, चाची, बुआ
के नामों पर
ऐसी झाड़ फिरी
कि वे सिर्फ़ नाटकों भर में
रह गए, दर्शन भर
'दूरदर्शन' में
घर-आंगन विष भरते
ऐसे सजकर आने लगे
रिश्ते जैसे प्रेत-प्रेतनियां हों

ये किस नादीदे की
नज़र लगी
कि जब भी आती है
तुम्हारे चेहरे पर
लुकाई भरी पूनम
तो पराई छाया का
ग्रहण लग जाता है
या फिर कोई
प्रेत प्यास
चांदनी की छुअन
पीने की जगह
रक्त पायी होकर
करने लगती है
स्वीकृतियों की
हत्या,
कि 'मृग-जल' की
तलाश में
भरने लगता है आदमी
बारूद
चंद्रमा की अमृत-कोख
में
क्योंकि धरती पर
तो आदमी ने
एक क्षण की तृप्ति के लिए
बेच डाली है शरीर की प्यासी आग
आत्मिक
चेतना की तृप्ति,

ये
किस नादीदे की
नज़र लगी
कि बाज़ार में ही
रहन हो गए
उसके उनींदे सपने और बादलों से
धरती पर उतरते
इंद्रधनुषी रंग!

संपर्क : कला-लक्ष्मी सदन, न्यू कॉलोनी-रामगंज, अजमेर-305003 (राजस्थान)

ISSN-0971-8478

पृष्ठ 1-56

स्थापित 1945

आजकल

वर्ष : 71; अंक : 3; पूर्णांक : 843
जुलाई 2015; आषाढ़ -श्रावण 1937

वरिष्ठ संपादक
राजेन्द्र भट्ट

संपादक
फरहत परवीन

आवरण : **राजेश कुमार**

संपादकीय पत्र व्यवहार :
संपादक
आजकल : प्रकाशन विभाग
कमरा नं. 601डी, सूचना भवन
सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110003
फोन : 2436 2915
ई-मेल : ajkalhindi@gmail.com

website: www.publicationsdivision.nic.in
फेसबुक आईडी : www.facebook.com/publicationsdivision

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) :
वी. के. मीणा

सदस्यता शुल्क :
वार्षिक : 100 रुपये; दो वर्ष: 180 रुपये;
तीन वर्ष : 250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक से)
एक वर्ष : पड़ोसी देश : 530 रुपये
शेष विश्व : 730 रुपये

सदस्यता संबंधी पूछताछ :
वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक
कमरा नं. 48-53, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003
ई-मेल : pdjucir@gmail.com

टाइपसेट : **ज्योति लेजर टाइप सेटिंग**

इस अंक में

लेख

6. प्रेमचंद का विचार : गांधीवाद या समाजवाद — **कमल किशोर गोयनका**
9. प्रेमचंद की वंशावली — **मनहर गोपाल भार्गव**
10. प्रेमचंद के पत्र-संकलन — **कृष्णवीर सिंह सिकरवार**
14. उपेक्षा का शिकार नाटक 'प्रेम की वेदी' — **लालसा लाल तरंग**
16. महोबा : एक समय यहां रहते थे प्रेमचंद — **आनंद स्वरूप श्रीवास्तव**
18. प्रेमचंद की दुर्लभ, असंदर्भित रचना — **प्रदीप जैन**
21. प्रेमचंद : विदेशी गवेषकों की दृष्टि में — **अखिलेश कुमार**
23. प्रेमचंद की कहानियां — **राजीव कुमार वर्मा**
27. रागमाला : लघु चित्रकला — **गोपाल गुप्ता**
28. किसी एक भाषा तक बंधकर नहीं रहना चाहता (राजीव भाटिया से बातचीत) — **प्रदीप सरदाना**
35. उज़बेकिस्तान में भक्ति साहित्य का अध्ययन — **उल्फ़त मुखीबोवा**
36. गुलेरी और आंचलिकता — **पीयूष गुलेरी**
40. रेणु की कहानियों में गीतात्मक प्रयोग — **भारत यायावर**
43. कविता और संगीत का अंतर्संबंध — **नंदकिशोर नंदन**
45. नदियों से हमारा संबंध — **क्षमा शर्मा**
48. मुझे इल्म की प्यास शिद्दत से आज भी है! (नासिरा शर्मा से बातचीत) — **मजीद अहमद**

कहानी

32. हारमोनियम वाला डाक्टर — **राधेश्याम तिवारी**

कविताएं

13. हरसिंगार के पहले पुष्प — **सुमन लता सक्सेना**
31. भूकम्पित नेपाल — **राजनारायण बिसारिया**
47. कविताएं — **केशव शरण**
50. ग़ज़ल और कविता — **बीना त्रिपाठी**

52. **समीक्षा**

आवरण II : दो कविताएं : **राम जैसवाल**

हमारे विक्रय केंद्र : **नई दिल्ली:** सूचना भवन, सी.जी.ओ. कांप्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260; **लखनऊ:** हाल नं. 1, दूसरी मंजिल, केंद्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455; **कोलकाता:** 8, एम्प्लेनेड ईस्ट; दूरभाष : 33-22488030; **पटना :** बिहार रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ; दूरभाष : 0612-2683407; **मुंबई :** 701 बी-विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवीं मुंबई; दूरभाष : 9522-27570686; **बंगलौर :** एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 080-25537244; **हैदराबाद :** ब्लाक-4, प्रथम तल, पृथ्वीकल्प कांप्लेक्स, एम.जे. मार्ग, नामपल्ली; दूरभाष :040 : 24605383; **चेन्नई :** राजाजी भवन, बेसेंट नगर; दूरभाष : 044-24917673; **तिरुअनंतपुरम :** गवर्मेंट प्रेस के निकट; दूरभाष : 041-2330650

प्रसंगवश...

आधुनिक हिंदी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा कहानी और उपन्यास को प्रतिष्ठित करने में अपने योगदान के लिए प्रेमचंद 'उपन्यास सम्राट' कहलाए। अमर कथाशिल्पी मुंशी प्रेमचंद का साहित्य कालजयी है। उनकी भाषा आम आदमी की भाषा है। प्रगतिशील, मानवतावादी दृष्टि से पूर्ण उनकी कहानियों और उपन्यासों ने भारतीय जनचेतना को सर्वाधिक प्रभावित किया। प्रारंभ में वह अपने मूल नाम 'धनपत राय' के साथ-साथ 'नवाब राय' के नाम से भी उर्दू में लिखा करते थे किंतु बाद में हिंदी की ओर उन्मुख हो गए और 'प्रेमचंद' के नाम से हिंदी में लिखने लगे। निस्संदेह कथा-साहित्य में वह विश्व-स्तर के लेखक हैं। उनकी लगभग तीन सौ कहानियों में अधिकतर कहानियां स्वराज्य आंदोलन, ज़मींदारों और महाजनों के हाथों शोषित होती जनसाधारण की व्यथा है। 'कफ़न' और 'पूस की रात' उनकी सर्वाधिक चर्चित कहानियां हैं।

प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन और वहां की समस्याओं को रचना का विषय बनाया था। प्रेमचंद ने एक बार कहा भी था—''मैं गांव-गांव घूमता रहा, इसलिए मुझे किसानों के प्रति आत्मीयता अनुभव होती है''। प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक परिवर्तन का अनमोल अस्त्र है जो सामाजिक सच्चाइयों का विवरण और चित्रण प्रस्तुत करता है। उन्होंने साहित्य को जीवन के निकट लाकर उसे सार्थक बना दिया। उनकी सादगी और मानवीय भावना ने न केवल उन्हें सार्थक सर्वोत्कृष्ट ग्राम-कथाकार बनाया बल्कि नगरवासियों की समस्याओं पर भी उनकी विशेष दृष्टि थी। इस कारण वह मानवता के कथाकार बने। प्रेमचंद का युग मध्य वर्ग के विकास का युग है। वह मध्य वर्ग की सीमाओं और शक्तियों से पूर्णतः परिचित थे। इसलिए इस वर्ग के प्रति वह अधिक जागरूक थे।

युगीन साहित्यकार प्रेमचंद के साहित्य में समाज के प्रवाहों का सबल प्रतिबिंब झलकता है। वह देशकाल के साथ चलने वाले साहित्यकार थे। हिंदी से अनुवाद का चलन प्रेमचंद की कृतियों से ही आरंभ होता है। हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी और अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ विदेशी भाषाओं में भी उनकी सर्वाधिक रचनाएं अनुदित हुईं।

प्रेमचंद ने किसी समय अपने भाषण में कहा था—''जीवन में एक नई सुंदरता की तलाश लेखकों को प्रेरित करेगी कि वे उस सामाजिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकें, जिसमें एक व्यक्ति हज़ारों व्यक्तियों पर अत्याचार कर सकता है, मानवीय आत्मसम्मान उन्हें प्रेरित करेगा कि वे पूंजीवाद, सैनिकवाद तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊंचा करें। फिर हमें इस सबके विरुद्ध अपनी ग़ैर-रज़ामंदी को काग़ज़ पर व्यक्त करके ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए बल्कि हमें एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए सक्रिय रूप से काम करना चाहिए जो सुंदरता, सुरुचि तथा मानवीय महिमा का निषेध नहीं करती।''

आम आदमी की ज़िंदगी के चितेरा प्रेमचंद स्वयं में एक आंदोलन हैं। हिंदी-साहित्य में कोई भी कथा-आंदोलन ऐसा नहीं हुआ जिसमें उनकी कथाओं का समावेश न हुआ हो। हिंदी-भाषा प्रेमचंद की सदा ऋणी रहेगी। कथा-साहित्य में जो कुछ भी सुंदर, उद्‌बोधक, संवेदनशील और उदार है, वह प्रेमचंद की देन है। नवजागरण के मसीहा प्रेमचंद के अनुसार - ''ऊंचा साहित्य तभी आएगा जब प्रतिभा-संपन्न लोग तपस्या की भावना लेकर साहित्य-क्षेत्र में आएंगे, जब किसी अच्छी पुस्तक की रचना राष्ट्र के लिए गौरव की बात समझी जाएगी, जब उसकी चाय की मेजों पर चर्चा होगी, जब उसके पन्नों के गुण-दोषों पर शिक्षित मित्र-मंडलियों में आलोचनाएं होंगी, जिस समाज में साहित्य की उपेक्षा की जाती हो, जिस समाज में साहित्य की रुचि नहीं के बराबर हो, वहां जो कुछ हो रहा है वही ग़नीमत है। हमारे यहां वही साहित्य की सेवा करते हैं जिन्हें कोई काम नहीं मिलता या जो लोग केवल मनोविनोद के लिए कभी-कभी कुछ लिख-पढ़ लिया करते हैं। ऐसे अरसिक समाज में उच्च कोटि का साहित्य, क़यामत तक न आएगा।''

शुभकामनाओं के साथ !



उत्प्रेरक अंक

● माखनलाल चतुर्वेदी पर केंद्रित ये अंक बड़ा ही उत्प्रेरक, ज्ञानवर्द्धक एवं सार्थक लगा। आवरण पृष्ठ भी काफ़ी आकर्षक व मोहक है। रचनाओं में विजय बहादुर सिंह का 'माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य विश्व', रमेश तैलंग का 'साहित्य देवता : एक विलक्षण कृति', बलदेव वंशी का 'लीक से हटकर सोचने वाला सजग आलोचक', विष्णु नागर से पंकज चौधरी की बातचीत 'अपनी निंदा कैसे करूं', किशोर कुमार कौशल का 'दूर के मुसाफ़िर' बड़े अच्छे लगे।

रात के सन्नाटे में विरह की तड़प, फागुनी रंगों से सदाबहार लोकगीतों की मिठास व महक का आनंद भी मिला।

—नंद किशोर तिवारी,
वाराणसी (उ.प्र.)

संग्रहणीय अंक

● 'आजकल' अप्रैल 2015 माखनलाल चतुर्वेदी की 125वीं जयंती पर विशेष सामग्री लिए है। बधाई! अंबेडकर जयंती पर 'आदर्श समाज की संकल्पना' अच्छा लेख है। 'यादों में कृष्णदत्त पालीवाल' तो अच्छा लगा ही साथ ही अच्छा लगा नंद जी को याद करना। झालावाड़ में मेरा मकान उनके मकान से लगभग 150 फुट दूर है। इसलिए आकाशवाणी की पत्र-पत्रिकाओं ने मुझसे बहुत कुछ पूछा। नंद चतुर्वेदी ने वर्ष 1942 में झालवाड़ में अंग्रेज़ो भारत छोड़ो दस्ते की अगुवाई की थी। विष्णु नागर जी पर साक्षात्कार अपनी जगह है। मैं इन दिनों अगामी वर्ष 2016 शकील बदायूंनी शताब्दी वर्ष के लिए लिख रहा हूं। कौशल जी का आलेख अच्छा लगना स्वाभाविक है। '2014 के प्रतिनिधि गीत-नवगीत संग्रह' प्रशंसनीय है।

—जितेंद्र निर्मोही, कोटा
(राजस्थान)

क्रांति-चेतना के सजग उद्‌बोधक

● राष्ट्र कवि माखनलाल चतुर्वेदी की 125वीं जयंती के अवसर पर उनके बहुआयामी व्यक्तित्व व कृतित्व पर आधारित विशेष सामग्री से परिपूर्ण 'आजकल' का अप्रैल अंक पढ़कर मन अभिभूत हो उठा। चतुर्वेदी जी समग्र राष्ट्रीय क्रांति-चेतना के सजग उद्‌बोधक थे। वे संपूर्ण रूप से राष्ट्र को समर्पित थे एवं भारतीय जनमानस के विकल अंतर्भावों के प्रस्फुटित विचार रूप थे।

सभी आलेख अत्यंत ज्ञानवर्द्धक व विचारपूर्ण रहे। इन आलेखों में चतुर्वेदी जी के व्यक्तित्व एवं रचना-संसार पर व्यापक व सारगर्भित प्रकाश डाला गया है। आनंद स्वरूप श्रीवास्तव ने अपने आलेख 'क्या नहीं था उनकी कविताओं में!' के अंतर्गत चतुर्वेदी जी के काव्यगत भाव व शिल्प पक्ष को सूक्ष्मता से विश्लेषित करने का प्रयास किया है। चतुर्वेदी जी की कहानियां 'कच्चा रास्ता' व 'बेगार का दंड' सामाजिक यथार्थ को उजागर करने में पूर्णतः सफल रही हैं।

—मनोज कुमार वाजपेयी,
रायबरेली (उ.प्र.)

विलक्षण कृति

● अप्रैल 2015 अंक को माखनलाल चतुर्वेदी पर केंद्रित कर विशेष बना दिया है। विजय बहादुर सिंह के लंबे आलेख में एक ओर तो उन्होंने कवि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है तो दूसरी ओर कहीं-कहीं उनकी क्षीण आलोचना भी है पर वह तथ्यपरक ही माना जा सकता है। वीरेंद्र मोहन ने मूल रूप से उन्हें कवि मानते हुए उनकी कविता में व्याप्त राष्ट्रवादी स्वर की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है। उनका कवि सामंतवाद का विरोध करता है। आज़ादी की प्राप्ति के लिए उस समय संघर्ष चल रहा था और उस काल में उनके द्वारा सृजित रचना 'पुष्प की अभिलाषा' की लोकप्रियता ने आकाशीय ऊंचाई को स्पर्श किया था। वीरेंद्र मोहन ने ठीक ही कहा है कि उनका संपूर्ण व्यक्तित्व एक राजनीतिक साहित्यकार का ही व्यक्तित्व रहता आया है। उनकी पत्रकारिता को भी क्रांतिकारी एवं निर्भीक पत्रकारिता का ही उज्ज्वल प्रतीक माना जा सकता है। अनेकों पत्रिकाओं का उन्होंने सुसंपादन किया पर पत्रकारिता के मौलिक उद्‌देश्य एवं सिद्धांत पर कहीं भी आंच नहीं आने दी। वे सुकवि होने के साथ ही एक श्रेष्ठ गद्यकार एवं निबंधकार भी रहे हैं। 'साहित्य देवता' तो सच में ही उनकी एक विलक्षण कृति मानी जाती रही है। 'माखनलाल चतुर्वेदी की दो कथाओं को इस अंक में देकर तो आपने विशेष रूप से इस तथ्य को पाठकों के समक्ष साकार कर दिया है कि वे एक श्रेष्ठ कथाकार भी रहे हैं। 'संस्मरण' में समाहित आलेख में उन्होंने महात्मा गांधी को एक निष्पक्ष एवं सच्चे पत्रकार के रूप में अंकित किया है। कुमार कृष्णन के आलेख ने गांधीवादी कलाकार नंदलाल बोस के विषय में अच्छी जानकारी दी है। महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर पर कवि चतुर्वेदी जी का

पृष्ठ 13 पर जारी

कवि-आलोचक-कथाकार ललित शुक्ल नहीं रहे!



हिंदी के सुपरिचित कवि-आलोचक-कथाकार ललित शुक्ल का पिछले दिनों हृदय गति रुकने से निधन हो गया। वे साल-भर से अस्वस्थ चल रहे थे। ललित शुक्ल का जन्म 8 जनवरी, 1937 को नेवादा, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनके कई कविता-संग्रह—'स्वप्ननीड़', 'समरजयी', 'अंतर्गत', 'सागर देख रहा है' तथा 'सहमी हुई शताब्दी' प्रकाशित हुए। हिंदी में प्रबंध काव्यों से शुरुआत कर उन्होंने हिंदी-संसार को कई स्फुट काव्य कृतियां दीं। सप्तकों के बाद कविता संचयनों में ऐतिहासिक महत्व रखने वाली 'त्रयी' की तीसरी कड़ी में जगदीश गुप्त ने उन्हें शामिल किया है।

प्रेमचंद का विचार : गांधीवाद या समाजवाद

कमल किशोर गोयनका

प्रेमचंद-साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में गांधीवाद और समाजवाद की चर्चा और मूल्यांकन में जितने मतभेद और विवाद रहे हैं, उतने किसी अन्य में नहीं मिलेंगे। यदि हम पचास वर्ष का इतिहास देखें तो गांधीवाद और समाजवाद दो ऐसे ध्रुव हैं, जिनकी जीवन एवं समाज-दृष्टि भिन्न-भिन्न है तथा भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाने वाले सिद्धांत हैं। गांधी की कल्पना राम-राज्य की है और मार्क्स सर्वहारा की सत्ता के पक्ष में हैं। प्रेमचंद को लेकर गांधी के अनुयायी उन्हें गांधीवादी तथा मार्क्स के समर्थक उन्हें मार्क्सवादी अथवा समाजवादी घोषित करते रहे हैं। इन आलोचकों में प्रगतिशील आलोचकों की संख्या अधिक है और वे एक स्वर में तथा संगठित रूप में प्रेमचंद को समाजवादी लेखक के रूप में स्थापित करते रहे हैं। इन आलोचकों ने अपने विवेचन में प्रेमचंद-साहित्य में गांधीवाद के तत्त्वों का विवेचन करते हुए लिखा है कि उनका गांधीवादी रुझान उनकी भावुकता एवं संभ्रम का प्रमाण है, लेकिन वे इससे मुक्त होते हैं और सन् 1930 के बाद वे गांधीवाद से समाजवाद की ओर उन्मुख होते हैं और वे समाजवाद के समर्थक हो जाते हैं तथा यह उनका गुणात्मक विकास है अर्थात् गांधीवाद को त्यागना और मार्क्स के दर्शन को अंगीकार करना उनके चिंतन का विकास है। इस संक्षिप्त पृष्ठभूमि में यह देखना-परखना आवश्यक है कि उनके साहित्य में गांधीवाद और समाजवाद का स्वरूप क्या है, क्या वे एक को छोड़कर दूसरे को अपनाते हैं या दोनों का सामंजस्य करते हैं या एक को मुख्य तथा दूसरे को गौण मानते हैं तथा समाजवाद के स्वीकार में क्या कोई बौद्धिक विकास है, क्या गांधीवाद इतना दीन-हीन है कि प्रेमचंद ने उसका त्याग कर दिया तथा समाजवाद क्या इतना श्रेष्ठ है कि मानव-उत्थान का वही एकमात्र रास्ता है।

प्रेमचंद का वैचारिक संबंध गांधी से पहले हुआ था और उसके बाद वे रूस की बोल्शेविक क्रांति से परिचित होते हैं। गांधी भारतीय रंगमंच पर सन् 1915 में आए थे और बोल्शेविक क्रांति सन् 1917 में हुई थी और उसकी पहली बार चर्चा प्रेमचंद ने अपने पत्र में की है जो 21 दिसंबर, 1919 को उन्होंने दयानारायण निगम को लिखा था। वे लिखते हैं कि "मैं करीब-करीब बोल्शेविस्ट उसूलों का कायल हो गया हूं।"[1] गांधी के बारे में पहली चर्चा सन् 1916 की मिलती है। प्रेमचंद ने इस वर्ष प्रकाशित पुस्तक 'कर्मवीर गांधी' की भूमिका में लिखा था कि भारत में महात्मा गांधी के पदार्पण से हमारे राष्ट्रीय जीवन में एक विचित्र स्फूर्ति, सजीवता एवं व्यावहारिक उद्योग का विकास हुआ है।[2] इसके उपरांत गांधी के साथ प्रेमचंद के संबंधों में आत्मीयता, श्रद्धा भाव के साथ उन्हें राष्ट्र-नेता तथा महात्मा की स्वीकृति है एवं उसमें दो-तीन अस्वीकृतियों के बावजूद इस आदर-भाव में निरंतरता है, जबकि कार्ल मार्क्स को वे समता, बंधुता के लिए भी श्रेय देने को तैयार नहीं हैं। प्रेमचंद के जीवन, लेखों-पत्रों में तथा उनके साहित्य में गांधी की राष्ट्र-नीति एवं उनके सिद्धांतों की बार-बार स्वीकृति मिलती है। गांधी असहयोग आंदोलन शुरू करते हैं तो प्रेमचंद उनकी प्रेरणा से 16 फरवरी 1921 को सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दे देते हैं। वे स्वाधीनता संग्राम के लिए जेल जाना चाहते थे, किंतु उनकी पत्नी पिकेटिंग करके गिरफ़्तार होती हैं और जेल जाती हैं। उनकी कई बार पत्नी से गांधी के बारे में बात होती है और वे कहते हैं कि गांधी का जन्म लोगों के उद्धार के लिए हुआ है। एक दूसरे प्रसंग में वे कहते हैं कि मैं दुनिया में महात्मा गांधी को सबसे बड़ा मानता हूं। मैं तो बिना देखे ही उनका चेला हो गया था। वे मज़दूर और काश्तकारों को सुखी बनाना चाहते हैं तथा हिंदू-मुसलमान की एकता चाहते हैं और मैं भी यही कर रहा हूं।[3] प्रेमचंद अपने लेख 'स्वराज्य के फ़ायदे' में लिखते हैं कि महात्मा गांधी देश के भक्त हैं और परमात्मा ने उन्हें भारत का उद्धार करने के लिए अवतरित किया है।[4] वे 'हंस' के फरवरी, अप्रैल, जून, सितंबर, 1931 के अंकों में बार-बार गांधी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं—महात्मा गांधी भारतीय आत्मा के स्वाधीनता प्रेम की विकल जागृति के जीते-जागते अवतार हैं, वे कुशल सेनापतियों में हैं, ग़रीबों-विचलितों का महात्मा जी से बड़ा शुभचिंतक संसार में दूसरा नहीं है, आदि। इसके विपरीत दो-तीन स्थानों पर उनकी गांधी से अस्वीकृति मिलती है, एक—बिहार में 15 जनवरी, 1934 को भयंकर भूकंप आने पर तथा सत्याग्रह की विफलता का दोष कार्यकर्ताओं पर डालने पर, साथ ही वे गांधी की 'भीतर की आवाज़' से भी सहमत नहीं हैं, क्योंकि वह ग़लत सिद्ध हुई है। ये गांधी से असहमति है, उनकी आलोचना एवं मोह-भंग नहीं है। प्रेमचंद गांधी के मूल सिद्धांतों—अहिंसा, सत्य, न्याय, धर्म, हृदय-परिवर्तन, राम-राज्य, ग्राम-विकास, पश्चिम एवं यंत्र सभ्यता का विरोध आदि की कभी आलोचना नहीं करते और उनके विचारों के साथ-साथ चलते रहते हैं।

प्रेमचंद-साहित्य में गांधीवाद के परीक्षण के लिए उसे तीन भागों में बांटा जा सकता है—प्राक् गांधीयुगीन रचनाएं, गांधीयुगीन रचनाएं तथा उत्तर गांधीयुगीन रचनाएं। पहले भाग में 'असरारे मआबिद', 'प्रेमा', 'किशना' (अनुपलब्ध), 'रूठी रानी', 'वरदान' और 'सेवासदन'—कुल छह उपन्यास हैं। यह नवजागरण का युग था, अतः इनमें धर्म-समाज के सुधार, देश-भक्ति तथा ग्राम्य जीवन की दुर्दशा का चित्रण है। इस काल की कहानियों में भी ऐसी ही प्रवृत्तियां हैं, लेकिन गांधी के आगमन से पूर्व प्रेमचंद 'दोनों तरफ़ से' (मार्च, 1911) कहानी में अछूतोद्धार तथा किसानों एवं गांवों के उद्धार तथा उनकी समस्याओं का चित्रण करते हैं और उसी मार्ग पर चलते हैं जिस पर आगे गांधी को चलना था। गांधी के रंगमंच पर आने के बाद गांधी-युग निर्मित होता है और इसमें प्रेमचंद पूरे मन के साथ उनका अनुगमन करते हैं। इस गांधी-युग में 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'ग़बन' तथा 'कर्मभूमि' उपन्यास आते हैं। 'प्रेमाश्रम' गांधीवादी रचना है। गांधी के किसान, गांव, पश्चिमी सभ्यता, अहिंसात्मक सुधार, हृदय परिवर्तन, ट्रस्टीशिप, रामराज्य संबंधी विचारों का सीधा प्रभाव है। प्रेमशंकर और मायाशंकर गांधी के विचारों को ही साकार करते हैं। 'रंगभूमि' का नायक सूरदास तो गांधी का ही प्रतीक है। यह उपन्यास गांधी के औद्योगीकरण, अंग्रेज़ी सत्ता, सहयोगी-असहयोगी, सत्य, धर्म, न्याय आदि विचारों पर ही आधारित है। इसी प्रकार 'कर्मभूमि' तो गांधी की स्वराज्य-दृष्टि और उनके व्यावहारिक कार्यक्रमों पर आधारित है। इस पर गांधी का नमक-कर कानून तोड़ना, नेताओं की गिरफ़्तारी, गांधी-इर्विन पैक्ट, किसानों का लगान बंदी आंदोलन आदि घटनाओं का सीधा प्रभाव है। अतः इसे 'गांधीवादी उपन्यास' या 'राजनीतिक उपन्यास' कहना तर्कसंगत है। इस काल की लगभग 20 कहानियों में गांधी का प्रभाव है। कुछ कहानियां हैं—'मंदिर और मस्जिद', 'इस्तीफ़ा', 'जुलूस', 'समर-यात्रा', 'शराब की दुकान', 'सुहाग की साड़ी', 'मैकू', 'जेल' आदि। इन कहानियों में देश-प्रेम,

सांप्रदायिक एकता, सेवा-भाव, अछूतोद्धार, सत्याग्रह, विदेशी वस्त्र बहिस्कार आदि स्वाधीनता संग्राम की विभिन्न प्रवृत्तियों को कहानियों के रूप में प्रस्तुत करके गांधी-चेतना तथा उनके संघर्ष को साकार कर दिया है। उत्तर गांधी युगीन रचनाओं में कुछ आलोचकों ने गांधीवाद से मोह-भंग और मार्क्स या समाजवाद की स्वीकृति का दावा किया है, जो तथ्यों के विपरीत प्रतीत होता है। मार्क्स का समाजवाद मज़दूरों पर आधारित है, जबकि 'गोदान' में भारतीय किसान की महागाथा है।

प्रेमचंद लगभग 25 वर्षों से किसान की त्रासदी की कहानी कहते आ रहे हैं और इसी परंपरा में होरी का जन्म होता है। वह निश्चय ही मार्क्सवाद के प्रभाव से पैदा नहीं होता है। 'गोदान' में औद्योगिक सभ्यता का विरोध है, मज़दूरों की हड़ताल असफल होती है और मिल में आग लग जाती है तथा मालती एवं मातादीन का हृदय-परिवर्तन तथा गोविंदी का जीवन-दर्शन गांधीवाद के अनुरूप है। 'गोदान' में भी गांधी हैं, क्योंकि गोदानकार के मन में अभी गांधी बैठे हैं। 'गोदान' में महेता जिस शब्दावली में साम्यवादियों तथा रूसी क्रांति की आलोचना करता है, वह इस संदर्भ में देखना चाहिए। 'मंगलसूत्र' अधूरे उपन्यास की व्याख्या भी आलोचकों ने ग़लत की है। उपन्यास का नायक देवकुमार की कथा उसकी पतन लीला से शुरू होती है। वह वेश्या-नाच, पितरों को पिंडदान, नाटक-मंडली पर हज़ारों रुपये खर्च करता है और जायदाद बेचता है। वह बेटे के दबाव में इस बेची जायदाद को वापस लेने के संदर्भ में दरिंदों से लड़ने के लिए हथियार उठाने की बात कहता है। देवकुमार के चरित्र, मूल्यवत्ता और चिंतन के इस पतन से कथा का विकास होता है, लेकिन यह लेखक का मंगलसूत्र कैसे हो सकता है? प्रेमचंद देवकुमार की इस पतन-कहानी के साथ नहीं हैं और प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय के अनुसार प्रेमचंद इस उपन्यास में एक ईमानदार, परिश्रमी और सीधे-सादे आदमी की कहानी अर्थात् अपनी कहानी कहना चाहते थे और यही वह मंगलसूत्र है जो प्रेमचंद देना चाहते थे। इस काल की दो कहानियां—'क़ातिल' (1933) तथा क़ातिल की मां (1935)[5] गांधीवाद की रूसी क्रांति के विचार पर विजय की कहानियां हैं और ध्यान रहे कि ये कहानियां उनके जीवन के अंतिम वर्षों की हैं। इसी प्रकार 'हंस' में प्रकाशित 'महाजनी सभ्यता' लेख की खूब चर्चा हुई है, किंतु इसी अंक में प्रकाशित प्रेमचंद की कहानी 'रहस्य' आदर्शवादी कहानी है, जिससे स्पष्ट है कि प्रेमचंद अंत तक जीवन के आदर्शों को महत्व देते रहे हैं।

प्रेमचंद को मार्क्सवादी या समाजवादी लेखक के रूप में स्थापित करने के काफ़ी प्रयास हुए हैं, किंतु आलोचकों ने प्रमाण के रूप में केवल आठ-दस रचनाओं को ही प्रस्तुत किया है। इन आलोचकों में भावुकता और दुराग्रह अधिक है, तथ्यों और तर्कों का बल कम है। डॉ. रामविलास शर्मा तथा डॉ. शिवकुमार मिश्र जैसे प्रगतिशील आलोचक मानते हैं कि प्रेमचंद ने समाजवाद एवं मार्क्सवादी दर्शन का शास्वत् अध्ययन नहीं किया था और न वे सुसंगत रूप में ही परिचित थे।[6] इस निष्कर्ष में सत्यता कम है। प्रेमचंद ने दिसंबर, 1925 को प्रकाशित अपने लेख 'इस्लामी संस्कृति' में मार्क्स का उल्लेख किया है और भ्रातृभाव, समता का श्रेय मार्क्स को नहीं हज़रत मुहम्मद को दिया है।[7] उन्होंने बोल्शेविक उसूलों के कायल होने का उल्लेख एक पत्र में किया ही है और अपने पत्रों, लेखों आदि में जार-सत्ता, वर्गवाद, कम्युनिज़्म, सोशलिज़्म, वर्ग संग्राम, समाजवादी डिक्टेटरशिप, सर्वहारा, लालक्रांति आदि शब्दों के प्रयोग के साथ लगभग 15 संपादकीयों में रूस और वहां की शासन व्यवस्था की चर्चा है जो इसका प्रमाण है कि वे रूसी क्रांति, साम्यवादी शासन व्यवस्था एवं सिद्धांत, मार्क्स, लेनिन, स्टालिन आदि की काफ़ी वास्तविकता से वे अवगत थे और उन्होंने प्रसिद्ध समाजवादी संपूर्णानंद, आचार्य नरेंद्रदेव आदि के संपर्क से समाजवाद पर उपलब्ध पुस्तकों का अध्ययन भी किया था। उस समय समाजवाद काफ़ी चर्चा का विषय था। स्वामी विवेकानंद, गांधी आदि ने भी इस पर विचार किया है। गांधी का मत है कि 'ईशोपनिषद्' के पहले मंत्र में समाजवाद नहीं साम्यवाद विद्यमान है, परंतु उन्हें रूसी ढंग का रक्तिम साम्यवाद स्वीकार नहीं है। वे स्वयं को सबसे बड़ा कम्युनिस्ट कहते हैं, क्योंकि अपना सबकुछ देश को दे दिया है। प्रेमचंद ने भी समाजवाद पर विचार किया है। वे मानते हैं कि बीसवीं सदी सोशलिज़्म की सदी है। समाजवाद मनुष्य मात्र को समता एवं समान अवसर देता है और यह मानव-संस्कृति का सबसे बड़ा उद्देश्य है। भारत जैसे ग़रीबों के देश में सोशलिज़्म ही आदर्श हो सकता है।[8] वे अपने पत्रों, लेखों, संपादकियों तथा कृतियों में साम्यवाद, रूसी क्रांति आदि पर समय-समय पर विचार करते हैं और उनकी अस्वीकृति के अवसर स्वीकृति से अधिक दिखाई देते हैं। उन्होंने एक पत्र में बोल्शेविक उसूलों के कायल होने का उल्लेख किया था, किंतु उससे पूर्व फरवरी, 1919 में छपे उनके लेख 'पुराना ज़माना : नया ज़माना' में वे इस नई सभ्यता के पूंजी एवं व्यक्ति की सत्ता पर आघात करने का समर्थन करते हुए इसे ठोस जत्थेबंदी, राजकीय अधिकार-भावना, राज्य-संचालन की वासना एवं राष्ट्र की स्वार्थपरता का प्रतीक भी मानते हैं और लिखते हैं कि इस नए जनतंत्र का अत्याचार पूंजीपतियों से कहीं अधिक घातक सिद्ध हो सकता है।[9]

प्रेमचंद की रूसी क्रांति और शासन-व्यवस्था के बारे में यह धारणा आगे भी बनी रहती है। वे 'स्वदेश' (गोरखपुर), 18 मार्च, 1928 में लिखते हैं, "एक समय था जब साम्यवाद निर्बल राष्ट्रों को आशा से आंदोलित कर देता था। सारे संसार में जब प्रजावाद की प्रधानता हो जाएगी, फिर दुख या पराधीनता या सामाजिक विषमता का कहीं नाम भी न रहेगा। साम्यवाद से ऐसी ही लंबी-चौड़ी आशाएं बांधी गई थीं, मगर अनुभव हो रहा है कि साम्यवाद केवल पूंजीपतियों पर मज़दूरों की विजय का आंदोलन है, न्याय के अन्याय पर, सत्य के मिथ्या पर, विजय पाने का नाम नहीं। यह सारी विषमता, सारा अन्याय, सारी स्वार्थपरता जो पूंजीवाद के नाम से प्रसिद्ध है, साम्यवाद के रूप में आकर अणु मात्र भी कम नहीं होगी, बल्कि उसके और भी भयंकर होने की संभावना है।"[10] प्रेमचंद आगे चलकर स्टालिन, हिटलर, मुसोलिनी आदि तानाशाहों का समर्थन करते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का आदर्श डिक्टेटरशिप नहीं है, वह अस्थायी है, वह प्रजा-हित में है,[11] लेकिन 22 मई, 1933 ('जागरण' साप्ताहिक) को 'भावी महासमर' टिप्पणी में लिखते हैं कि साम्राज्य-विरोधी रूस भी चाहता है कि ज़माना सोवियत हो जाए और इस प्रकार उसे भी 'विचार का साम्राज्य' चाहिए। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि वे भ्रम में थे कि रूस ने पूंजीवाद पर विजय प्राप्त कर ली है और अपने देश में एक नई समाज व्यवस्था क़ायम कर ली है।[12] वे अपने भ्रम के टूटने के साथ, कम्युनिस्ट व्यवस्था के प्रजा-विरोधी होने पर जनता द्वारा उसे दूसरी तरह हल करने अर्थात् उसे बदलने की भविष्यवाणी भी कर रहे थे।[13] इन टिप्पणियों के अतिरिक्त वे बार-बार रूसी क्रांति और वर्ग-संघर्ष को अस्वीकार करते हैं। 'हंस', अगस्त, 1933 में लिखते हैं, "लाल क्रांति को हम भी नहीं चाहते हैं।"[14] इससे पूर्व वे कह चुके हैं, "हम श्रेणियों में संग्राम नहीं चाहते हैं।"[15] गांधी क्रांति एवं द्वेषमय हिंसा के विरोधी हैं और प्रेमचंद की भी यही नीति है, इसलिए वे 26 दिसंबर, 1934 को इंद्रनाथ मदान को लिखते हैं कि क्रांति से हम उससे भी बुरी डिक्टेटरशिप पर पहुंच सकते हैं, अतः मैं ध्वंस नहीं चाहता।[16] प्रेमचंद ने दिसंबर, 1934 में दिए एक इंटरव्यू में कहा था कि मैं कम्युनिस्ट हूं, परंतु मेरा कम्युनिज़्म गांधी, इंग्लैंड और रशियन कम्युनिज़्म से भिन्न है। उसमें किसान का शोषण करने वाला समाज—ज़मींदार, साहूकार बिल्कुल नहीं रहेगा।[17]

प्रेमचंद-साहित्य में कम्युनिस्ट-दर्शन और सिद्धांतों के प्रतिपादन की स्थिति इससे भिन्न नहीं है। उनके उपन्यासों-कहानियों में मार्क्सवाद की श्रेष्ठता की स्थापना एवं कथा तथा पात्रों की ज़िंदगी और संघर्ष में उसे प्रमुख अंग बनाने की कोई प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती जैसी कि 'रंगभूमि' के सूरदास में गांधीवाद की दृष्टिगत होती है। 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर अमेरिका से शिक्षित होकर आता है और खेती एवं बागवानी करता है और सहकारिता लाकर सबको मालिक बना देता है। प्रेमशंकर बोल्शेविक क्रांति के बाद जन्म लेता है, किंतु मार्क्स की जगह गांधी उसके प्रेरणा-स्रोत हैं। उपन्यास में ज्ञानशंकर तो साम्यवादियों की बुराई करता है। 'प्रेमाश्रम' में एक प्रकार से भारतीय समाजवाद का रूप सामने आता है जो गांधीवाद पर आधारित है। 'गोदान' में तो मेहता साम्यवाद और साम्यवादियों की आलोचना करता है और मिल एवं मजदूर की शक्ति का पतन होता है। 'गोदान' को मार्क्सवादी रचना बताने से पहले इन संदर्भों को देखना चाहिए। उनकी कुछ कहानियों में रूसी क्रांति और लेनिन के कामरेडों की वास्तविकता का उद्घाटन है। 'क़ैदी' (जुलाई, 1933) कहानी में लेनिन के कामरेड आपस में धोखा देते हैं और कामरेड प्रेमिका अपने प्रेमी कामरेड को गिरफ़्तार कराकर जार के गवर्नर से शादी कर लेती है। प्रेमचंद ने स्पष्ट कर दिया है कि लेनिन के कामरेडों के संबंध में उनकी क्या राय है, वे स्वार्थी और धोखेबाज़ हैं और ऐसे कामरेडों से क्रांति नहीं हो सकती है। उनकी कहानियां—'क़ातिल' (1933) एवं 'क़ातिल की मां' (1935) में रक्तिम क्रांति एवं अंग्रेज़ों की हत्या करके स्वतंत्रता प्राप्त करने का विरोध है। 'क़ातिल' में धर्मवीर रूस, आयरलैंड की तरह हिंसा से आज़ादी प्राप्त करना चाहता है, किंतु उसकी मां उसकी गोली से अंग्रेज़ को बचाने में खुद मारी जाती है और धर्मवीर को अपनी मां खोनी पड़ती है। 'क़ातिल की मां' की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। इस कहानी की मां अपने क्रांतिकारी पुत्र से कहती है, "स्वराज्य क़त्ल, खून से नहीं मिलता; त्याग, तप और आत्म-शुद्धि से मिलता है। x x x जो स्वराज्य क़त्ल व खून से मिलेगा, वह क़त्ल व खून पर ही क़ायम रहेगा।"[1] यह गांधी की ही शब्दावली है। कहानी में मां अदालत में बेटे को हत्यारा बताती है और वहीं बेटे के हाथों से मारी जाती है। इन कहानियों के ये संदर्भ प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाने के सारे तर्कों को अर्थहीन एवं निरर्थक बना देते हैं। 'प्रगतिशील लेखक संघ' (10 अप्रैल 1936) के भाषण में मार्क्सवाद एवं उसकी शब्दावली का कोई प्रभाव नहीं है। प्रेमचंद इस भाषण में 'प्रगतिशील' शब्द को ही निरर्थक एवं अनावश्यक घोषित करते हैं और अपनी पुरानी मान्यताओं का ही प्रतिपादन करते हैं और बारह स्थानों पर 'आध्यात्मिक' विशेषण का प्रयोग तृप्ति, सभ्यता, सामंजस्य, आनंद, सुख, उच्चता आदि के साथ करते हैं। यहां तक कि 'बंधुत्व और समता' की स्थापना का श्रेय भी मार्क्स को न देकर बुद्ध, ईसा और मुहम्मद को दिया है।

इस व्याख्यान में संस्कृति, अध्यात्म, नैतिकता, मानवीयता, मूल्य, आचार-विचार, संस्कार, आस्था का जो संश्लिष्ट साहित्य-दर्शन है, वह भी मार्क्सवाद के प्रतिकूल है। 'महाजनी सभ्यता' लेख में व्यक्त विचारों को उनके 1919 में प्रकाशित लेख 'पुराना ज़माना : नया ज़माना' के साथ रखकर यदि देखा जाता है तो कुछ अंशों में तथा उनकी पृष्ठभूमि एवं प्रतिपादन में काफ़ी समानता प्रतीत होगी। इस पर भी 'हंस' के उसी अंक में, जिसमें 'महाजनी सभ्यता' लेख छपा था, उनकी 'रहस्य' कहानी प्रकाशित हुई है जिसमें मार्क्स या रूसी क्रांति नहीं, गांधी और आदर्शवाद बोलता है। कहानी का नायक विमल अंत में सेवा, त्याग, अध्यात्म, साधना एवं देवत्व का प्रतिरूप बनकर प्रतिष्ठित होता है। इन दोनों में प्रेमचंद की विरासत कौन है, इस पर विचार की आवश्यकता है।

यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद अंत तक गांधीवाद को अपनाए रहते हैं। उनका गांधीवाद से मोह-भंग नहीं हुआ है, बल्कि वे साम्यवाद के बारे में भ्रम में रहना स्वीकार करते हैं। वे लाल क्रांति के विरुद्ध हैं, वर्ग-संघर्ष के विरुद्ध हैं। वे समाजवाद चाहते हैं और उसे गांधी के मार्ग से ही लाना चाहते हैं। उनके साहित्य में गांधी के अनुयायी पात्र अनेक हैं, मार्क्स के सिद्धांतों को क्रियान्वित करके सफलता प्राप्त करने वाला एक भी पात्र नहीं है। 'क़ातिल' और 'क़ातिल की मां' कहानियों का नायक कामरेड है और वह हिंसा से आज़ादी चाहता है, किंतु दोनों में ही यह कामरेड अपनी मां की हत्या कर देता है और अपने उद्देश्य में असफल होता है। इनमें भी गांधी की चेतना सफल होती है, क्योंकि मां अपने प्राण देकर हिंसा को रोकती है। प्रेमचंद का सन् 1935 में यही चिंतन है, जिसमें गांधी हैं तथा उनकी आदर्शपूर्ण जीवन एवं राष्ट्र-दृष्टि है। प्रेमचंद का गांधीवाद एवं आदर्शवाद दोनों ही मार्क्सवाद के अनुकूल नहीं है, उनके यथार्थ को भी मार्क्सवाद की साहित्य-चेतना से जोड़ना तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि रूसी क्रांति के पहले से ही वे जीवन की यथार्थ कहानियां लिख रहे थे। प्रेमचंद को मार्क्सवाद यथार्थवादी बनाता है, यह निष्कर्ष जल्दबाज़ी में लिया गया है। प्रेमचंद का 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' प्रगतिशील आलोचना में संकट बनता है क्योंकि उनके जो भी आदर्श हैं वे सब मार्क्स के चिंतन से आते हैं। प्रेमचंद के आदर्श तो भारत के प्राचीन आदर्शों और गांधी के आदर्शों से आते हैं और ये सब सामंती और बुर्जुआ आदर्श हैं और सर्वहारा क्रांति के लिए त्याज्य हैं। प्रेमचंद के विपुल साहित्य के सम्मुख पांच-छह रचनाओं के आधार पर उन्हें मार्क्सवाद के अर्थ में प्रगतिशील घोषित करना उनकी रचनात्मकता को सीमित करना है। प्रगतिशीलता की तुलना में गांधीवाद और आदर्शवाद उन्हें अपने समय के व्यापक जीवन से जोड़ता है और एक बड़ी दुनिया के कथाकार बनते हैं और ये सब प्रवृत्तियां संश्लिष्ट होकर उन्हें अपने युग की भारतीयता को लेखक बना देती हैं। मार्क्सवाद प्रेमचंद की सृजनात्मकता को संकुचित तथा सीमित करता है तथा उन्हें एक राजनीतिक-दर्शन का प्रवक्ता कथाकार बना देता है। इसी प्रकार उन्हें गांधीवाद तक सीमित करना भी उचित नहीं है। उनके साहित्य में गांधीवाद के अतिरिक्त भी भारतीय जीवन के बहुरूपात्मक परिदृश्य हैं और इस प्रकार उनका साहित्य विभिन्न रूपों एवं दिशाओं में फैल कर जीवन का पर्याय बन जाता है। अतः उन्हें वादों तक सीमित न करके भारतीय जीवन का कथाकार कहना ही उचित है। वे किसी एक विचार के लेखक नहीं हैं, वे सबके हैं, अर्थात् जीवन के हैं, यही उनके साहित्य का सत्य है।

---

1. 'प्रेमचंद : पत्रकोश', पृष्ठ 210, 2. 'प्रेमचंद और गांधीवाद', रामदीन गुप्त, पृष्ठ 111 पर उद्धृत, 3. 'प्रेमचंद : घर में', पृष्ठ 95, 150 व 188, 4. 'प्रेमचंद : विविध-प्रसंग', भाग-2, पृष्ठ 282, 5. 'प्रेमचंद : कहानी रचनावली', संपादक : कमल किशोर गोयनका, खंड-6, पृष्ठ 343 व 485, 6. 'प्रेमचंद', रामविलास शर्मा, प्र. सं. 1941, पृष्ठ 109 तथा 'प्रेमचंद : विरासत का सवाल', पृष्ठ 64, 7. 'प्रताप' साप्ताहिक, दिसंबर, 1925, यह 'इंडिया टुडे', वार्षिक अंक, 1995, पृष्ठ 24-26 पर प्रकाशित, 8. 'प्रेमचंद : विविध-प्रसंग', भाग-2, पृष्ठ 78, 9. वही, भाग-1, पृ. 264-67, 10. यह लेख 'राज्यवाद और साम्राज्यवाद' के नाम से छपा था। लेखक ने इसे 'दस्तावेज़' आदि कई पत्रिकाओं में इसे प्रकाशित कराया है, 11. 'जागरण', 23 अप्रैल, 1934, 12. 'प्रेमचंद : विविध-प्रसंग', भाग-2, पृष्ठ 342, 13. वही, पृष्ठ 198, यह 'जागरण', 21 अगस्त, 1933 की टिप्पणी 'कम्युनिज़्म और फ़ासिज़्म' से उद्धृत है, 14. 'प्रेमचंद : विविध-प्रसंग', भाग-3, पृष्ठ 217, 15. वही, भाग-2, पृष्ठ 487, 16. 'प्रेमचंद : पत्रकोश' पृष्ठ, 17. 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', भाग-1, पृष्ठ 311, 18. 'प्रेमचंद : कहानी रचनावली', भाग-6, पृष्ठ 485

संपर्क : ए/98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052

प्रेमचंद की वंशावली

मनहर गोपाल भार्गव

प्रेमचंद हिंदी के युग प्रवर्त्तक अमर कलाकार थे। वे हिंदी के 'उपन्यास-सम्राट्' तो थे ही, किंतु लगभग 300 कहानियों के आधार पर यदि उन्हें 'कहानी-सम्राट' कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। वे एक ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने अपने युग के अतिरिक्त आगे आने वाले युग को भी एक नई दिशा प्रदान की।

उनकी वंशावली का भी अपना एक रोचक इतिहास है। प्रेमचंद जन्म शताब्दी (1980 ई.) के अवसर पर इलाहाबाद युनिवर्सिटी में प्रेमचंद विशेषांक निकालने की योजना बनी। 'इलाहाबाद युनिवर्सिटी हिंदी मैगज़ीन' के संपादक मोहन अवस्थी ने मुझसे प्रेमचंद पर एक शोध लेख लिखने को कहा। मैंने एक लेख 'प्रेमचंदश्च चन्द्रश्च न कदापि समावुभौ' तैयार किया, जो उक्त पत्रिका के 46 पृष्ठों में प्रकाशित हुआ। पत्रिका के पृष्ठ निश्चित होने के कारण उसमें से लगभग आठ पृष्ठों की सामग्री निकाल दी गई, जिसमें प्रेमचंद की वंशावली भी थी। यह वंशावली अमृतराय तथा दुलारे लाल भार्गव के सहयोग से तैयार की गई थी। अमृतराय भी बहुत दुःखी थे कि वे 'क़लम के सिपाही' नामक पुस्तक में अपनी वंशावली, अपूर्ण होने के कारण, न दे सके।

अमृतराय के अनुसार यह वंशावली गुरसहाय लाल ने अपने पुत्र कौलेश्वरलाल से तैयार करवाई थी। 'क़लम का सिपाही' लिखते समय उन्होंने इस संदर्भ में उनके पौत्र श्यामलाल जी से संपर्क किया, जिनसे उन्हें ज्ञात हुआ कि राधास्वामी मत में दीक्षित होने के पूर्व उन्होंने संपूर्ण वंशावली राम कुमार राय को सौंप दी थी, जिन्होंने वंशावली में संशोधन भी किए थे। तब उन्होंने रामकुमार राय से संपर्क किया, किंतु बहुत ढूंढने पर भी वह वंशावली उन्हें नही मिली।

मेरे द्वारा तैयार की गई वंशावली का उपयोग संगीता मौर्या ने अपने शोध-प्रबंध 'अमृतराय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में किया, जिस पर उन्हें अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म. प्र.) द्वारा सन् 2013 ई. में पीएच. डी. उपाधि प्रदान की गई। सन् 2013 ई. में प्रदीप जैन से मुझे ज्ञात हुआ कि प्रेमचंद के अनुज महताब राय के पुत्र कृष्णकुमार राय ने भी वंशावली प्रकाशित की है। तब संगीता मौर्या के पति अभय कुमार, शोध छात्र ने उनसे संपर्क स्थापित किया और उनके द्वारा तैयार की गई वंशावली की छाया प्रति ले जाए।

कृष्णकुमार राय से ज्ञात हुआ कि उनके अग्रज रामकुमार राय मुहल्ला जगतगंज, वाराणसी में किराए के मकान में रहते थे। वहीं से प्रकाशन का कार्य चलता था। सन् 1990 ई. में रामकुमार राय तथा सन् 1996 ई. में अमृतराय का निधन हो गया। तब तक मूल वंशावली नहीं मिल सकी। कई वर्षों बाद जगतगंज का मकान ख़ाली करने का निश्चय हुआ। वहीं अलमारी के पीछे धूल-धूसरित वंशावली रामकुमार राय के तृतीय पुत्र प्रदीप राय को मिली। वे उसे लेकर कृष्णकुमार राय के पास गए। उस वंशावली के संदर्भ में उनका वक्तव्य पठनीय है—

"इतने लंबे समय तक किताबों से भरी एक भारी-भरकम अलमारी के पीछे धूल-गर्द खाती उपेक्षित पड़ी रहने के कारण वंशावली की लिखावट इतनी धूमिल पड़ चुकी थी कि उसे पढ़ पाना कठिन हो गया था। मैंने काफ़ी प्रयास करके मैग्नीफ़ाइंग ग्लास की सहायता से कई दिनों में धीरे-धीरे वंशावली की नई प्रति तैयार की। मूल वंशावली में लमही ग्राम के अन्य कायस्थ परिवारों का भी उल्लेख था, क्योंकि सभी के उद्गम का स्रोत एक ही था। उसमें बहुत से नाम बिलकुल अपठनीय हो चुके थे। गांव में भी मुझसे अधिक बुजुर्ग अब कोई व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) जीवित नहीं बचा था जो उन अपठनीय नामों के संदर्भ में कुछ प्रकाश डाल सकता। अतः विवश होकर मैंने प्रेमचंद से असंबद्ध शाखाओं को वंश वृक्ष से काट-छांट कर पृथक कर देना श्रेयस्कर समझा और सीधे प्रेमचंद के पूर्वजों को आधार मानकर नई वंशावली तैयार की। मेरे अग्रज ने पुराने वंश वृक्ष को थोड़ा आगे बढ़ाया था। मैंने नए सिरे से काफ़ी प्रयास करके वंशावली को अद्यावधिक किया और इस प्रकार प्रेमचंद के पूर्वजों और वंशजों की अद्यावधिक नई वंशावली बनकर तैयार हो गई।" (बीसवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार : प्रेमचंद—कृष्णकुमार राय, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी, सन् 2001 ई., पृ. 13)

प्रेमचंद के पूर्वज लाला टीकाराम सन् 1740 ई. के लगभग ग्राम ऐरे, वाराणसी में निवास करते थे। उनके प्रपौत्र गुरसहाय लाल अपने भतीजे हरनारायन लाल के साथ ग्राम लमही, जिला वाराणसी में आकर बस गए। वहां वे पटवारी थे। अमृतराय के अनुसार उनकी पत्नी का नाम सीता देवी था।

कृष्णकुमार राय द्वारा तैयार वंशावली और मेरे द्वारा तैयार वंशावली में कई अंतर हैं, जिनकी ओर मैं प्रमचंद के अध्येताओं और वंशजों का ध्यान आकृष्ट कराना चाहूंगा—

1. राय साहब की वंशावली में धर्मपत्नियों तथा पुत्रियों के नामों का उल्लेख नहीं है, जबकि मेरी वंशावली में जिन धर्मपत्नियों एवं पुत्रियों के नाम मिल सके उनका उल्लेख है।

2. वंशावली (रायसाहब) में जन्मतिथि (ज.), विवाह तिथि (वि.) तथा निधन तिथि (नि.) का उल्लेख नहीं किया है। मेरी वंशावली में तिथि/मास/वर्ष का यथासंभव उल्लेख किया गया है।

3. मेरे द्वारा लिखी गई वंशावली में अधिकांश विवाहित पुत्रियों के पतियों के नाम का भी उल्लेख है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बिंदु विशेष विचारणीय हैं—

I. रायसाहब द्वारा निर्मित वंशावली में बिंदेश्वरी को शंकरलाल का पुत्र अर्थात् गुरसहाय लाल का भतीजा बतलाया गया है, जबकि 'क़लम का सिपाही' (अमृतराय) से ज्ञात होता है कि मुंशी अजायबलाल ने बिंदेश्वरी के पिता रजपाल, जो उनके भाई लगते थे, को डाकखाने में पोस्टमैन की नौकरी दिलवाई। इस प्रकार बिंदेश्वरी शंकरलाल के पुत्र रजपाल के पुत्र थे न कि शंकरलाल के।

2. कृष्णकुमार राय की वंशावली में गुरसहाय लाल के भतीजे हरनारायन लाल, जो उनके साथ ही ग्राम लमही आए थे, का कोई उल्लेख नहीं है, जबकि मेरे द्वारा निर्मित वंशावली में उनके छोटे भाई, जिनका नाम अज्ञात है, के पुत्र थे।

3. ईश्वरी लाल को राय साहब की वंशावली में गुरसहाय लाल का अनुज दर्शाया गया है, जबकि अमृतराय के अनुसार वे हरनारायन लाल के पुत्र थे। उनकी पत्नी का नाम करियई था, जिसे अमृतराय चाची कहकर पुकारते थे।

4. वंशावली (रायसाहब) में गुरसहाय लाल के सबसे छोटे भाई संकठा लाल के पुत्र का उल्लेख नहीं किया है, जबकि अमृतराय के अनुसार उनके पुत्र ब्रजकिशोर लाल को मुंशी अजायब लाल ने डाकखाने में पोस्टमैन नियुक्त करवाया था। उनके पौत्र का नाम जगदंबा लाल था। ❑

संपर्क : 370 ट बजरंग नगर, शुक्लहा, मीरज़ापुर-231001 (उत्तर प्रदेश)

प्रेमचंद के पत्र-संकलन

कृष्णवीर सिंह सिकरवार

एक समय था जब व्यक्ति अपने जीवन संघर्ष की उथल-पुथल को एक पत्र में लिखकर अपने सगे-संबंधियों को भेजता था जिसमें उसका असीम प्यार व अपनापन झलकता था व पत्र के इंतज़ार में डाकिए का बेसब्री से इंतज़ार करता था। आज आधुनिकीकरण के दौर में पत्र-लेखन बिल्कुल हाशिए पर पहुंच चुका है। किसी के पास इतना समय नहीं है कि वे थोड़ी मेहनत कर अपने विचारों को अपनी क़लम की स्याही से व्यक्त कर सके, क्योंकि आज लोगों के हाथ कंप्यूटर व मोबाइल रूपी ऐसे आधुनिक यंत्र लग चुके हैं जिससे वे आसानी से कम समय में अपने विचारों को कहीं पर भी बैठे अपने परिचितों को भेज सकते हैं व प्राप्तकर्ता भी तुरंत जवाब दे सकता है। जब ऐसे उपकरणों की सहायता से संदेशों का आसानी से आदान-प्रदान हो सकता है तो क्योंकर किसी को पत्र लिखकर अपने विचारों को भेजे।



इस संपूर्ण वक्तव्य के आधार पर हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि पत्र-लेखन विधा अब समाप्त हो गई है या समाप्ति की कगार पर है क्योंकि अभी हाल ही में सुखमणि प्रकाशन, इंदौर से वरिष्ठ साहित्यकार प्रताप सिंह सोढ़ी के संपादन में 'पत्र-लेखन अतीत के चलन से आधुनिकता के खंडन तक' पुस्तक प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक पत्र-विधा में नए द्वार खोलती है। इस पुस्तक की चर्चा भोपाल से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'प्रेरणा' में इस प्रकार की गई है—"इस पुस्तक में 120 पत्र संकलित हैं जो विभिन्न रचनाकारों द्वारा राजेंद्र परदेसी को लिखे हैं। यह पत्र प्रमाणित करते हैं कि साहित्य के क्षेत्र में परदेसी जी का कद कितना ऊंचा है...जब एक साहित्यकार दूसरे साहित्यकार को पत्र लिखता है तो अपनी विशिष्ट शैली के कारण वे पत्र दस्तावेज़ के रूप में सहेजने योग्य हो जाते हैं...दरअसल ये पत्र परदेसी जी के बहुआयामी व्यक्तित्व का उज्ज्वल आईना है जिसमें उनके रचना-संसार, आत्मिक रिश्तों के तमाम अक्स उभरकर सामने आते हैं।"[1] पत्र के माध्यम से परिवार एवं अपने इष्ट मित्रों की कुशलक्षेम एवं अन्य संदेशों का आदान-प्रदान सरल हो गया है...आज पत्र-लेखन का महत्व क्षीण होता जा रहा है। अब तो कंप्यूटर, इंटरनेट, ईमेल, मोबाइल आदि उपकरणों के आ जाने के कारण पत्र-लेखन की परंपरा खंडित होती जा रही है...जो बात पत्रों द्वारा व्यक्त होती है, उपकरणों द्वारा नहीं। जो बात हम ज़बान से सीधे कह नहीं पाते वह बात लिखकर कहने में और सरल हो जाती है।[2] इस प्रकार की पुस्तकों का छपना यह साबित करता है कि पत्र-लेखन विधा अभी पूर्ण रूपेण विलुप्त नहीं हुई है। पाठकों का प्यार व स्नेह रहा तो इस प्रकार की पुस्तकें आगे भी आती रहेंगी। इसके लिए प्रबुद्ध लेखकों व प्रकाशकों को अपना कदम बढ़ाना चाहिए ताकि साहित्य की यह विधा विलुप्त होने से बच सके।

प्रस्तुत आलेख में प्रेमचंद के प्रकाशित पत्र-संकलनों के संदर्भ में कहने का एक छोटा-सा प्रयास किया गया है। प्रेमचंद के पत्र-संकलन हिंदी साहित्य की एक अमूल्य निधि है जो किसी भी पाठक व शोधार्थियों के लिए गर्व की बात हो सकती है। जैसाकि हम सभी जानते हैं कि प्रेमचंद एक विश्वप्रसिद्ध साहित्यकार थे जितने लोकप्रिय वे अपने देश में थे उससे कहीं ज्यादा वे विदेशों में थे। उन्होंने अपने जीवन में हज़ारों पत्र लिखे होंगे। इस प्रकार उनके द्वारा अपने साहित्यिक मित्रों एवं परिजनों को लिखे पत्रों के महत्व का अंदाज़ा हम इस प्रकार लगा सकते हैं कि जितने भी आलोचकों ने उनकी जीवनी लिखने का प्रयास किया उन सभी ने प्रेमचंद के द्वारा लिखे पत्रों का उपयोग अपनी जीवनी में अवश्य किया चाहे वे प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय द्वारा लिखी प्रेमचंद की जीवनी 'प्रेमचंद : क़लम का सिपाही' हो या हिसार (हरियाणा) के प्रसिद्ध आलोचक मदन गोपाल द्वारा लिखी जीवनी 'प्रेमचंद : क़लम का मज़दूर' हो। इन दोनों जीवनियों को पाठक पढ़ेंगे तो यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि इन दोनों लेखकों ने प्रेमचंद के पत्रों का उपयोग किस हद तक किया है। इन दोनों जीवनियों के संबंध में प्रेमचंद साहित्य के खोजी व प्रसिद्ध विशेषज्ञ कमल किशोर गोयनका अपने लेख 'मदन गोपाल: प्रेमचंद के खोजी विशेषज्ञ और जीवनीकार' में लिखते हैं—"यह एक अद्‌भुत संयोग ही है कि अमृतराय और मदन गोपाल एक ही समय में प्रेमचंद की जीवनी लिख रहे थे तथा दोनों के पास लगभग एक जैसी ही सामग्री थी, किंतु एक हिंदी में लिख रहा था तथा दूसरा अंग्रेज़ी में और दोनों में से किसी को नहीं मालूम था कि एक-दूसरे की लेखन शैली क्या है। दोनों ही जीवनीकारों ने प्रेमचंद के पत्रों का बड़ी मात्रा में उपयोग किया...अमृतराय ने अपनी जीवनी को जहां उपन्यास के रूप में लिखा है वहीं मदन गोपाल ने उसे जीवनी के रूप में प्रस्तुत किया है। मदन गोपाल और अमृतराय की जीवनियां उत्कृष्ट, उपयोगी और प्रमाणिक कृतियां हैं, लेकिन जो स्वागत अमृतराय की जीवनी का हुआ वह मदन गोपाल की अंग्रेज़ी जीवनी 'मुंशी प्रेमचंद' तथा उसके हिंदी रूपांतर 'क़लम का मज़दूर : प्रेमचंद' का नहीं हुआ।"[3] चूंकि अमृतराय प्रेमचंद के पुत्र थे इस कारण प्रेमचंद की लगभग सभी सामग्री उनके पास मौजूद थी परंतु मदन गोपाल के पास प्रेमचंद साहित्य के प्रति असीम अनुराग व भक्ति ही थी फिर भी मदन गोपाल की जीवनी सुंदर व अविस्मरणीय है। अमृतराय प्रेमचंद की जीवनी 'प्रेमचंद : क़लम का सिपाही' की भूमिका में प्रेमचंद के पत्रों के उपयोग के संबंध में स्वीकारोक्ति करते हैं कि—"जीवनी लिखने में इन चिट्ठियों से मैंने कितनी मदद ली है, यह मेरे कहने की चीज़ नहीं है, पढ़ने वाले खुद देखेंगे। मैं इतना ही कह सकता हूं कि इस ख़ज़ाने के बग़ैर अब मैं जीवनी की कल्पना भी नहीं कर सकता, लिखी वह शायद तब भी जाती लेकिन लंगड़ी होती, बेजान होती।"[4] इस प्रकार अमृतराय के प्रेमचंद के पत्रों के उपयोग के संबंध में विचार स्पष्ट होते हैं।

एक अन्य आलोचक प्रदीप जैन प्रेमचंद के पत्रों के संबंध में यह सूचना देते हैं कि—"प्रेमचंद ने अपने जीवनकाल में हज़ारों पत्र लिखे होंगे, लेकिन उनके जो पत्र काल का ग्रास बनने से बचे रह गए और जो संप्रति उपलब्ध है उनमें सर्वाधिक पत्र वे हैं जो उन्होंने अपने काल की लोकप्रिय उर्दू मासिक पत्रिका 'ज़माना' के यशस्वी संपादक मुंशी दयानारायण निगम को लिखे थे।

यों तो मुंशी दयानारायण निगम प्रेमचंद से दो वर्ष छोटे थे लेकिन प्रेमचंद उनको सदा बड़े भाई जैसा सम्मान देते रहे...प्रेमचंद के मानस को समझने के लिए निगम साहब के नाम लिखे उनके पत्रों के महत्व का अनुमान इस तथ्य से लगाया जाना संभव है कि जब 8 अक्टूबर 1936 को उनके देहावसान के उपरांत 'ज़माना' का प्रेमचंद विशेषांक दिसंबर 1937 में प्रकाशित होकर साहित्य-संसार के हाथ में आया तो उसमें 'ज़माना' संपादक मुंशी दयानाराण निगम के कई लेख प्रकाशित हुए, जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेख है 'प्रेमचंद के ख़यालात' इस सुदीर्घ लेख में निगम साहब ने प्रेमचंद की विचार यात्रा का तथ्य परक दिग्दर्शन कराया था।"[5] इस प्रकार समय-समय पर विभिन्न विद्वान लेखकों द्वारा जीवनी लिखते समय प्रेमचंद के पत्रों का उपयोग कितना सजीवता व सार्थकता के साथ किया है वह उपरोक्त जीवनियां पढ़कर सहज ही अंदाज़ा लगाया जा सकता है। प्रेमचंद के पत्रों की खोज का सिलसिला कब शुरू हुआ इस संबंध में कमल किशोर गोयनका अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद : पत्रकोश' में परिशिष्ट के तहत प्रकाशित अपने आलेख 'प्रेमचंद के अप्राप्य पत्र' में इस प्रकार देते हैं कि—"प्रेमचंद के पत्रों की खोज का जो सिलसिला भीष्म साहनी ने 1941 में आरंभ किया था, वह मदन गोपाल तथा अमृतराय के प्रयासों से चरम स्थिति तक पहुंचा और कुल 516 पत्र एकत्र करके प्रकाशित किए जा सके। प्रेमचंद द्वारा लिखे गए पत्रों की संभावित संख्या को देखते हुए यह संख्या बहुत अधिक नहीं है, फिर भी इनके ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"[6]

वर्ष 1962 में प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने प्रेमचंद के लगभग हज़ारों पृष्ठ की लुप्तप्रायः सामग्री को खोजकर प्रकाशित कराया और साहित्य जगत् में इस वर्ष को एक स्मरणीय वर्ष बना दिया। इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य प्रेमचंद के पत्रों को खोजकर 'चिट्ठी-पत्री' नामक दो भागों में संकलित कर प्रकाशित करवाया। इस संकलन के द्वारा अमृतराय ने प्रेमचंद के लुप्तप्रायः पत्रों को प्रकाश में लाकर महत्वपूर्ण कार्य किया था। इस संकलन से पूर्व प्रेमचंद के पत्रों को सहेजने का कार्य किसी भी आलोचक द्वारा नहीं किया गया था। इस तरह अमृतराय का यह कार्य सराहनीय था, उन्होंने प्रेमचंद के नष्ट होते इस साहित्य को लुप्त होने से बचाया। अमृतराय इस संकलन की भूमिका में लिखते हैं—"जीवन के तथ्य तो जैसे इन चिट्ठियों में हैं, क्या लिख रहे हैं, क्या पढ़ रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, घर में कब किसका क्या हाल है, कौन जीया कौन मरा, किसकी शादी हुई... ।"[7] इस प्रकार इस संकलन से कई प्रकार के रहस्य उजागर होते हैं जिनसे पाठक अनभिज्ञ थे। इस संकलन के प्रथम भाग में प्रेमचंद के अभिन्न मित्र 'ज़माना' संपादक मुंशी दयानारायण निगम को लिखे गए लगभग 281 पत्र शामिल हैं, जो कि उर्दू में लिखे गए थे जिनका हिंदी लिप्यंतरण अमृतराय ने किया था। इस संकलन के द्वितीय भाग में 32 व्यक्तियों को लिखे गए 235 पत्र शामिल हैं जो उर्दू, अंग्रेज़ी तथा हिंदी में लिखे गए हैं। इस प्रकार इन दोनों संकलनों में प्रेमचंद के 33 व्यक्तियों को लिखे लगभग 516 पत्रों का अवलोकन होता है। 'चिट्ठी-पत्री' के द्वितीय भाग में 45 ऐसे पत्र भी शामिल हैं जो प्रेमचंद को उनके विभिन्न साहित्यिक मित्रों द्वारा लिखे गए थे। इस तरह प्रेमचंद के पत्रों को सहेजने की दृष्टि से यह प्रथम प्रयास था जो आज भी हिंदी साहित्य में अपना पत्रों की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान रखता है।

इस संकलन के संबंध में रोचक तथ्य यह भी है कि इसे लेकर मदन गोपाल ने अमृतराय के विरुद्ध अदालती कार्यवाही की थी जिसके परिणाम स्वरूप अमृतराय ने मदन गोपाल से समझौता करके इस संकलन की अनबिकी प्रतियों पर सह संपादक के रूप में मदन गोपाल का नाम भी छपवाया था । इसके उपरांत वर्ष 1968 में मदन गोपाल ने उर्दू में 'प्रेमचंद के खुतूत' शीर्षक संकलन प्रकाशित करवाया जिसमें प्रेमचंद के कुछ ऐसे पत्र तो प्रकाशित थे जो 'चिट्ठी-पत्री' में संकलित नहीं हुए थे लेकिन 'चिट्ठी-पत्री' में प्रकाशित अनेक पत्र इस संकलन में सम्मिलित नहीं थे।* इस संबंध में डॉ. गोयनका विस्तृत रूप से प्रकाश डालते हैं कि जब अमृतराय प्रेमचंद की जीवनी पर कार्य कर रहे थे तब उन्हें मालूम हुआ कि मदन गोपाल ने प्रेमचंद के पत्रों का संग्रह किया है। एक पत्र द्वारा अमृतराय ने मदन गोपाल से निवेदन किया कि मुझे उन पत्रों को नकल कर लेने दीजिए जो आपने एकत्र किए हैं। आशा है इस सहायता से आप मुझको वंचित नहीं करेंगे। वर्ष 1959 के अंत तक यह सहमति बन गई और जिसे अमृतराय ने 30 नवंबर 1959 के पत्र में लिखा भी कि मदन गोपाल के द्वारा प्रदत्त प्रेमचंद के पत्रों को दो खंडों में छापा जाएगा और दोनों पर संपादक के रूप में दोनों का नाम प्रकाशित होगा तथा मदन गोपाल को पहले खंड पर साढ़े सात प्रतिशत तथा दूसरे खंड पर पांच प्रतिशत रॉयल्टी मिलेगी परंतु जब 'चिट्ठी-पत्री' के दोनों भाग छपकर आए तो संपादक के तौर पर मदन गोपाल का नाम प्रकाशित नहीं किया गया था। अतः मदन गोपाल का आहत होना स्वाभाविक था। अतः मदन गोपाल ने 14 दिसंबर 1962 को बड़े अपमान एवं आहत भावना से अमृतराय को पत्र लिखा कि तुमने जो आश्वासन मुझे दिए थे, वे सब तुमने नज़रअंदाज़ कर दिए। मैंने पत्रों को ढूंढने में बीस वर्ष लगाए, देश-भर में घूमा, उनकी नकल की, टाइप कराए और तीन हज़ार से अधिक राशि खर्च की और जब तुम दोनों भाइयों ने कुछ नहीं किया, तब मैंने पत्रों को खोजने का सर्वप्रथम प्रयास किया...तुमने मेरे साथ अन्याय किया है और अनुबंध तोड़ा है और मुझे यश और थोड़े से धन से वंचित किया है। प्रेमचंद जैसे महान व्यक्ति के पुत्र से ऐसे व्यवहार की कतई आशा न थी। इस समस्या का समाधान न निकला तो मुझे अदालत का दरवाज़ा खटखटाना पड़ेगा। प्रेमचंद के पुत्र को कटघरे में देखकर मुझे दुःख होगा। इस पत्र का कोई अनुकूल परिणाम नहीं निकला और मध्यस्थता के प्रयासों में असफल होने पर मदन गोपाल ने अपने वकील देविंदर प्रताप बधवा के द्वारा 25 सितंबर 1963 को अमृतराय को नोटिस दिलवा दिया और मामला अदालत में पहुंच गया किंतु शीघ्र ही दोनों पक्षों में अगस्त 1964 को समझौता हो गया जिसके अनुसार 'प्रेमचंद : चिट्ठी पत्री' के दोनों भागों में संपादक के रूप में अमृतराय के साथ मदन गोपाल का नाम भी छपा और उन्हें रॉयल्टी में भी अंशदान मिला और इस प्रकार मदन गोपाल ने प्रेमचंद के पुत्र से लड़ाई में विजय प्राप्त की।"[9] इस तरह देश में यह पहला केस था जिसमें दो पक्षों द्वारा पत्र-संकलन के लिए अदालत का दरवाज़ा खटखटाया गया व बाद में समझौता होकर मामला रफ़ा-दफ़ा हुआ। वर्ष 1988 में डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद के लगभग 1400 पृष्ठों को खोजकर भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' शीर्षक से दो खंडों में प्रकाशित करवाया। इन दोनों खंडों में 31 अप्राप्य कहानियां, पुस्तक समीक्षाएं, लेख, भूमिकाएं, संपादकीय टिप्पणियों के साथ-साथ इस संकलन के द्वितीय भाग में 'प्रेमचंद के पत्र' एवं 'प्रेमचंद के नाम पत्र' के तहत विपुल मात्रा में पत्रों के संयोजन का अमूल्य कार्य किया था। इस खंड में शामिल पत्रों को संकलित करने के पीछे की मंशा को स्पष्ट करते हुए गोयनका पुस्तक की भूमिका में यह स्पष्ट करते हैं कि—"प्रेमचंद के पत्र शीर्षक के अंतर्गत प्रेमचंद द्वारा 52 व्यक्तियों को लिखे गए 149 पत्र संकलित हैं, जिनमें 102 हिंदी में, 27 अंग्रेज़ी में तथा 20 उर्दू में लिखे गए हैं। इन 52 व्यक्तियों में से 10 व्यक्ति ऐसे हैं जिनको लिखे गए पत्र 'चिट्ठी-पत्री' के दोनों भागों में भी संकलित हैं। इसका अर्थ है कि 42 ऐसे व्यक्ति हैं, जिनको लिखे पत्र पहली बार हिंदी में प्रकाशित हो रहे हैं। इनमें 8-10 पत्र ऐसे भी हैं जिनका हिंदी अनुवाद छप चुका है किंतु हमने उन्हें इसलिए संकलित किया है जिससे वे

अपनी मूल भाषा अंग्रेज़ी में सुरक्षित रह सके।"[11] इस तरह पुस्तक में संकलित पत्रों के इतिहास की जानकारी स्पष्ट होती है। डॉ. गोयनका ने इसी पुस्तक में प्रेमचंद को विभिन्न महानुभावों द्वारा लिखे गए पत्रों को भी 'प्रेमचंद के नाम पत्र' शीर्षक से संकलित किया है। इन पत्रों को शामिल करने के संबंध में वे कहते हैं—"यहां कुल 175 पत्र संकलित हैं जो 96 व्यक्तियों द्वारा प्रेमचंद को लिखे गए हैं। इनमें 46 अंग्रेज़ी, 65 उर्दू तथा 64 पत्र हिंदी में लिखे गए हैं। उर्दू पत्रों को हिंदी लिप्यंतर करके तथा कठिन उर्दू शब्दों के हिंदी पर्याय के साथ प्रस्तुत किया गया है।"[11]

इस संकलन के बाद प्रेमचंद के पत्रों के संबंध में एक और संकलन की जानकारी प्राप्त होती है। प्रेमचंद के पहले खोजी विशेषज्ञ और जीवनीकार मदन गोपाल द्वारा उर्दू में प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य को 'कुल्लियात-ए-प्रेमचंद' शीर्षक से 24 भारी-भरकम खंडों में वर्ष 2000-2005 के बीच प्रकाशित करवाया, यह एक चिरस्मरणीय कार्य था। मदन गोपाल ने हिंदी की रचनाओं को उर्दू में लिप्यंतर व रूपांतरण किया था जो एक श्रमसाध्य कार्य था। इस संकलन के भाग-17 में पूर्व प्रकाशित तीनों संकलनों में प्रकाशित पत्रों को उर्दू में प्रकाशित करवाया था। मदन गोपाल प्रेमचंद के पहले ऐसे अध्येता और जीवनीकार थे जिन्होंने प्रेमचंद के पत्रों, कहानियों आदि को खोजा और जीवन के कई दशक पूरी निष्ठा के साथ अर्पित किए। वे पहले प्रेमचंद के निष्ठावान विशेषज्ञ थे जिन्होंने अंग्रेज़ी, उर्दू तथा हिंदी में प्रेमचंद की जीवनी लिखी और तीन भाषा के पाठकों तक प्रेमचंद को प्रमाणिकता के साथ पहुंचाया।[12]

वर्ष 1996 में जनवाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रेमचंद का हिंदी में संपूर्ण मौलिक शुद्ध प्रामाणिक साहित्य को 20 भारी-भरकम खंडों में 'प्रेमचंद रचनावली' शीर्षक से प्रकाशित किया गया जिसके 19वें खंड में प्रेमचंद के पत्रों को संकलित किया। इस रचनावली के संपादक रामआनंद थे, जिन्होंने प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र स्व. श्रीपतराय के साथ मिलकर लगभग बीस वर्षों तक प्रेमचंद के अप्राप्य साहित्य पर शोधकार्य किया था। रामआनंद ने स्व. श्रीपतराय के संपादन में प्रकाशित होने वाली विख्यात कथा पत्रिका 'कहानी' के सहायक संपादक का कार्य भी किया। श्रीपतराय के देहांत के बाद उन्होंने 'कहानी' पत्रिका का स्वतंत्र रूप से संपादन किया और उसे नया रूप तथा गरिमा प्रदान की। इस रचनावली के संपादक मंडल में प्रो. जाबिर हुसैन (अध्यक्ष), सुशील त्रिवेदी, इंद्र सेंगर, मधुकर सिंह, बलराम, कांती प्रसाद शर्मा, रीमा पाराशर जैसे व्यक्ति शामिल थे। रचनावली की भूमिका एवं मार्ग-दर्शन का दायित्व प्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा ने संभाला था। इस संकलन के 19वें खंड में प्रेमचंद के पूर्व प्रकाशित पत्र-संकलन 'चिट्ठी-पत्री' (भाग-1 व भाग-2) एवं 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' (भाग-2) में संकलित 'प्रेमचंद के पत्र' एवं 'प्रेमचंद के नाम पत्र' आदि को शामिल किया गया था ।

वर्ष 2005 में अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली से 'प्रेमचंद पत्रों में' पुस्तक प्रकाशित हुई जिसके संकलन-संपादन का ज़िम्मा डॉ. मंगलमूर्ति ने उठाया था। इस पुस्तक के संबंध में मंगलमूर्ति कहते हैं—"बनारसीदास चतुर्वेदी और शिवपूजन सहाय हिंदी साहित्य के पत्र संग्राहक के रूप में विख्यात रहे हैं। शिवपूजन सहाय के विशाल पत्र-संग्रह में द्विवेदी युगीन तथा छायावाद काल के प्रायः सभी महनीय साहित्यकारों के बहुमूल्य पत्र संग्रहीत हैं। इन्हीं पत्रों के साथ कुछ और पत्रों को कालक्रमानुसार मिलाकर यह पत्र संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें प्रेमचंद, शिवपूजन सहाय, निराला, प्रसाद, विनोदशंकर व्यास आदि धुरीण साहित्यकारों के आपसी पत्राचार के साथ-साथ इनसे जुड़े कई अन्य व्यक्तियों के पत्र एक कालक्रम में सजकर उस युग विशेष का एक सजीव चित्र पेश करते हैं जिसके केंद्र में हैं प्रेमचंद।"[13] पुस्तक में आगे वे स्पष्ट करते हैं—"प्रेमचंद के जितने भी पत्र उपलब्ध हो सके थे उन्हें तो अमृतराय ने प्रकाशित कर ही दिया था हालांकि 'चिट्ठी-पत्री' के प्रकाशन के बाद भी प्रेमचंद के बहुत से पत्र प्रकाश में आए हैं, जिनकी खोज वर्षों के परिश्रम के बाद कमल किशोर गोयनका ने की है तथा उन्हें पहले-पहल 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य'(खंड-2) में प्रकाशित किया है।"[11] इस संकलन में कुल 213 पत्र संकलित हैं जिनमें से 85 पत्र शिवपूजन सहाय, विनोदशंकर व्यास, जैनेंद्र कुमार, बनारसी दास चतुर्वेदी, जनार्दन प्रसाद झा, प्रवासीलाल वर्मा, जयशंकर प्रसाद, निराला एवं पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि लेखकों को प्रेमचंद द्वारा लिखे गए हैं। इनमें से 31 पत्र 'चिट्ठी-पत्री' भाग-2 से एवं 54 पत्र 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' भाग-2 से लिए गए हैं। इस संकलन में कुछ पत्र विभिन्न मित्रों द्वारा प्रेमचंद को लिखे गए भी शामिल किए गए हैं जो लगभग 8 हैं। यह पत्र प्रेमचंद को प्रवासीलाल वर्मा, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', विनोदशंकर व्यास आदि ने लिखे हैं। इनमें से 'चिट्ठी-पत्री' भाग-2 से 2 पत्र एवं 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' भाग-2 से 6 पत्र शामिल किए गए हैं। शेष 128 पत्र विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे गए हैं।

इस संकलन के बाद प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ कमल किशोर गोयनका के द्वारा संपादित दो संकलन और देखने को मिलते हैं जिनमें पहला है वर्ष 2002 में अनिल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित 'प्रेमचंद के नाम पत्र' एवं दूसरा वर्ष 2007 में अमित प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद से प्रकाशित 'प्रेमचंद : पत्रकोश'। इनमें से पहले संकलन में प्रेमचंद को लिखे गए उनके विभिन्न साहित्यिक मित्रों एवं परिजनों के पत्रों को संकलित किया गया था। इस संकलन में लगभग वे सभी पत्र शामिल हो गए हैं जो प्रेमचंद को उनके मित्रों द्वारा लिखे गए थे। दूसरा संकलन जो वर्ष 2007 में 'प्रेमचंद : पत्रकोश' के नाम से प्राप्त होता है इसमें प्रेमचंद के लगभग 673 पत्र संकलित हैं जिनमें पूर्व प्रकाशित संकलन 'चिट्ठी-पत्री' (भाग-1 व भाग-2) से 510 पत्र, 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' (भाग-2) से 149 पत्र एवं 14 पत्र इस संकलन में ऐसे भी शामिल हैं जो किसी भी संकलन में शामिल नहीं हो पाए थे, अर्थात् यह सभी 14 पत्र नए थे जो 'प्रेमचंद : पत्रकोश' में शामिल कर लिए गए थे। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2011 में प्रदीप जैन के कुशल संपादन में पुस्तक 'प्रेमचंद की शेष रचनाएं' देखने को मिलती है। इस पुस्तक के संकलनकर्ता जैन द्वारा प्रेमचंद की शेष बची रचनाओं को खोजने का श्रमसाध्य कार्य को संपादित करने का महनीय कार्य किया गया है। इस पुस्तक में प्रेमचंद की विभिन्न लुप्तप्रायः रचनाओं जैसे—कहानी, लेख, पत्र आदि सामग्री के साथ-साथ कई अन्य विलुप्त सामग्री को संकलित किया गया है। इसी पुस्तक में प्रेमचंद के ऐसे 35 पत्र भी संकलित किए गए हैं जो अब तक पूर्व प्रकाशित किसी भी संकलन में स्थान नहीं पा पाए थे। इस संपूर्ण कार्य का श्रेय डॉ. जैन को जाता है। इन 35 नए पत्रों को शामिल करके डॉ. जैन ने प्रेमचंद के पत्रों की संख्या में अभिवृद्धि करने का एक महत्वपूर्ण कार्य संपादित किया है।

अभी हाल ही में दो ऐसे पत्रों की जानकारी हुई है जो अभी तक किसी भी संकलन में प्रकाशित नहीं हो पाए हैं। यह पत्र प्रेमचंद द्वारा भागलपुर बिहार के प्रसिद्ध साहित्यसेवी तारकेश्वर प्रसाद को जागरण कार्यालय से दिनांक 11/02/1933 एवं 17/03/1933 को लिखे गए थे। इन पत्रों में प्रेमचंद तारकेश्वर जी से होली अंक के लिए 'जोगीडा' पर लेख मांगने का आग्रह करते हैं। यहां पर ध्यातव्य है कि अपने निधन से तीन वर्ष पहले तक भी वे पत्रों में प्रेमचंद के बजाय अपने वास्तविक नाम धनपतराय का ही प्रयोग कर दिया करते थे। एक पत्र में उन्होंने अपना हस्ताक्षर 'धराय' किया है।[15]

इस प्रकार उपरोक्त विवरणानुसार यह स्पष्टतः अनुमान लगाया जा

सकता है कि प्रेमचंद के पत्रों की खोज का सिलसिला समय-समय पर विभिन्न आलोचकों व विद्वानों द्वारा किया जाता रहा है। अभी भी कई ऐसे पत्र हो सकते हैं जो पाठकों के समक्ष न आ पाए हों, प्रेमचंद के पत्र हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं जो प्रेमचंद के जीवन व कृतित्व की भरपूर विवेचना करते हैं एवं इन पत्रों से वे ऐतिहासिक सूत्र पाठक को प्राप्त होते हैं जो अन्य जगह प्रायः कम ही देखने को मिलते हैं। अतः अब समय आ गया है कि प्रेमचंद के लुप्तप्रायः पत्रों की खोज के लिए सामूहिक प्रयास करने होंगे तभी साहित्य की इस अमूल्य निधि को नष्ट होने से बचाया जा सकेगा ।

संदर्भ

(1) प्रेरणा त्रैमासिक पत्रिका, भोपाल, अप्रैल-जून 2013, पृष्ठ : 143 (2) प्रेरणा त्रैमासिक पत्रिका, भोपाल, अप्रैल-जून 2013, पृष्ठ : 142 (3) पुस्तक-वार्ता, द्वैमासिक पत्रिका, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा महाराष्ट्र, मार्च-अप्रैल 2009, पृष्ठ : 34-35 (4) भूमिका, अमृतराय, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ : 4-5 (5) प्रेमचंद के पत्र : तिथि निर्धारण की समस्या, डा. प्रदीप जैन, WWW.Hindisamay.com (6) प्रेमचंद : पत्रकोश, डॉ. कमल किशोर गोयनका, अमित प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, पृष्ठ : 493-494 (7) भूमिका, चिट्ठी-पत्री, भाग-1, अमृतराय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ : 5 (8) प्रेमचंद के पत्र : तिथि निर्धारण की समस्या, डॉ. प्रदीप जैन, WWW.Hindisamay.com (9) पुस्तक-वार्ता, द्वैमासिक पत्रिका, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा महाराष्ट्र, मार्च-अप्रैल 2009, पृष्ठ : 33-34 (10) आत्मकथ्य, प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य खंड-2, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ : 10 (11) वही। (12) पुस्तक-वार्ता, द्वैमासिक पत्रिका, मदन गोपाल : प्रेमचंद के खोजी विशेषज्ञ और जीवनीकार—डॉ. कमल किशोर गोयनका (लेख), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा महाराष्ट्र, मार्च-अप्रैल 2009, पृष्ठ : 35 (13) प्रेमचंद पत्रों में, संकलन-संपादन डॉ. मंगलमूर्ति, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली (14) प्रस्तावना, प्रेमचंद पत्रों में, डॉ. मंगलमूर्ति, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ : 13 (15) महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र, WWW. Hindisamay.com ❑

संपर्क : आवास क्रमांक एच-3, राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, एयरपोर्ट बायपास रोड, गांधी नगर, भोपाल-462033 (म.प्र.)

पत्र

पृष्ठ 5 से आगे

संस्मरण अति मनमोहक है। इसमें शांतिनिकेतन एवं श्रीनिकेतन के विषय में भी अच्छी चर्चा की गई है। शायर शकील बदायूंनी के विषय में एक विस्तृत आलेख देकर उन्हें स्मरण करने का पाठकों को एक स्वर्णिम अवसर प्रदान किया है। उनके देशभक्ति से संपृक्त गीत आज भी लोगों के हृदय में गुंजायमान रहते रहे हैं। वे ऐसे शायर रहे हैं जिनके सुसज्जित गीतों में राष्ट्रीयता का मौलिक स्वर विद्यमान रहा है।

—अमरनाथ मेहरोत्रा, मुज़फ़्फरपुर (बिहार)

संग्रहणीय अंक

● अप्रैल 2015 का 'आजकल' अंक पढ़ा। मासिक में प्राथमिकता से साहित्य, संस्कृति के उत्कृष्ट भूतपूर्व और जीवित विद्वानों के वरणीय लेख निकलते, इस अप्रैल अंक में माखनलाल चतुर्वेदी पर आनंद स्वरूप श्रीवास्तव का प्रकाशित लेख संग्रहणीय लगा। 'आजकल' के इस अंक में माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर जो लिखा गया है, वह वास्तव में पाठकों के लिए एक संग्रहणीय धरोहर है।

—कैलाश बिहारी श्रीवास्तव
रायबरेली (उ.प्र.)



हरसिंगार के पहले पुष्प

सुमन लता सक्सेना

द्वारे की बगिया में हरसिंगार महका
आने वाला है कोई
मन बहका,
हंस पड़े नीचे के पुष्प सब
देखकर ऊंचाई इस हरसिंगार की
गिरा दिए कुछ फूल तब
इसने
कुछ मोद, कुछ प्रमोद से
नीचे के कुसमित
पौधों पर
हो गई आस-पास की मिट्टी भी
सुरभित
उड़-आया है नीलकंठ
शाखा पर
धीरे से चहका
यादों के वन में भी
कोई पुष्प महका
क्या हुआ!
यदि झर जाएंगे कल यह
आज तो यह रूप गंध सच है
भर सको जितनी भर लो
अंक में
आज तो द्वारे की बगिया में
पारिजात महका!

संपर्क : 1-बर्च कोर्ट, निरवाना कंट्री, साऊथ सिरी-2, गुड़गांव-122018 (हरियाणा)

उपेक्षा का शिकार नाटक 'प्रेम की वेदी'

लालसा लाल तरंग

'राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के दौर में जहां अनेक लेखक समर से भाग कर किसी अमूर्त भारतीयता में शरण ढूंढ रहे थे, प्रेमचंद ने स्वयं जीवंत इतिहास के अंदर उस तत्कालीन भारतीयता को पहचानने का प्रयास किया और इस प्रयास में इस सत्य का उद्‌घाटन किया कि भारतीयता भारत की वास्तविक चेतना ही नहीं बल्कि एक संभाव्य चेतना है। इसी चेतना ने प्रेमचंद को अतिरंजित आत्म-गौरव और आत्मदया दोनों ही प्रकार की दुर्बलताओं से उबारकर अंततः अपने-आपको वास्तविकता को सहज सीधे और निर्निमेष रूप में देखने की यथार्थ दृष्टि दी' जो वी.एस. नायपाल के अनुसार केवल गांधी में थी लेकिन नायपाल की इस बात से आंशिक सहमति के साथ यह मानना जरूरी है कि ''यथार्थवादी साहित्य चेतना की अभिव्यक्ति है''। यथार्थवादी रचनाकार दो बातें स्पष्ट करने का सतत प्रयास करता है। पहली बात है कि 'समाज कैसा है।' दूसरी बात है—'समाज को कैसा होना चाहिए' और इसी कैसा होना चाहिए को मूर्तरूप देने के लिए वह सार्थक प्रयास, सार्थक सुझाव-उपाय और सक्रिय कदम भी दिखाता और उठाता है। यही कारण है कि जो रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से शब्द और संवेदना के उज्ज्वल और उर्वर फलक पर मानवता एवं मानवीय सरोकारों के पुष्प खिलाते हैं, उनकी रचनाएं अमरता प्राप्त करती हैं। प्रेमचंद के साहित्य को उपर्युक्त सारे निष्कर्षों पर कसकर देखा जा सकता है, चाहे कहानी हो, उपन्यास हो, निबंध हो, संपादकीय हो या फिर नाटक जबकि उनके नाटकों पर अब तक अत्यंल्प चर्चाएं उपलब्ध हैं। नायपाल के विचारों का ओछापन तो उनके एक वाक्य से व्यक्त हो जाता है कि 'स्वयं प्रेमचंद अदना किस्सागो थे जो ज्यादातर विधवाओं और साहुओं की अवस्था जैसी सामाजिक व्यवस्था से ग्रस्त थे।'[1]

प्रगतिशील साहित्य पर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से अपने विचार व्यक्त किए हैं लेकिन सभी के केंद्र में प्यार और आक्रोश अवश्य दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचंद ने 'गोदान', 'पूस की रात', 'कफ़न' और 'मंगलसूत्र' (अधूरा) इसलिए लिखा क्योंकि इन कृतियों में चित्रित पात्रों को अपनी सहानुभूति दे सकें। ऐसा उन्होंने क्यों किया? इसलिए कि उनके दिल में साधारण जनता के प्रति अपार ममता थी, प्यार था और जिन शक्तियों ने जनता की वाणी को अवरुद्ध कर रखा है उनके प्रति प्रबल आक्रोश की भावना थी। प्रेमचंद ने जिस परिवर्तन की चाह की, उनकी रचनाओं से कुछ तो हुआ—कुछ हो रहा है और कुछ की उम्मीद है। और अगर ईमानदारी से देखा जाए और परखा भी जाए तो 'प्यार और आक्रोश' के इस द्वंद्वात्मक रिश्ते को वही लोग समझ सकते हैं जो किसी स्वार्थ की भावना से प्यार नहीं करते बल्कि प्यार निःस्वार्थ निष्कलुष एवं निस्कलंक होता है। इसमें व्यापक लोक-मंगल की कामनाएं ही होती हैं। संदर्भ प्रासंगिक होगा कि तुलसीदास का 'रामचरित मानस', निराला की 'राम की शक्ति पूजा', नागार्जुन के 'बलचनवा', गोरकी की 'मां', टॉलस्टॉय की 'युद्ध और शांति' में प्यार और आक्रोश के इस द्वंद्वात्मक संबंध को बखूबी देखा जा सकता है। हालांकि यह भी सच है कि अब तक जो प्रतिमान इस दिशा में गढ़े गए, निष्पक्ष कम ही दिखे। इन पर वैचारिकता की धुंध और किसी न किसी 'वाद' की छौंक साफ़ दिखी। प्रतिमान प्रामाणिक विश्लेषण के दावे के साथ उपस्थित होने के बावजूद ढांचे को तोड़ने में प्रायः असफल साबित हुए हैं। प्रतिमान का कार्य प्रायः मूल निर्णय देने का होता है।

प्रेमचंद का नाटक 'प्रेम की वेदी' 1933 में प्रकाशित हुआ, बावजूद इसके प्रेमचंद ने जिस उद्‌देश्य को ध्यान में रखा था उसका भलीभांति प्रतिपादन हुआ है। यह अलग बात है कि आज अंतर-जातीय विवाह, अंतर-धार्मिक विवाह भी हो रहे हैं तथापि जिन आशंकाओं को मिस जेनी के माध्यम से 1933 में योगिराज के समक्ष प्रेमचंद ने रखा था—आज भी वे आशंकाएं अधिकांशतः समाज में मौजूद हैं जिसके प्रमाण में 'ऑनर किलिंग', 'लव किलिंग', 'इंटरकास्ट किलिंग' आदि घटनाएं अख़बारों की स्याही बनती देखी जाती हैं।

प्रेमचंद के नाटकों में अनुभव की सच्चाई स्पष्ट रूप से झलकती है। अपने तीनों ही नाटकों में उन्होंने 'दृश्य-माध्यम' और 'श्रव्य-माध्यम' को अपनाया है। 'प्रेमचंद के नाटकों पर अत्यल्प चर्चा मिलती है, हिंदी में उनके तीन नाटक उपलब्ध हैं—'संग्राम' (रचनाकाल 1922-23), 'कर्बला' (रचनाकाल जनवरी 1923) और 'प्रेम की वेदी' (प्रकाशन 1933)। इसके अलावा एक उर्दू नाटक की भी अत्यल्प चर्चा मिलती है।

'प्रेम की वेदी' के सम्मुख जयशंकर प्रसाद के नाटकों में नारियों की मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर ध्यान अवश्य जाता है। डॉ. नगेंद्र ने लिखा है, ''प्रसाद के अंतर में करुणा का गहन भाव था, जीवन में गरल के कटुघोटों को पीकर वे ऊपर से पूर्ण शांत एवं हंसमुख दिखाई देते थे।''[2] करुणा का यही भाव उनके नारी पात्रों में छाया मिलता है। मल्लिका, कोमा, देवसेना आदि में नारियां इसी भाव से भरीपुरी दिखती हैं जो जीवन के संघर्षों और प्रेम की करुण अनुभूतियों को अपने अंतर में छिपाकर शांत व गंभीर बनी रहती हैं। प्रेमचंद का 'प्रेम की वेदी' नाटक 1933 में प्रकाशित हुआ जबकि 'ध्रुवस्वामिनी' को छोड़कर (जो 1933 में प्रकाशित हुआ) प्रसाद के सभी नाटक 1910 से 1933 के ही बीच के हैं। प्रेमचंद का 'प्रेम की वेदी' नाटक की मुख्य नारी पात्र है मिस जेनी—मिसेज गार्डेन की सुपुत्री। मनोवैज्ञानिक 'युग' ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण दो प्रकार से किया है—बहिर्मुखी और अंतर्मुखी। 'प्रेम की वेदी' की मुख्य नायिका मिस जेनी अंतर्मुखी नारी पात्र है। अंतर्मुखी व्यक्तियों की अभिरुचि बाह्य संसार की ओर न होकर स्वयं की ओर अधिक होती है। ये आत्मकेंद्रित व एकांतप्रिय होते हैं। इनमें विचारों की प्रधानता होती है। मिस जेनी इसी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति की है। मिस जेनी 'प्रेम की वेदी' पर सर्वस्व बलिदान कर देती है।

'प्रेम की वेदी' में मिस जेनी को जिस भूमिका में मंचित किया गया है उसमें उसके निःस्वार्थ प्रेम की स्पष्ट सुगंध आती है। 'प्रेम की वेदी' पर उसका बलिदान एक निःस्वार्थी कर्मयोगी का ही कर्म है। वह राजनीतिक गुलामी के साथ-साथ मानसिक गुलामी की भी कट्टर विरोधी थी। 'पुरुष वर्चस्व' भी एक तरह से नारी के मानसिक गुलामी का ही परिचायक है जिसे मिस जेनी सहन नहीं करती। इसीलिए प्रेमचंद को मुक्तिबोध ने 'उत्थानशील भारतीय सामाजिक क्रांति के प्रथम और अंतिम महान कलाकार' कहा था। 'प्रेम की वेदी' की मंचीय भाषा के पारंपरिक तत्व जैसे दृश्यबंध, प्रकाश संयोजन, वेशभूषा, रूपसज्जा, अंतर्संबंध आदि में भी आधुनिकता पीछे नहीं छूटती जबकि यह नाटक 1933 में प्रकाशित हुआ।

जब हम नाटक की विषयवस्तु पर समुचित एवं व्यापक दृष्टि डालते हैं तो नाटक का उद्‌देश्य और उसकी श्रेष्ठता पर्त-दर-पर्त उघरती जाती है।

किसी पिक्चर में एक गाना सुना था—"कभी हमसे तुमसे प्यार था, तुम्हें याद हो कि न याद हो" नाटक के पहले ही पृष्ठ पर मिस जेनी अपने पियानों पर इसी गाने की पंक्ति गा रही थी कि उसकी मां आती है और 'विलियम' के आने के विषय में बतलाकर विलियम के विषय में बताती है (क्योंकि वह चाहती है कि जेनी विलियम से शादी कर ले) विलियम मिस जेनी को पाने के लिए झूठ का भी सहारा लेकर क्रीड़ा क्षेत्र में झूठा प्रमाण-पत्र भी बनवा लेता है लेकिन सच तो सच है झूठ आख़िर कितने दिनों तक छिपाया जा सकता है। अपनों से या परायों से झूठ का भंडाफोड़ हो जाने पर जो परिणाम होता है उसे विलियम को भी देखना पड़ा। प्रेमचंद ने झूठ का पर्दाफ़ाश भी किया है। मिस जेनी ने पहले ही इंकार करते हुए मां से कहा था—"मैंने कह दिया कि मेरी तबियत उनसे नहीं मिलती। आप बर्बस उनके पीछे पड़ी हुई हैं।" (पृष्ठ 10) मिसेज गार्डेन नारी द्वारा नौकरी करने को अच्छा नहीं मानती लेकिन जैनी इस विचार से अलग है। यहां तक कि जेनी ज़ेवरों तक को पति की गुलामी का चिह्न मानती है। कंगन को गुलामी की हथकड़ी, हार को गुलामी का तौक मानती है [3] हालांकि उसकी सहेली उमा इस विचार से अलग होकर नारी धर्म की पुजारी है और गहनों को व्रत, कर्त्तव्य और आत्म समर्पण का चिह्न मानती है जो एक पत्नी का धर्म है। जब जेनी ये कहती है कि 'पुरुषों के लिए ऐसे कुछ बंधन क्यों नहीं? कर्तव्य और प्रेम क्या सिर्फ महिलाओं के लिए हैं?" तब उमा को संभवतः खीज बरती है और वह यहां तक कह देती है कि "शूद्रों के लिए निशानी की जरूरत नहीं। द्विजों के लिए यज्ञोपवीत आवश्यक है"। जेनी तो बेटियों के ललाट पर टीका को 'खून का टीका' तक कह जाती है क्योंकि पुरुषों के लिए यह साज-सजावट या बंधन क्यों नहीं है—यह जेनी का सवाल है। पुरुष, स्त्री पर शासन करता है क्यों? जेनी की मान्यता है—"जिन स्त्रियों में अपना विचार है, अपना व्यक्तित्व है, अपनी इच्छा है, जिन्हें कीर्ति और ख्याति की लालसा है उन्हें अविवाहित ही रहना चाहिए।... अपनी हस्ती को पति की हस्ती में डुबो देना इतना बड़ा त्याग है जो मैं नहीं कर सकती।" [4]

यह विचार और यह नारी स्वतंत्रता का दृढ़ भाव आज के नारी-विमर्श का विषय बना हुआ है जबकि प्रेमचंद इस विमर्श के मूल तत्व को 1933 में व्यक्त करते हैं। और तब भी किसी आलोचक या एकेडिमिक या शोधार्थी या सुधी पाठक की दृष्टि इस बिंदु तक नहीं पहुंची। यह अलग बात है कि मिस जेनी भी एक औसत स्वस्थ, पढ़ी-लिखी और सुलझी हुई है। मिस जेनी नारी स्वतंत्रता और अपनी पसंद चाहती है पुरुष वर्चस्व, पुरुष गुलामी नहीं चाहती है। शिक्षा और नौकरी—ताकि आर्थिक निर्भरता बनी रहे—का समर्थन करती है। आज स्त्री-विमर्श में जो बिंदु शामिल किए जाते हैं या शामिल हैं, 'आधी दुनिया' की जो स्पष्ट एवं प्रबल मांग है वह 'प्रेम की वेदी' में 1933 में ही लेखक ने उठाई। प्रेमचंद इसलिए भविष्य द्रष्टा हैं। इस नाटक में गर्भपात पर कितना बड़ा सवाल उठाया गया है यह भी गंभीरता पूर्वक विचारणीय है। इस नाटक में स्त्री-पुरुष संबंधों की प्राचीन परंपरागत समस्याओं को रेखांकित किया गया है और समाधान ढूंढने का सफल प्रयास भी किया गया है। इस नाटक की विशेषता है कि इसमें 'स्वगत' मात्र एक स्थान पर आया है वह भी मात्र 13 पंक्तियों का, मंचीयता की दृष्टि से यह एक बहुत ही अच्छा गुण है। मिस जेनी अपने विचारों के बावजूद एक औरत के स्वभाव को भी पालती है लेकिन मर्यादाओं के भीतर। स्वगत के माध्यम से वह महसूसती है।

"... एक क्षण के लिए भी उनकी सूरत आंखों से नहीं उतरी। ऐसे प्रेम पर अपना सर्वस्व अर्पण कर देने वाले प्राणी भी इस संसार में हैं। वह मैंने उन्हीं को देखा। मुझे स्वर्ग की विभूति मिल रही थी ममा, मैंने समाज के भय से उसे ठुकरा दिया।" [5] अगर दूसरे पक्ष पर विचार किया जाए तो जेनी धर्म-संप्रदाय, अभिलाषा और अनेक मत-मतांतर—सभी का विरोध करती है, बल्कि वह यहां तक मानती है कि इन्हीं सब ने संसार में विष फैलाया है—जेनी कभी-कभी पागलों जैसी बातें करती है—ममा मैं उन्हें (योगिराज) छोड़कर क्यों यहां चली आई?' उमा की बीमारी में जेनी वहां गई थी। योगिराज का अनुराग देखा था। ... "... ऐसा धर्म लुटेरों का हो सकता है, स्वार्थियों का हो सकता है, मूर्खों का हो सकता है, ईश्वर का नहीं हो सकता।" [6]

मिस जेनी आदमी और दौलत के संबंधों पर भी बिफरती है—'... आज दौलत जिस तरह से आदमियों का खून बहा रही है, उसी तरह उससे ज्यादा बेदर्दी से, धर्म ने आदमियों का खून बहाया है। दौलत कम-से-कम इतनी निर्दय, कठोर नहीं होती लेकिन दौलत वही कर रही है जिसकी उससे आशा थी, धर्म तो प्रेम का संदेश लेकर आता है और काटता है आदमियों का गला, वह मनुष्यों के बीच ऐसी दीवार खड़ी कर देता है जिसे पार नहीं किया जा सकता।...

...नतीजा क्या हुआ? लड़ाई और कत्ल। रंग का भेद, नस्ल का भेद। ... मैं कहती हूं यह धर्म का प्रसाद है जिसने हमारे मन को संकीर्ण बना डाला है।" [7] जब मिसेज गार्डेन ने विलियम से शादी कर ली तब जेनी को हार्दिक संतोष होता है और अंत में अपनी ममा को धन्यवाद देकर कहती है—"तुमने मेरे हृदय का बोझ उतार दिया। अब मुझे कोई शंका नहीं, कोई बाधा नहीं, आज मैं सारे ढकोसलों को, इन सारे बनावटी बंधनों को 'प्रेम की वेदी' पर अर्पण करती हूं। यही ईश्वर का धर्म है। धन का धर्म, विद्या का धर्म, राष्ट्र का धर्म संघर्ष हो सकता है, खुदा का धर्म प्रेम है और इसी धर्म को मैं स्वीकार करती हूं। शेष धोखा है। आप फ़ौरन मोटर मंगवाइए, गाड़ी तो दो बजे है। इंतज़ार नहीं करूंगी। मैं मोटर से ही जाऊंगी...। परंतु जब योगिराज के मरने का समाचार तार द्वारा मिलता है तो जेनी—जो अब तक ग़श खाकर बेहोश हो गई थी—के मुख पर मिसेज़ विलियम गुलाब जल छिड़कती हैं तब एक-दो मिनट बाद वह होश में आती है फिर पगला जाती है और योगिराज के फोटो का चुंबन लेती है। धर्म संप्रदाय पर इस नाटक में खूब चोट की गई है और मानवता का वरण स्पष्ट रूप से मिलता है। वस्तुतः नाटक क्रांतिदर्शी एवं समाजोपयोगी है। कर्म प्रधान है। नारी अस्तित्व और आज़ादी के प्रश्न का हल है। छुआछूत और धर्म परिवर्तन का विरोधी है। ... समाज में तुम्हारा जो स्थान है उसकी रक्षा करना भी मेरे प्रेम का अंग हो गया है।" [8]

'प्रेम की वेदी' नाटक प्रसाद के नाटकों के पूर्व लिखा गया परंतु परंपराएं तो कभी-कभी बनती चलती रहती हैं। 'कामायनी' में प्रसाद की श्रद्धा भी प्रेमचंद की 'प्रेम की वेदी' की नायिका मिस जेनी की तरह मनु को कर्म की शिक्षा और निस्वार्थता की सीख देती है। श्रद्धा एक प्रसंग में मनु का 'स्व' में बंद रहने की जड़ता का विरोध करती है। वह आत्महीनता त्यागने और कर्ममय जीवन बिताने की सलाह देती है अर्थात् कोई जरूरी नहीं कि रज्जन ('प्रेम की वेदी' में) उमा की मृत्यु के बाद हरिजन लड़की मिस जेनी से शादी करके ही जीवित रहे और सामाजिक दायित्व का निर्वाह करे। मिस जेनी सीख देती है कि वह योगिराज को बदनामी या तानों या व्यंग के बीच से गुज़रने की सलाह नहीं देगी और वह अपने प्रेम का सर्व सामाजिक हित में बलिदान कर रही है क्योंकि योगिराज सिर्फ़ अपना हित, अपना जीवन और स्वार्थ देख रहा है जो विनाश का कारण भी बन सकता है, यह मिस जेनी नहीं चाहती।

संदर्भ

1. 'पारखी' अक्तूबर-2010, पृ. 262, 2. आधुनिक हिंदी नाटक, नागेंद्र, पृ. 13, 3. प्रेमचंद रचनावली-10, पृ. 310, 4. वही, 5. वही, पृ. 344, 6. वही, पृ. 342, 7. वही, पृ. 343, 8. वही, पृ. 335 ❑

संपर्क : 464, राधिका निवास, भोलाघाट मार्ग, एलवल, आज़मगढ़-276001

महोबा : एक समय यहां रहते थे प्रेमचंद

प्रकृति की सौंदर्य स्थली में बैठकर प्रेमचंद ने किसी सौंदर्य को अपनी रचना में नहीं उतारा। वे तो भूख, ग़रीबी, अन्याय, सामाजिक कुरीतियों आदि से इतना क्षुब्ध और बेचैन रहते थे कि प्रकृति का सौंदर्य उनके लिए नगण्य था, चर्चा कर रहे हैं **आनंद स्वरूप श्रीवास्तव**

आज से सौ साल पहले मुंशी प्रेमचंद ने महोबा छोड़ दिया था। वह वहां जून 1909 से लेकर जुलाई 1914 तक कुल पांच वर्ष रहे। वह वहां कानपुर से स्थांतरित होकर सब डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल के रूप में महोबा आए थे। महोबा में मुंशी प्रेमचंद का जो प्रवास था वह उनके कलम साधने और मांजने का वक्त था। उस समय उनकी उम्र 29 वर्ष थी और वह पूरी तरह उर्दू भाषा में लेखन करते थे। काल के गर्त में आज भी बहुत-सी चीज़ें हैं जो दबी पड़ी हैं, जिन्हें प्रेमचंद के रचना-संसार को समग्र रूप से जानने के लिए खोजने की अभी बहुत जरूरत है।

प्रेमचंद के ज़माने का महोबा और आज का महोबा में बड़ा फ़र्क़ आया है। महोबा आज उत्तर प्रदेश का एक जिला बन चुका है जिसकी चरखारी, कुलपहाड़, महोबा तीन तहसीलें हैं। चरखारी, कुलपहाड़ तहसीलें यहां से 20 व 21 किलोमीटर की दूरी पर हैं। शुरू से ही महोबा हमीरपुर जिले की तहसील थी। झांसी-बांदा रेलवे रूट पर स्थित होने के कारण आज महोबा एक ऐतिहासिक नगर तथा पर्यटक स्थल के रूप में विकसित हो चुका है। लमही जहां मुंशी प्रेमचंद का जन्म स्थान रहा वहीं महोबा प्रेमचंद की कर्मभूमि रही। लमही और महोबा के बीच जीने वाले कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद अपनी कालजयी कृतियों के कारण आज भी हमारे बीच प्रासंगिक बने हुए हैं।

ऐतिहासिक नगरी महोबा बुंदेलखंड की वीरभूमि के रूप में जानी जाती है। इसे 'महोत्सव नगर' भी कहा गया है। 'भविष्य पुराण' में इस प्राचीन नगरी का उल्लेख काफी विस्तार से मिलता है। चंदेल साम्राज्य का बहुत दिनों तक इस नगरी पर अधिपत्य रहा। चंदेलकालीन यहां दो स्मारक हैं। महोबा राज्य की अखंडता और सम्मान के लिए रणबांकुरे आल्हा-ऊदल ने इसे एक ऐतिहासिक गौरव प्रदान किया। कवि जगनिक की ये पंक्तियां आज भी सबकी जुबान पर हैं—बड़े लड़इया महुबे वाले, छपक-छपक बाजे तलवार। महोबा की वीरभूमि जहां अपनी वीरता के लिए मशहूर है वहीं वह अपने लज़ीज़ पान के लिए भी मशहूर है। यह एक संयोग ही है कि तलवार और पान की इस नगरी में मुंह में बनारसी पान की गिलौटी दबाए तलवार की तरह अपनी कलम मांजने एक क़लम का सिपाही भी आया। यह क़लम का सिपाही और कोई नहीं मुंशी प्रेमचंद ही थे। यहां आने से पूर्व उनकी पहली पत्नी से संबंध विच्छेद हो गया था उनकी दूसरी पत्नी श्रीमती शिवरानी देवी जो सलेमपुर के मुंशी देवीप्रसाद की बाल विधवा थीं, प्रेमचंद के साथ महोबा आईं। स्टेट बैंक की नौकरी ज्वाइन करने के सिलसिले में मैंने जनवरी 1972 में महोबा शाखा ज्वाइन किया था। चार-पांच दिन मकान के लिए भटकता रहा फिर मकान मिला तो उसी छजमन पुरा मुहल्ले में जहां मुंशी प्रेमचंद कभी रहा करते थे। मुहल्ले के बड़े-बुजुर्गों से प्रेमचंद के लेखन और जीवन संघर्षों की कहानियां सुन-सुनकर मेरा मन रोमांच से भर जाता था। साहित्य में अभिरुचि होने के कारण मैं प्रायः यह महसूस करता था कि महोबा की माटी जो मुंशी प्रेमचंद के चरण रज से सुवासित हुई है वह कोई न कोई सुवास मेरे अंदर देर-सबेर जरूर भरेगी। प्रेमचंद जिस मकान में रहते थे वह अब एकदम खंडहर हो चुका है। मकान से लगा एक विद्यालय था जिसमें शिक्षा विभाग का ताला पड़ा हुआ है। छजमन पुरा मुहल्ले का यह स्थान कोतवाली रोड पर वियोगी जी मौनसाधना केंद्र के ठीक सामने है। मकान मालिक के प्रपौत्र नरेश श्रीवास्तव वहीं पास में एक मिठाई की दुकान चलाते हैं। खंडहर में तब्दील पूरे परिसर में नरेश जी का कोई आधिपत्य प्रतीत नहीं होता।

महोबा के बद्रीप्रसाद शुक्ल, रमाशंकर श्रीवास्तव एडवोकेट तथा स्वामीदयाल श्रीवास्तव (अब सभी दिवंगत) मुझे बताया करते थे कि मुंशी प्रेमचंद ढिबरी की रोशनी में रफ़ कापियों पर पेंसिल से उपन्यास, कहानियां लिखा करते थे। कापी के पन्ने वे होते थे जिन्हें बच्चे परीक्षा पुस्तिकाओं में सादा छोड़ देते थे। प्रेमचंद अपना संपूर्ण समय लेखन में बिताते थे। वे कभी-कभी रात-भर लिखते थे। कोई भी कहानी जब तक वह पूरी नहीं कर लेते थे, सोते नहीं थे। छजमन पुरा मुहल्ला न तो आज की तरह आबाद था न वहां आज की तरह पढ़े-लिखे लोग थे। प्रेमचंद के लेखन में कोई रुचि नहीं लेता था। प्रेमचंद कम ही लोगों को अपनी कहानी सुनाते थे। आज इस मोहल्ले से सटे तीन और मोहल्ले—नैकाना, छिपियाना, शुक्लाना आबाद हो गए हैं। महोबा में मुंशी प्रेमचंद का रहन-सहन बहुत साधारण था। किताब-कापियां उनके पास बहुत थीं जो सीलन भरे फर्श पर बिछे एक बोरे या पटरे पर रखी रहती थीं। प्रेमचंद की पहली पुत्री का यहां निधन हो गया था। उनकी दूसरी बेटी कमला देवी श्रीवास्तव का जन्म 1914 में यहीं हुआ था। कमला देवी का ब्याह सागर (म. प्र.) के वासुदेव एडवोकेट के साथ जून 1929 में हुआ। यह विवाह लमही (वाराणसी) गांव से संपन्न हुआ। इस विवाह की विशेषता यह थी कि प्रेमचंद कन्यादान के लिए तैयार न हुए। उनका कहना था कि जानवरों का दान किया जाता है लड़की का नहीं। कमला देवी सिविल लाइंस सागर में रह रही थीं। वह 80 वर्ष से अधिक की थीं जब उनका निधन हुआ। जयपुर से निकलने वाली राजस्थान साहित्य अकादमी की पत्रिका 'मधुमती' के जुलाई 1991 अंक में उनका एक साक्षात्कार प्रकाशित हुआ था जिसमें वह बताती हैं—''बाबू जी दौरे करने जाते थे और बुंदेलखंड में आलू तथा घुइयां की सब्ज़ी खाने के कारण उनको जीवन-भर के लिए प्राण लेवा खूनी-पेचिस की बीमारी हो गई। मेरी मां शिवरानी देवी बताती थीं कि महोबा में एक बार ऐसी स्थिति हो गई कि वे बड़ी मुश्किल से बच पाईं। मेरी मां को भी यहीं से संग्रहणी की शिकायत हो गई थी।''

महोबा आने से पूर्व प्रेमचंद का पहला उपन्यास 'प्रेमा' छप चुका था। यह उपन्यास इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से छपा। अप्रैल 1908 में 'ज़माना' में उनकी उर्दू कहानी 'इश्के दुनिया' और 'हुब्बे वतन' प्रकाशित हुई। 1908 में प्रथम उर्दू कहानी-संग्रह 'सोज़ेवतन' भी छप गया था लेकिन 1909 में हमीरपुर के जिला कलक्टर ने कुलपहाड़ में इसकी छपी 700 प्रतियां आग में भस्म करा दी और प्रेमचंद को बहुत डांटा भी। उन्होंने प्रेमचंद को आदेश दिया कि प्रकाशन से पूर्व सभी कहानी, रचनाएं सरकार को दिखा लिया करें। कहानियों के अलावा प्रेमचंद लेख भी लिखते थे। उनका एक लेख 'कलामे सुरूर', 'ज़माना' के जुलाई 1911 अंक में छपा था। महोबा प्रवास के दौरान ही प्रेमचंद ने 'आल्हा' की जीवनी भी लिखी। इस जीवनी का आंशिक भाग बाद में सागर विश्वविद्यालय के बुंदेली पीठ की पत्रिका—'ईसुरी-2' में 1984-85 में प्रकाशित हुआ। पत्रिका के प्रथम खंड—'साहित्य रचना और शोध' में यह प्रकाशित होने के कारण अंक बहुत सरस और रोचक बन गया था। प्रेमचंद की क़लम से आल्हा की जीवनी पर्याप्त जीवंतता से जैसे भर उठी थी। हिंदी के पाठक यह बहुत कम जानते होंगे कि मुंशी प्रेमचंद का नाम कब और कहां पड़ा। 'सोज़ेवतन' की प्रतियां जब जला दी गईं तो प्रेमचंद ने अपना नाम धनपतराय, नवाबराय और अफ़साना कुहन आदि बदलकर प्रेमचंद रख लिया।

यह बात 1910 की है। 'ज़माना' के संपादक मुंशी दयानारायण निगम जो उनके बड़े घनिष्ठ मित्र थे, सुझाव दिया कि वे अपना नाम प्रेमचंद रख लें। उनके इस सुझाव के बाद 'बड़े घर की बेटी' कहानी प्रेमचंद के नाम से 1910 में प्रकाशित हुई। 1972 से 1978 महोबा प्रवास के दौरान मेरे कवि मित्र बने संतोष पटैरिया आज महोबा के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। उन्होंने प्रेमचंद पर शोध लेख भी लिखे हैं। एक भेंट में उन्होंने बताया था कि महोबा से कुछ ही दूरी पर स्थित गांव मछिगवां से 6 फरवरी 1913 में मुंशी दयानारायण निगम को प्रेमचंद ने एक पत्र लिखा कि वह 10 रुपये भेज दें जो उन्हें आर्य समाज मंदिर को देना था। उन दिनों प्रेमचंद की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। निगम जी प्रेमचंद के प्रकाशक ही नहीं, सुख-दुख के साथी भी थे। प्रेमचंद निगम जी के साथ नाते-रिश्तेदारी में भी जाया करते थे। वह इस सिलसिले में मेरे शहर रायबरेली आया करते थे। रायबरेली किले बाज़ार के पास जहां बड़ा कुआं है वहीं आनंद निगम 'आकुल' का पुश्तैनी मकान है। कुछ समय पूर्व एक साहित्यिक गोष्ठी में जो प्रेमचंद पर आयोजित थी, बताया था कि मुंशी दयानारायण निगम आकुल जी के बाबा राधिकाकुमार निगम के

जिस समय मुंशी प्रेमचंद महोबा में रह रहे थे उस समय वहां का प्राकृतिक सौंदर्य अद्‌भुत था। महोबा नगर के चारों ओर कीर्तिसागर, विजयसागर, मदनसागर पानी से भरे होते थे। उनके पक्के घाट और ताल में झिलमिलाती पहाड़ियों की छटा बड़ी मनोहारी लगती थी। प्रेमचंद अक्सर यहां आते और कॉपी-पेंसिल लिए घाट पर बैठे लिखा करते।

साले थे या यूं कहें कि आकुल जी के पिता सुप्रसिद्ध बांसुरी वादक ताराबाबू निगम के मामा थे। प्रेमचंद अक्सर दयानारायण निगम के साथ रायबरेली भी आया करते थे। प्रेमचंद की उन्मुक्त हंसी मशहूर थी। वे जब हंसते थे तो आसपास के लोग जान जाते थे कि मुंशी प्रेमचंद आए हैं। प्रेमचंद और मुंशी दयानारायण निगम के बीच काफी दिनों तक पत्राचार हुआ। उनके लगभग 281 पत्रों को प्रेमचंद के सुपुत्र अमृतराय ने एकत्र किया और उनका उर्दू से हिंदी में लिप्यंतरण किया।

जिस समय मुंशी प्रेमचंद महोबा में रह रहे थे उस समय वहां का प्राकृतिक सौंदर्य अद्‌भुत था। महोबा नगर के चारों ओर कीर्तिसागर, विजयसागर, मदन सागर पानी से भरे होते थे। उनके पक्के घाट और ताल में झिलमिलाती पहाड़ियों की छटा बड़ी मनोहारी लगती थी। प्रेमचंद अक्सर यहां आते और कापी-पेंसिल लिए घाट पर बैठे लिखा करते। वहां के लोगों ने यह भी बताया कि महोबा में खखरामठ तथा रहेलिया का जो सूर्य मंदिर है उससे प्रेमचंद बहुत प्रभावित थे क्योंकि ये दोनों स्थल चंदेली कलाकृति की अमूल्य धरोहर हैं। रख-रखाव के अभाव में ये अमूल्य धरोहर आज जीर्ण-शीर्ण हालत में तब्दील हो गए हैं। कीर्तिसागर में आज भी कजली महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। यहां आल्हा मंच पर आल्हा गायन की प्रस्तुति होती है। 832 साल पहले इसी सागर के तट पर हुए भुजरियों के युद्ध में राजकुमारी चंद्रावल ने हाथों में तलवार लेकर सखियों के साथ जौहर दिखा दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान के छक्के छुड़ा दिए थे। गोखागिरि की गुफा, मनियादेव मंदिर, छोटी-बड़ी चंडिका के स्थल भी प्रेमचंद के यदा-कदा घूमने-फिरने के हुआ करते थे। कभी-कभी तो इन स्थलों पर एकांत बैठकर कहानियों के वे ताना-बाना बुनते।

प्रकृति की सौंदर्य स्थली में बैठकर प्रेमचंद ने किसी सौंदर्य को अपनी रचना में नहीं उतारा। वे तो भूख, ग़रीबी, अन्याय, सामाजिक कुरीतियों आदि से इतना क्षुब्ध और बेचैन रहते थे कि प्रकृति का सौंदर्य उनके लिए नगण्य था। प्रेमचंद के समय में महोबा में यातायात के साधन आज की तरह नहीं थे। स्कूलों के निरीक्षण हेतु उन्हें घोड़ी या बैलगाड़ी का सहारा लेना पड़ता था। घोड़ी पर चढ़कर उन्होंने महोबा के आसपास का व्यापक भ्रमण भी किया था। चरखारी, कुलप बेलाताल (जैतपुर), बेंदो वे प्रायः अपनी घोड़ी से ही जाया करते थे। रानी सारंधा, राजपूत की बेटी, राजहठ और राजा हरदौल कहानियां उनके इसी भ्रमण का परिणाम थीं। बेंदो पनवाड़ी के पास है। यहां एक शिव मंदिर है जहां प्रेमचंद प्रायः जाया करते थे। 'आत्माराम' कहानी यहीं पर लिखी गई।

31 अगस्त 1980 में देश-विदेश सर्वत्र प्रेमचंद की जन्म शताब्दी मनाई गई थी। मैंने उसी वर्ष 'महोबा में मुंशी प्रेमचंद' पर एक पत्र लखनऊ के 'स्वतंत्र भारत' अख़बार को लिखा जो 16 जुलाई 1980 को प्रकाशित हुआ। इस पत्र में मैंने शोधकर्ताओं तथा शताब्दी समारोह के आयोजकों से निवेदन किया कि महोबा जैसी वीर, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक नगरी में प्रेमचंद की पुण्य-स्मृति में वहां एक स्मारक बनवाया जाए। मैंने एक दूसरा पत्र तत्कालीन सूचना निदेशक ठाकुर प्रसाद सिंह को भी लिखा। जवाब में उनका पत्र क्रमांक 319/ अ.एम./सू.ए.ज.स.वि./80 दिनांक 23/07/80 प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनकी कैमरा टीम शीघ्र ही महोबा जाएगी और मेरे बताए गए स्थानों का फिल्मांकन करेगी तथा प्रेमचंद के विषय में जानकारी एकत्र करने हेतु लोगों से संपर्क भी करेगी परंतु बाद में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। सूचना विभाग ने प्रेमचंद पर वृत्तचित्र तैयार कर लिया 31.08.81 को फिल्म रवींद्रालय (लखनऊ) में दिखाई गई। इस फिल्म में महोबा नगर का कहीं कोई उल्लेख नहीं था। फिल्म की आलोचना करते हुए मैंने एक पत्र पुनः 'स्वतंत्र भारत' को लिखा जो 2 सितंबर 1981 को प्रकाशित हुआ। इस पत्र में मैंने स्पष्ट लिखा कि प्रेमचंद के बुंदेलखंड प्रवास के संदर्भ इस फिल्म में दिखाए जाते तो शायद यह फिल्म और अधिक उपयोगी और प्रेरणादायी सिद्ध होती। 1914 में प्रेमचंद महोबा में बहुत अस्वस्थ हो गए। उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन ख़राब होता गया। उन्होंने स्थानांतरण हेतु शिक्षा विभाग को पत्र लिखा। उनका स्थानांतरण बस्ती में डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल के पद पर हो गया और जुलाई, 1914 में उन्होंने वहां कार्यभार भी ग्रहण कर लिया। इस तरह क़लम का सिपाही तलवार की धरती से अलग हो गया।

महोबा प्रवास ने प्रेमचंद की लेखनी में तलवार की रवानी भरी थी। सेवासदन, गोदान, ग़बन आदि जितने भी उपन्यास प्रेमचंद ने लिखे हैं उनकी पृष्ठभूमि में अधिकांशतः महोबा अंचल की समस्याएं ही मुखरित हुई हैं। वह आल्हा-ऊदल की भांति साहसी और हिम्मती थी तथा उन्हीं की तलवार की भांति अपनी लेखनी का वार सामंतशाही व्यवस्था पर करना चाहते थे। आज सड़कों और यातायात की सुविधाओं के विकास से बनारस का लमही गांव और बुंदेलखंड का महोबा बहुत दूर नहीं लगता लेकिन उन दिनों जब बेतवा और यमुना नदियां पार कर महोबा जाना होता था, कितने संघर्ष के दिन थे वे कल्पना नहीं की जा सकती। जीवन संघर्षों से जूझते और लेखनी को मज़बूती' से अंततोगत्वा वह अपने गांव लमही चले आए। अपनी कथाकृतियों को स्वयं छापने के लिए उन्होंने बनारस में छापाखाना (प्रेस) लगाया। रात-दिन उसी छापाखाना में काम करते उनका स्वास्थ बहुत बिगड़ गया और वहीं 8 अक्टूबर 1936 में उनका निधन हो गया। महोबा में अब उन्हें कोई स्मरण करने वाला नहीं। न उनकी वहां कोई स्मृति है न स्मारक। सब कुछ अतीत में विलीन हो गया है। बस कुछ स्मृतियां हैं, घटनाएं हैं, तथ्य हैं जो पुस्तकों के पन्नों में यत्र-तत्र दबी पड़ी हुई हैं जो यदाकदा चर्चा का विषय बनकर रह जाती हैं। ❑

संपर्क : एम-2/85, जवाहर विहार कालोनी, रायबरेली-229010 (उ.प्र.)

प्रेमचंद की दुर्लभ, असंदर्भित रचना

भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि रचनाकार प्रेमचंद ने अपने लेखकीय जीवन में कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, पुस्तक समीक्षा आदि विभिन्न विधाओं में साहित्य सृजन किया परंतु उनकी विशेष ख्याति 'कथा सम्राट' के रूप में ही हुई। साहित्य की विभिन्न विधाओं में से 'जीवनी' ही एकमात्र ऐसी विधा है जिसमें प्रेमचंद की रचनाएं संप्रति मात्र उर्दू में ही प्राप्त होती हैं।

प्रेमचंद ने जितनी भी जीवनियां लिखीं वे सब उर्दू मासिक 'ज़माना' में ही प्रकाशित हुईं और प्रेमचंद के जीवन काल में ही उनका एक संकलन उर्दू में ही 'बाकमालों के दर्शन' शीर्षक से प्रकाशित भी हुआ। इस संकलन के संबंध में एक विचित्र एवं आश्चर्यजनक तथ्य यह भी है कि इसके द्वितीय संस्करण में तीन विभिन्न लेखकों द्वारा लिखी गईं एवं 'ज़माना' में पूर्व प्रकाशित जीवनियां भी प्रेमचंद ने अपने नाम से सम्मिलित कर ली थीं और यहीं तक नहीं, जब प्रेमचंद के देहावसान के उपरांत अमृतराय ने 'बाकमालों के दर्शन' का हिंदी अनुवाद करके 'क़लम, तलवार और त्याग' शीर्षक से दो भागों में प्रकाशित कराया तो ये तीनों जीवनियां भी इसमें सम्मिलित हो गईं। इन तीनों जीवनियों के संबंध में पहली बार प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने ही सप्रमाण सिद्ध किया था कि ये प्रेमचंद की रचनाएं नहीं हैं और इस संबंध में अंग्रेज़ी 'दैनिक हिंदुस्तान टाइम्स' के 31 जुलाई 2006 के अंक में विस्तृत समाचार भी प्रकाशित हुआ था। इनका संदर्भ विवरण निम्नांकित है–

1. अब्दुल हलीम शरर–मूल लेखक ख़्वाजा अब्दुल रऊफ़ इशरत लखनवी, मूल शीर्षक–मौलाना शरर मरहूम, प्रथम प्रकाशन, 'ज़माना', फरवरी 1927

2. अकबरे आज़म–मूल लेखक मौलवी मो. अज़ीज़ मिर्ज़ा, प्रथम प्रकाशन, 'ज़माना', अक्तूबर 1905

3. वहीदुद्दीन सलीम–मूल लेखक सैयद अब्दुल वदूद दर्द बरेलवी, मूल शीर्षक–मौलाना सलीम पानीपती मरहूम, प्रथम प्रकाशन–'ज़माना', अगस्त 1928

प्रेमचंद की मूल रूप से हिंदी में लिखी और प्रकाशित जीवनी 'शकुंतला' लहेरिया सराय से रामलोचन शरण बिहारी के संपादन में प्रकाशित होने वाले हिंदी मासिक 'बालक' के जेठ 1986 वि.सं. (तदनुसार, जून 1929) के अंक में प्रकाशित हुई थी जो अब तक प्रेमचंद साहित्य के अध्येताओं, शोधकर्ताओं और विशेषज्ञों की दृष्टि से ओझल रही। इस जीवनी के पुनः प्रकाशित होने से प्रेमचंद के हिंदी साहित्य में एक विधा की अभिवृद्धि होने के साथ ही प्रेमचंद की एक अतिशय दुर्लभ और असंदर्भित रचना भी प्रकाश में आ रही है जो प्रेमचंद साहित्य के प्रेमियों और अध्येताओं को अवश्य ही सुख प्रदान करेगी... **प्रदीप जैन**

शकुंतला

(लेखक–श्रीयुत प्रेमचंद जी)

[बच्चो, तुम महाभारत की कथा सुन चुके हो। उसमें कौरवों और पांडवों के युद्ध का वृत्तांत बड़े विस्तार से लिखा गया है। प्रसंग-वश वृत्तांत के अलावा इसमें और भी कितनी मनोहर कथाओं का समावेश है, जिन्हें पढ़ने से उस समय का बहुत-कुछ हाल हमें मालूम होता है। इन्हीं कथाओं में 'शकुंतला' की भी कथा है। कवि-कुल-श्रेष्ठ कालिदास ने उसी कथा के आधार पर एक अत्यंत सुंदर नाटक लिखा है, जो संस्कृत-साहित्य का अमूल्य रत्न है। संस्कृत ही क्यों, संसार के किसी भी साहित्य में उसके जोड़ के नाटक शायद ही मिलेंगे। संसार के बड़े-बड़े कवि उसे पढ़कर मुग्ध हो जाते हैं। प्रायः सभी भाषाओं में उसका अनुवाद हो गया है। आज हम तुम्हें वही कथा सुनाते हैं–]

प्राचीन काल में अरण्य नाम के एक ऋषि थे। अन्य ऋषियों की भांति उनकी कुटी भी एक तपोवन में थी। वह कंद-मूल खाते थे, झरनों का पानी पीते थे और एकांत में तपस्या करते थे। एक दिन वह जलाशय की ओर स्नान करने जा रहे थे कि किसी नवजात शिशु के रोने की आवाज़ उनके कानों में आई। आश्चर्य हुआ कि इस तपोवन में बालक कहां से आ गया। आस-पास कोई घर न था। लगे इधर-उधर देखने। सहसा एक झाड़ी में एक बालिका नज़र आई। कण्व मुनि उसकी मोहिनी छवि देखकर मोहित हो गए। तुरंत गोद में उठा लिया और घर लाकर उसका पालन-पोषण करने लगे। उनकी कुटी में गौतमी नाम की एक तपस्विनी रहती थी। उसका मातृ-हृदय उस शिशु को पाकर गद्‌गद् हो उठा। कण्व और गौतमी दोनों ही उसे अपनी ही कन्या समझते थे। बालिका भी गौतमी को अपनी माता और कण्व को पिता समझती थी। संस्कृत में शकुनि पक्षी को कहते हैं। उस झाड़ी में पक्षियों ने ही बालिका की रक्षा की थी, इसीलिए उसका नाम शकुंतला रखा गया।

शकुंतला प्रकृति की गोद में पलने लगी। तपोवन में दो ऋषि कन्याएं और भी थीं। अनसूया और प्रियंवदा। तीनों सहेलियां एक साथ खेला करतीं। वहां पहाड़ियां थीं, झरने थे, हिरनों के झुंड थे, मोर थे। तीनों सहेलियां पहाड़ियों पर दौड़तीं, झरनों में जल-केलि करतीं, हिरनों से खेलतीं और मोरों का नृत्य देखती थीं। हंसने-खेलने में दिन गुज़रते जाते थे। यहां तक कि शकुंतला अबोध बालिका से परम सुंदरी युवती हो गई।

एक दिन महाराज दुष्यंत आखेट खेलते-खेलते तपोवन में आ निकले। तीनों सहेलियां उस समय झरनों से जल लाकर पौधों को सींच रही थीं। दुष्यंत ने शकुंतला को देख लिया। मन में निश्चय किया, इस रमणी से अवश्य विवाह करूंगा। शकुंतला को भी राजा से विवाह करने की इच्छा हो गई। दोनों ने गांधर्व विवाह कर लिया लेकिन दो ही चार दिनों में राजा को कार्यवश राजधानी को लौटना पड़ा। चलते समय उन्होंने शकुंतला को निशानी के तौर पर अपनी अंगूठी दी और बोले, "प्रिये, तुम ज़रा भी मत घबराना, मैं यहां से जाते ही तुम्हारे लिए सवारी भेजूंगा और मेरे आदमी तुम्हें उसी आदर-सम्मान से ले जाएंगे जैसे दुष्यंत की रानी को ले जाना चाहिए। शकुंतला रोने लगी,

पर यह समझकर कि दो-चार दिनों में तो राजा से भेंट हो ही जाएगी, उसने धैर्य धारण किया। राजा भी अपने आंसुओं को रोक न सके।

राजा के विदा हो जाने पर शकुंतला को एक-एक पल एक-एक युग हो गया। अकेली मन मारे उदास बैठी रहती। कभी विकल होकर रोने लगती। इस शोक में अगर कुछ ढाढस मिलता था तो इसी अंगूठी से। सहेलियां समझातीं, पर उसे चैन न आता। राजा के दर्शन कब होंगे, बस, उसे वही धुन लगी रहती थी।



एक दिन शकुंतला इसी शोकावस्था में बैठी थी कि दुर्वासा ऋषि आ पहुंचे। उन महात्मा को अपने तपोवन का इतना अभिमान था कि ज़रा-ज़रा-सी बात पर शाप दे देते थे। देवता तक उनके शापों से डरते थे। सौभाग्यवश शकुंतला की नज़र उन पर पड़ी। उन्होंने एक बार उसे पुकारा भी, पर वह अपनी चिंताओं में इतनी तन्मय हो रही थी कि उसे दुर्वासा के शब्द भी न सुनाई दिए। वह ज्यों की त्यों मूर्ति की भांति बैठी रह गई। फिर उनका यथोचित आदर-सत्कार कौन करता भला, दुर्वासा ऋषि इस घोर अपराध को कैसे क्षमा कर देते! क्षमा तो उन्होंने सीखी ही न थी। उन्हें भ्रम हुआ कि शकुंतला ने जान-बूझकर मेरा अपमान किया है, यह मेरे लिए असह्य है। मैं उसे शाप देता हूं कि जिस मनुष्य की चिंता में तू बैठी हुई है वह आज से तुझे भूल जाएगा।''

यह प्रचंड शाप भी शकुंतला के कानों तक न पहुंचा, लेकिन उसकी दोनों सहेलियों ने इसे सुना और भय से कांप उठीं। दोनों दौड़कर ऋषि दुर्वासा के चरणों में गिर पड़ीं और बड़ी नम्रता से बोलीं, ''भगवन इस वियोगिनी को क्षमा कीजिए। जब से राजा दुष्यंत विदा हुए हैं, उसकी यही दशा है। न कुछ खाती है, न बोलती-चलती है। इस कठोर शाप से तो इसके जीवन का अंत ही हो जाएगा। उसका अपराध क्षमा कीजिए।''

जब दोनों युवतियों ने बहुत अनुनय-विनय की तब मुनि जी का क्रोध कुछ शांत हुआ। बोले—'शाप का फल तो अवश्य होगा ही। हां, जब शकुंतला राजा को उनकी दी हुई अंगूठी दिखा देगी तब उनकी विस्मति भंग हो जाएगी। इसी भांति शाप का विमोचन होगा।''

दुर्वासा के चले जाने पर दोनों युवतियां शकुंतला के पास आकर फिर उसे सांत्वना देने लगीं। दुर्वासा के अभिशाप और क्षमा का समाचार उससे न कहा, क्योंकि इससे उसको और भी दुख होता।

दिन बीतने लगे। राजा दुष्यंत के यहां से न कोई पत्र आया, न कोई संदेश। शाप के फल से उनको शकुंतला की याद ही न रही। वह दुखिया रो-रो कर घुली जाती थी, उधर दुष्यंत राज्य के सुख भोग रहे थे।

कुछ दिनों के बाद कण्व मुनि तीर्थयात्रा करके लौटे। उन्हें जब ज्ञात हुआ कि शकुंतला का विवाह राजा दुष्यंत से हो गया है तब वह बहुत प्रसन्न हुए और बोले—''दुष्यंत बड़े प्रतापी राजा हैं। शकुंतला का पुत्र भी प्रतापी राजा होगा और भारत पर राज्य करेगा।''

लेकिन जब कई महीने बीत गए राजा दुष्यंत के पास से कोई आदमी न आया तब कण्व मुनि ने शकुंतला को स्वयं राजा के पास भेजने का निश्चय किया। उन्हें दुर्वासा के शाप का हाल मालूम न था। समझा, राजकाज में व्यस्त रहने के कारण दुष्यंत को इतना अवकाश न मिला होगा कि शकुंतला को बुलाने की तैयारी करते, किंतु पति के घर बिना बुलाए जाने में भी कोई लज्जा नहीं है।

शकुंतला की विदाई की तैयारियां होने लगीं। कण्व मुनि के दो शिष्य और गौतमी उसके साथ चले। तपोवन के पशु-पक्षियों से विदा होते समय शकुंतला का हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। जिन हिरणों के बच्चों को उसने गोद में खिलाया था, जिन पौधों को उसने अपने हाथों से सींचा था, जिन वेलों को उसने अपने हाथ से चढ़ाया था, उन पर वह बार-बार ममता-पूर्ण दृष्टि डालती थी। दोनों सहेलियों के गले लगकर वह इतना रोई कि उसे मूर्छा आ गई। फिर वह कण्व मुनि के पैरों से लिपट गई और उन्हें अश्रु जल से धो दिया, मुनि ने उसे आशीर्वाद देकर विदा किया।

राजधानी वहां से कई दिनों की राह थी। शकुंतला को पैदल चलने का अभ्यास न था, इसलिए उन लोगों को छोटी-छोटी मंज़िलें करनी पड़ती थी। एक दिन मार्ग में एक नदी मिली। उसमें स्नान करते समय राजा की अंगूठी उसकी उंगली से फिसलकर पानी में गिर पड़ी। शकुंतला को उसके गिरने की उस समय ख़बर न हुई। स्नान करके चारों आदमी फिर चल पड़े और कई दिनों के बाद राजधानी में जा पहुंचे। राजा दुष्यंत पर तो दुर्वासा मुनि का शाप था। जब द्वारपाल ने शकुंतला के आने की सूचना दी, वह चकित होकर बोले—''शकुंतला! कौन शकुंतला? मैं तो उसे नहीं जानता।''

द्वारपाल ने विनय की—''महाराज, उसके साथ दो ऋषि कुमार हैं। वे कहते हैं कि शकुंतला से महाराज का विवाह हुआ है।''

दुष्यंत बाहर निकल आए, किंतु शकुंतला को देखने पर भी वह उसे न पहचान सके।

शकुंतला समझती थी कि राजा केवल निष्ठुरता के कारण यह लीला कर रहे हैं। उसने उन्हें तपोवन की याद दिलाई। अनसूया और प्रियंवदा की चर्चा की, जल-तट का वर्णन किया, जहां बैठे हुए वे जल-पक्षियों की क्रीड़ा देखते थे, मृग-शावकों का स्मरण कराया, जिन्हें गोद में लेकर वे खेलते थे, पर राजा की स्मृति जागृति न हुई। अंत में शकुंतला को क्रोध आ गया। बोली—''यह मैं कभी नहीं मान सकती कि आप मुझे पहचान नहीं रहे हैं। दस-पांच वर्ष की बात नहीं अभी कुछ महीनों की बात है। क्या राज-सिंहासन पर बैठने से स्मृति भी नष्ट हो जाती है? मैं जानती थी कि आप केवल क्षणिक मनोरंजन के लिए मुझसे प्रेम कर रहे हैं। मुझे न मालूम कि आप जैसा सत्यवादी, वीर पुरुष इतना निर्दय, इतना अभिमानी और इतना स्वार्थी होगा। अगर आपको कुछ नहीं याद है तो इस अंगूठी को तो आप मिथ्या नहीं कह सकते जो उसने चलते समय मुझे चिन्ह-स्वरूप दी थी। देखिए! यह किसकी अंगूठी है?''

राजा ने तत्परता के साथ कहा—''हां, यह अंगूठी मुझे दिखा दो!''

शकुंतला ने उंगली से अंगूठी निकालनी चाही, पर अंगूठी का कहीं पता न था। उसने पहन कर उंगली को देखा। अंगूठी वहां नहीं थी।। नैराश्य, लज्जा और दुख से उसका सिर झुक गया और उसकी आंखों से आंसू की बूंदें झरने लगीं। कुछ समझ में न आया कि अंगूठी कहां गई।

राजा ने कहा—''कहां है अंगूठी, देखूं?''

शकुंतला ने लज्जित होकर कहा—''अंगूठी न जाने कहां गिर गई। विधाता ही मेरा है, उसके सिवा और क्या कहूं। मैं आपको दोष नहीं देती, यह सब मेरे पूर्व कर्मों का फल है तो क्या मेरी उंगली से अंगूठी निकल जाती। इतना अपमान, इतनी अधोगति हो जाने पर भी मैं जीवित हूं, इसका आश्चर्य है! क्यों मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हो जाता, क्यों मुझे भूमि निगल नहीं जाती?''

यह कहती हुई शकुंतला अपने साथियों के साथ राज-भवन से निकली।

सहसा प्रांगण एक उज्ज्वल प्रकाश से आलोकित हो गया। लोगों की आंखें भर गईं। जब फिर आंखें खुलीं। शकुंतला एक अप्सरा की गोद में

बैठी हुई आकाश की ओर उड़ी जा रही थी। सारी राजसभा चकित हो गई।

राजा दुष्यंत ने उपहास के भाव से कहा—"मैं तो उसको देखते ही समझ गया था कि महाराज इंद्र की कोई माया है। मेरी सत्यवादिता को भ्रष्ट करने के लिए वह कुचक्र रचा गया था। ईश्वर ने मेरी रक्षा की, नहीं तो कहीं का न रहता।"

कई दिन के उपरांत एक दिन शहर के कोतवाल ने आकर राजा को दंडवत् की और एक बहुमूल्य अंगूठी उनके सामने रख दी। अंगूठी पर राजा दुष्यंत का नाम खुदा हुआ था।

अंगूठी पर नज़र पड़ते ही राजा की आंखों के सामने से परदा-सा हट गया। तुरंत शकुंतला की याद आ गई। तपोवन का सारा दृश्य, सारी प्रेम-लीला आंखों में फिर गई। समझा, कदाचित शकुंतला ने यह अंगूठी भेजी है। उत्सुक होकर पूछा—"क्या देवी शकुंतला ने तुम्हें यह अंगूठी दी है?"

कोतवाल ने कहा—"नहीं महाराज, आज बाज़ार में एक मछुआ यह अंगूठी बेच रहा था। सर्राफों ने महाराज का नाम देख उसे पकड़कर मेरे पास भेज दिया। अंगूठी तो महाराज की ही है, पर मछुआ कहता है, उसे यह एक मछली की पेट में मिली। उसे, जो आज्ञा हो, वह दंड दिया जाए।"

राजा ने लंबी सांस खींचकर कहा—"उसे छोड़ दो, वह निरपराध है" और ग्लानि तथा दुख से विकल होकर वह अपने को धिक्कारने लगे—"हाय! मैंने उस देवी का अपमान करके निकाल दिया। आई हुई लक्ष्मी को द्वार से दुत्कार दिया। क्यों मेरी स्मृति इतनी मंद, इतनी शिथिल हो गई थी। अवश्य मुझपर किसी देवता का शाप था, नहीं तो क्या मुझे अपनी प्राणेश्वरी शकुंतला की याद भी न आती!"

राजा दुष्यंत की मनोवेदना का पारावार न था। हंसना-बोलना तो दूर रहा, राज-सभा में भी बहुत कम आते। नित्य शकुंतला की याद में तड़पा करते। उसे खोजने के लिए चारों दिशाओं में दूत भेजे, पर कहीं पता न चल पाया। सारे दूत, अपना-सा मुंह लेकर लौट आए। यहां तक कि कई साल गुज़र गए।

एक दिन राजा दुष्यंत शोक में मग्न बैठे हुए थे कि इंद्र ने उन्हें बुलावा भेजा। राजा ने वस्त्र पहने और इंद्रलोक को चल पड़े। वहां इंद्र के भवन के समीप उन्होंने एक छोटे से बालक को सिंह के बच्चे के साथ खेलते देखा। वह बच्चे को गोद में लिए खेल रहा था कि इतने में सिंहनी आ गई और बालक पर झपटी। उस वीर बालक ने छड़ियों से मार-मार कर सिंहनी को भगा दिया। राजा दुष्यंत उस बालक का साहस और पराक्रम देखकर दंग रह गए। मन में आया कहीं यह मेरा पुत्र होता तो क्या बात थी! सवारी रोककर बालक से पूछा—"क्यों बेटा तुम्हारा नाम क्या है और तुम किसके बेटे हो?" बालक ने निःशंक भाव से उत्तर दिया—"मेरा नाम भरत है। मैं महाराजा दुष्यंत का पुत्र हूं।"

राजा को ऐसा आनंद हुआ, मानो अंधे को आंखें मिल गई हों। हर्ष के आवेग में दौड़कर बालक को गोद में उठा लिया और पूछा—"तुम्हारी माता कहां है, बेटा?"

बालक ने कहा—"माता जी घर पर हैं।"

राजा बालक के साथ उसके घर गए और शकुंतला को देखते ही दौड़कर उसे हृदय से लगा लिया। शकुंतला उनके चरणों पर गिर पड़ी। आज इतने दिनों के बाद उनके दुखों का अंत हुआ। इंद्र ने अपने विमान पर बिठाकर उन लोगों को विदा किया।

राजा दुष्यंत ने बहुत दिनों तक सुखपूर्वक राज्य किया। उनके बाद भरत राजगद्दी पर बैठा। वह इतना प्रतापी हुआ कि उसी के नाम पर यह देश आजतक 'भारत' वर्ष कहलाता है। ❑

संपर्क : 46-बी, नई मंडी, मुज़फ़्फ़रनगर-251001 (उ.प्र.)

हमारे नए प्रकाशन



मूसाराम की मूंछें
ले. सरोजनी प्रीतम, (पेपर बैक),
पृ. 60, मूल्य : 85 रुपये
ISBN : 978-81-230-1949-9



उत्तर भारत की लोककथाएं
ले. शीला पांडे, (पेपर बैक),
पृ. 62, मूल्य : 75 रुपये
ISBN : 978-81-230-1876-8



चीं चीं और चूं चूं (बाल भारती कथा संकलन)
सं. प्रकाश मनु, (पेपर बैक),
पृ. 160, मूल्य : 190 रुपये
ISBN : 978-81-230-1926-0

पुनर्मुद्रण



लौह पुरुष : सरदार पटेल
ले. मुकुट बिहारी वर्मा, (पेपर बैक),
पृ. 47, मूल्य : 90 रुपये
ISBN : 978-81-230-1699-3



भारत की एकता का निर्माण : सरदार पटेल के भाषण
प्रकाशन विभाग, (हार्डबाउंड),
पृ. 231, मूल्य : 330 रुपये
ISBN : 978-81-230-1975-8



आधुनिक भारत के निर्माता : पं. दीनदयाल उपाध्याय
ले. महेश चन्द्र शर्मा, पृ. 156, मूल्य : 130 रुपये (पेपर बैक)
ISBN : 978-81-230-1970-3



आधुनिक भारत के निर्माता : सरदार वल्लभभाई पटेल
ले. आई. जे. पटेल
मूल्य : 130 रुपये (पेपर बैक),
ISBN : 978-81-230-1974-1



गीत रामायण
ले. ग. दि. माडगूलकर, (पेपर बैक),
पृ. 162, मूल्य : 100 रुपये
ISBN : 978-81-230-1941-3

प्रेमचंद : विदेशी गवेषकों की दृष्टि में

अखिलेश कुमार

मुंशी प्रेमचंद ने उस समय लिखना प्रारंभ किया था जब समाज में बदलाव की धारा प्रारंभ हो चुकी थी। देशभर में राष्ट्रीय जनजागरण एवं राजनीतिक चेतना धीरे-धीरे विकसित हो रही थी। अंग्रेज़ी दासता से मुक्ति, समाज में व्याप्त पाखंड, अंधविश्वास, कुरीतियों एवं गंदी प्रथाओं को दूर करने के लिए अनेक आंदोलन चलाए जा रहे थे। इन आंदोलनों में आर्य समाज का प्रभाव समाज पर सबसे अधिक पड़ रहा था। स्वदेशी, स्व-संस्कृति, स्व-भाषा, स्वाभिमान, स्व-धर्म एवं स्वतंत्रता के बीज-मंत्रों से समाज में नवचेतना जागृत हो रही थी। महर्षि दयानंद ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में मुखर स्वर में ऐलान किया—"कोई कितना ही कहे, परंतु स्वदेशी राज्य सबसे ऊपर है।" भारत का शिक्षित वर्ग इन आंदोलनों से प्रेरित हो अपने अतीत की ओर उन्मुख हो रहा था वहीं पर जनता में अपने गौरवमय अतीत के प्रति गौरव, अपनी महान संस्कृति, भाषा एवं सभ्यता के प्रति लगाव बढ़ने लगा था। मुंशी प्रेमचंद पर इन आंदोलनों का अतिशय प्रभाव पड़ा। वे इन आंदोलनों से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अनेक रूपों में संस्कार ग्रहण कर रहे थे, जो उनके विशाल रचना-साहित्य में स्पष्ट, मुखर और विविध रूपों में देखने को मिलता है।

प्रेमचंद अपनी कहानियों और उपन्यासों की विलक्षणता और प्रेरकता, समाजधर्मिता और जीवंतता की अतुलित गहराइयों के कारण प्राच्य ही नहीं प्रातीच्य विद्वानों, समालोचकों के आकर्षण के केंद्र बनते जा रहे थे। उसके बाद हिंदी इतिहास में प्रेमचंद कालजयी रचनाकार के रूप में स्वीकार हो गए। तुलसीदास के बाद भारतीय जनमानस में हिंदी का यदि कोई साहित्यकार सबसे अधिक पढ़ा, सुना और समझा जाता है तो वह नाम मुंशी प्रेमचंद का है। विदेशी धरती पर रूस ऐसा देश है जहां प्रेमचंद सबसे अधिक लोकप्रिय हुए। डॉ. पी.वी. ग्लाद्कोव रूस के ऐसे पहले हिंदीप्रेमी विद्वान् थे जिन्होंने इंदीस्काया दिरेव्या व त्वोरचेस्त्वे प्रेमचंदा (प्रेमचंद के कृतित्व में भारतीय गांव) विषय पर शोध किया और पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त की।

प्रेमचंद की कृतियों और उनके समग्र व्यक्तित्व पर रूस में सबसे अधिक कार्य हुआ है। रूस में उनकी कृतियों की लोकप्रियता को उद्घाटित करते हुए प्रमुख हिंदी विद्वान ई.पी. चेलीशेव ने लगभग तीन दशक पूर्व लिखा था—"टैगोर के बाद प्रेमचंद निश्चिय ही सोवियत संघ में सर्वाधिक लोकप्रिय और विस्तृत रूप में विख्यात लेखक हैं। इसके प्रमाण के लिए केवल उस बड़े कार्य का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा जो उनकी रचनाओं का अनुवाद और प्रकाशन तथा उनके कृतित्व के संबंध में हमारे देश में किया जा रहा है। अलग-अलग पुस्तकों के रूप में हमारे देश में प्रेमचंद की रचनाएं तीस से अधिक बार छप चुकी हैं और उनकी प्रतिसंख्या 15 लाख से अधिक है।"

विदेशी विद्वानों और हिंदी प्रेमियों में चेलीशेव का योगदान अप्रतिम है। उन्होंने हिंदी के अनेक विश्व प्रसिद्ध रचनाकारों की रचनाओं को रूसी भाषा में अनुवाद ही नहीं किया अपितु समीक्षात्मक अध्ययन भी किया। प्रेमचंद और उनके साहित्य के प्रति उनकी अभिरुचि इस क़दर थी कि अपनी भारत यात्रा के दौरान वह प्रेमचंद की जन्मस्थली लमही जाना न भूले। उन्होंने 1958 में प्रकाशित पुस्तक 'नीजावीसीमया इन्दिया' (स्वतंत्र भारत) तथा 1981 में छपी एक अन्य किताब 'सेव्रेमेन्नाया इंदीस्काया लितरातूरा' (आधुनिक भारतीय साहित्य) में प्रेमचंद के साहित्यिक अवदान की भरपूर चर्चा की है। इसी प्रकार 1964 में प्रेमचंद के सौंदर्यबोध पर, 1968 में 'गोर्की और भारतीय साहित्य' में प्रेमचंद पर गोर्की के नज़रिए का असर और 1968 में ही प्रकाशित पुस्तक 'हिंदी साहित्य' में उन्होंने प्रेमचंद को इसे समर्पित किया। इसके अतिरिक्त 1972 में एक अन्य लेख में उन्होंने भारतीय बहुजातीय साहित्य में आलोचनात्मक यथार्थवाद की स्थापना के संबंध में प्रेमचंद की भूमिका को बहुत ही विवेचनात्मक ढंग से उद्घाटित किया है।

रूसी विद्वान हों, जापानी हों, हंगेरियन हों, चेकवासी हों या चीनी हर देश के विद्वानों में प्रेमचंद पूरे मनोवेग से स्मरण किए जाते हैं। ए.ई. आजर्ख कृत संदर्भ ग्रंथ 'प्रेमचंद-बियो-बिब्लियोग्राफी चिस्की ऊक्राजातेल' शोधार्थियों एवं ज्ञान-विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए अत्यंत उपयोगी ग्रंथ है। 1962 में प्रकाशित यह ग्रंथ चार भागों, प्रेमचंद की समस्त कृतियों की सूची : प्रेमचंद साहित्य के संबंध में हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी व रूसी भाषा में किए गए कार्यों की सूची : प्रेमचंद की कृतियों के रूसी तथा अन्य भाषाओं में अनुवादों की सूची तथा प्रेमचंद की हिंदी और उर्दू रचनाओं की सूची में विभक्त यह ग्रंथ शोधार्थियों के साथ ही समस्त जिज्ञासुओं एवं अध्येताओं के लिए भी विशेष उपयोगी है। इसके अतिरिक्त अनेक भारतीय विद्वानों द्वारा मुंशीजी पर लिखे गए ग्रंथों का विश्व की अनेक भाषाओं में किए गए अनुवादों का बहुत महत्व है। प्रेमचंद के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य जानने के योग्य है। वह यह कि उन्होंने (प्रेमचंद ने) तत्कालीन उपलब्ध रूसी लेखकों की पुस्तकों को बहुत ही मनोवेग से पढ़ा था और कालांतर में रूसवासियों ने प्रेमचंद को उत्साहपूर्वक पढ़ा। 'गोदान' के रूसी अनुवाद की भूमिका में ई. कोन्यान्त्सेव ने लिखा है "पश्चिमी लेखकों की रचनाओं के साथ-साथ प्रेमचंद ने रूसी लेखकों की वे सभी पुस्तकें पढ़ीं थीं जो उस समय भारत में मिल सकती थीं।" प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों पर समग्र-दृष्टि से विचार करने वालों में प्रमुख विदेशी भाषाविद् वसीली मलकेयेविच वेस्कोव्नी हैं। इन्होंने प्रेमचंद की कहानियों के अतिरिक्त उनके नाटकों पर भी समीक्षात्मक-दृष्टि डाली है। प्रेमचंद के 'संग्राम' नाटक को आधार बनाकर उन्होंने एक ऐसा शोधात्मक लेख लिखा, जो तत्कालीन रूसी पत्रिका 'ईजवेस्तिया' के मई-जून 1947 वाले अंग में प्रकाशित हुआ। इस लेख से जहां प्रेमचंद के साहित्यिक अवदान के संबंध में रूसी जगत को पता चला वहीं पर भारतीय सामाजिक स्थिति और भारत की स्थिति के बारे में भी रूस के लोगों को पता चला। इस क्रम में इन्होंने प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' का भी विश्लेषणात्मक ढंग से विस्तृत समीक्षा की।

यूक्रेनी भाषा के महान रचनाकार ए.पी. वारान्निकोव ने प्रेमचंद की रचनाओं को सर्वग्राही बताते हुए लिखा है—"प्रेमचंद की रचनाओं में वास्तविक भारत के दर्शन होते हैं।" उन्होंने उनकी भाषा-शैली पर विश्लेषण करते हुए लिखा—"प्रेमचंद न केवल श्रेष्ठ और नवीन जीवन-शैली के धनी हैं, जिसे उन्होंने सबसे पहले अपनाया है, बल्कि भारतीय साहित्य के लिए एक नई विधा-सामाजिक कहानी-विधा में, जिसमें सामाजिक तत्त्वों को बड़ी मनोवैज्ञानिक गहनता से उभारा गया है, कलात्मक पारंगतता प्राप्त की है।" वारान्निकोव के प्रेमचंद और हिंदी साहित्य के योगदान पर चर्चा करते हुए महान समालोचक रामविलास शर्मा ने कहा है—"वारान्निकोव को इस बात का श्रेय है कि जिस समय भारतीय कथा-साहित्य के नाम पर यूरोप के लोग

मुल्कराज आनंद का नाम ही जानते थे, उन्होंने प्रेमचंद की रचनाओं का अनुवाद किया और मुक्त कंठ से उनका महत्व स्वीकार किया।''

रूसी भाषा में प्रेमचंद के लोकप्रिय होने के एक नहीं अनेक कारण हैं। इनमें सबसे बड़ा कारण प्रेमचंद द्वारा सर्वहारा वर्ग को अपनी रचनाओं में अद्भुत ढंग से स्थान देना, भारतीय बहुजातीय समाज का उद्घाटन और सपाटबयानी प्रमुख है। आज भी प्रेमचंद रूस में रूसी समाज के लिए उतने ही चहेते हैं जितने कई दशक पहले थे। दूसरी बात, भारत और रूस का सांस्कृतिक संबंध बहुत पुराना है। इसके कारण भी हिंदी-साहित्य का रूसी भाषा में रूपांतरण सहित अनेक महत्व के कार्य हुए हैं। इसलिए रूसी भाषा में प्रेमचंद को टैगोर और संत तुलसीदास के बाद अधिक पढ़ा जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

रूस के अतिरिक्त चीन में भी प्रेमचंद की कहानियों का चीनी भाषा में 1956 ई. में अनुवाद का काम शुरू किया गया। इन चीनी अनुवादकों में प्रमुख हैं—वेड. चेन, फू. सुन, चिड. चओ, थ्यान तिड., प्रो. ल्यू. ऑन ऊ तथा नी पेनकिन। प्रो. ल्यू ऑन ऊ ने सर्वाधिक अस्सी कहानियों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। चीनी अनुवादकों ने प्रेमचंद की 200 कहानियों का अनुवाद किया। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि रूस की तरह ही चीनी-हिंदी प्रेमियों ने भी प्रेमचंद को महत्वपूर्ण लेखक मानते हुए उनकी अनेक कृतियों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। चीन में प्रेमचंद की लोकप्रियता के संबंध में प्रो. ल्यकोनान ने लिखा है—''मुक्ति के पहले तो हिंदी साहित्य का लोग नाम भी नहीं जानते थे पर अब तक प्रेमचंद के 'गोदान', 'रंगभूमि', 'निर्मला', 'ग़बन', 'कर्मभूमि' आदि का अनुवाद हो चुका है, जो छपते ही हाथोंहाथ बिक गए। अब उनकी प्रतियां बाज़ार में उपलब्ध नहीं हैं। 'गोदान' की लाख से अधिक प्रतियां बिकी हैं। प्रेमचंद की प्रायः अधिकांश कहानियों के अनुवाद हो चुके हैं। रूसी और चीनी के अतिरिक्त ए.पी. वारान्निकोव ने प्रेमचंद की पहली कहानी 'सौत' जो 'सरस्वती' पत्रिका में 1915 में प्रकाशित हुई थी, का अपनी मातृभाषा यूक्रेनी में 1926 में अनुवाद किया था। चेक भाषा में भी प्रेमचंद की अनेक कहानियों और उपन्यासों का अनुवाद अनेक हिंदी सेवियों ने समय-समय पर किए। इसमें 1957 में ओदोलेन स्मेकल द्वारा 'गोदान' का अनुवाद और डागमार मारकोवा द्वारा किया गया अनुवाद प्रमुख है। श्रीलंका में प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों का सिंहली भाषा में अनुवाद करने वाली इंद्रलता दसनायके ने प्रेमचंद के साहित्य को विश्व समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण बताया। पी.वी ग्लादीशेव रूस के पहले विद्वान थे जिन्होंने इंदीस्काया दिरेव्या व त्योरचेस्त्वे प्रेमचंदा (प्रेमचंद के कृतित्व में भारतीय ग्राम) विषय पर पीएचडी की उपाधि प्राप्त की थी। इसी प्रकार विक्टर ई. वालिन ने भी प्रेमचंद नावेलिस्ट (उपन्यासकार प्रेमचंद) विषय पर उल्लेखनीय शोध किया, जिस पर लेनिनग्राद विश्वविद्यालय ने उन्हें 1956 में डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान की। उन्होंने 'गोदान', 'निर्मला', 'प्रेमाश्रय' पर भी विवेचनात्मक अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त लाहौर से प्रकाशित पत्रिका 'सोज़े वतन' के आधार पर प्रेमचंद पर एक विद्वतापूर्ण लेख 'प्रेमचंद के जन-पथ का आरंभ और 'सोज़े वतन' 'कहानी-संग्रह' लिखा था, जो 1962 ई. में मास्को से प्रकाशित पुस्तक 'सेब्रेमेन्नाया इन्दीस्काया प्रोजा' (आधुनिक हिंदी भारतीय गद्य) में संकलित है।

जर्मनी के कई हिंदी सेवियों ने प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों पर गंभीर कार्य किए जिसमें मारग्रेट गात्सलाफ का 'निर्मला' और कई कहानियों का जर्मन में रूपांतरण और प्रो. लोठार लुत्से द्वारा कमल किशोर गोयनका के सहयोग से प्रेमचंद साहित्य पर किया गया कार्य महत्वपूर्ण है। मॉरीशस के हिंदी विद्वान और हिंदीसेवी वासुदेव विष्णुदयाल द्वारा फ्रांसीसी भाषा में प्रेमचंद की कहानियों का किया गया अनुवाद भी महत्व का है। इस प्रकार प्रेमचंद दो-चार देशों के नहीं बल्कि विश्व के अधिकांश देशों के विद्वानों और अनुवादकों के चहेते रहे हैं। आज भी विश्व के अनेक देशों में जहां हिंदी-सेवी या हिंदी-प्रेमी बसते हैं वहां प्रेमचंद साहित्य पर तरह-तरह के कार्य किए जा रहे हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों और उनकी कहानियों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद कराने वालों की संख्या तो सैकड़ों में है। वहीं पर ऐसे अनेक हिंदी-सेवी विद्वान अनेक देशों में हैं जिन्होंने प्रेमचंद साहित्य पर गोष्ठियों और परिचर्चाओं का आयोजन करके प्रेमचंद को सर्वसुलभ और चर्चा में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन हिंदी सेवी महानुभावों में अ.ए. वारान्निकोव, बुस्मिनों, यू. लाबीनेन्कों, एस. दीमाशित्स, एनबूकोवा, वी. मखोतीन, एच. एन्तीनोव, ओ. अफानासियेव, एफ. अनूफ्री, ई. रावीनोविच, एम. लोजेच्कों आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं।

रूस, चीन की तरह ही जापान में भी प्रेमचंद काफ़ी लोकप्रिय हैं। जापान में प्रमुख हिंदी प्रचारक प्रो. क्यूमा दोई ने 1955 ई. में 'गोदान' का जापानी भाषा में अनुवाद किया। प्रो. साबा ने प्रेमचंद की कहानी 'कफ़न' का जापानी भाषा में अनुवाद किया। जापान में इसे भारतीय साहित्य का प्रथम अनुवाद माना जाता है। प्रो. तेइजि सकाता ताकुसोक ने 1967 ई. में 'गोदान में प्रेमचंद की पद्धति एवं शैली' तथा 1968 ई। में 'प्रेमचंद की कहानियों में शिल्पविधि का विकास' लेख लिखा। इसके साथ ही प्रो. केइचि नियामोतो एवं प्रो. ताइगेन हाशियोतो के सहयोग से 'दो बैलों की कथा, बड़े भाई साहब, पूस की रात, नशा जैसी अनेक लोकप्रिय कहानियों का जापानी में अनुवाद किया। तामाकि मात्सुओगा ने 'ईदगाह' का अनुवाद किया। प्रो. कोउकि नागा ने 'प्रेमचंद तथा गांधीवाद' विषय पर शोध किया। वहीं पर इशिदा हिदेआकी ने प्रेमचंद के साहित्य में अस्पृश्यता पर किया गया कार्य, मुराकामी योशियाकी द्वारा प्रेमचंद साहित्य का संकलन, श्रीमती कुरू ने मृतक भोज, ठाकुर का कुआं, पूस की रात, दूध का दाम, सद्गति आदिका जापानी में अनुवाद किया। प्रो. अकिरा ताकाहासि, सुयोशीनारा ने भी प्रेमचंद साहित्य पर महत्वपूर्ण कार्य किए।

फिनिश भाषा के विद्वान वर्तिल तिक्कनैन और क्लाउक कार्तिनेन ने प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' का 'प्यूहा लेहमा' नाम से फिनिश भाषा में किया अनुवाद भी महत्व का है। अंग्रेज़ी के रूपर्ट स्नेल ने प्रेमचंद की अनेक कहानियों का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया वहीं पर डेनमार्क के प्रो. फिन थीशन ने प्रेमचंद साहित्य का डेनमार्की में प्रचार-प्रसार करके डेनमार्क में हिंदी का डंका बजा रहे हैं। हंगरी के इवा अरादी ने हंगेरियन भाषा में प्रेमचंद की कई कहानियों का अनुवाद किया है। इसी क्रम में बल्गारिया के कोल्यो कोवाचेव ने 'गोदान' का बल्गारियन भाषा में किया गया अनुवाद भी महत्वपूर्ण है। नीदरलैंड के प्रो. वेगेल ने प्रेमचंद की अनेक कहानियों का डच भाषा में अनुवाद करके डच वासियों को हिंदी साहित्य से परिचित कराया। इटली की विदुषी प्रो. मारिआला ओफरीदी द्वारा 1967 में 'गोदान' का इतालवी में किया गया अनुवाद अत्यंत महत्व का है। उनका मानना है प्रेमचंद क्लासिकल व्यक्तित्व के धनी हैं और उनकी रचनाएं विशेषकर 'गोदान' विलक्षण है। अमरीकी विद्वान प्रो. क्रिस्टोफर किंग ने 'ग़बन' और 'रंगभूमि' का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। वह प्रेमचंद से इतने प्रभावित हैं कि हिंदी साहित्य में प्रेमचंद को प्रतिनिधि मान लिया। वे कहते हैं—''उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद हिंदुस्तान के प्रतिनिधि हैं।'' पोलिश भाषा के युल्मुश पर्नोवस्की द्वारा 'गोदान' एवं 1971 में और कई कहानियों का किया गया पोलिश भाषा में अनुवाद कार्य पोलैंड वासियों के लिए अत्यंत महत्व का बताया गया। ❑

संपर्क : आदर्श इलेक्ट्रानिक्स, बैंक ऑफ बड़ौदा के बग़ल, फूलपुर मेन रोड, फूलपुर, इलाहाबाद-212402

प्रेमचंद की कहानियां

राजीव कुमार वर्मा

प्रेमचंद ने अपने जीवन काल में लगभग तीन सौ कहानियों की रचना की है। कहानी के बारे में उनका स्वयं का विचार है कि–"सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। बुरा आदमी भी बिलकुल बुरा नहीं होता, उसमें कहीं देवता अवश्य छिपा होता है–यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। उस देवता को खोलकर दिखा देना सफल आख्यायिका-लेखक का काम है।"[1] प्रेमचंद की अधिकतर कहानियां इस मनोवैज्ञानिक सत्य पर सौ फीसदी खरी उतरती हैं। वैसे भी आख्यायिकाओं (कहानियों) द्वारा मानवीय एवं नैतिक उपदेश की परंपरा धर्मग्रंथों से लेकर साहित्य ग्रंथों में भी प्रचलित रही है। 'कथा-सरित्सागर', 'बेताल-पच्चीसी' 'सिंहासन-बत्तीसी' आदि पुस्तकें इसी श्रेणी की हैं, जिनमें न जाने कितने मानवीय, नैतिक एवं धार्मिक समस्याएं सुलझाए गए हैं। स्पष्ट है कि कहानी का मुख्य उद्देश्य किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की प्रतिष्ठा होनी चाहिए और प्रेमचंद की कहानियां इस उद्देश्य को पूरा करती हैं। मानवीय मूल्यों का संबंध किसी 'व्यक्ति' या 'व्यक्तियों के समूह' के व्यवहार से होता है। यही किसी व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं और यही उसके जीवन की गुणवत्ता को भी प्रभावित करते हैं। मूल्य के इस विशेषता को केंद्र में रखकर यदि प्रेमचंद की कहानियों का मूल्यांकन किया जाय तो उनके अधिकांश कहानियों में उच्च मानवीय मूल्यों की स्थापना देखने को मिलती है।



प्रेमचंद ने जिन मुद्दों को अपने कथा-साहित्य में उठाया है, वे आज भी संगत है। उनकी संतुलित वस्तुनिष्ठ दृष्टि आज भी हमें सोचने पर मजबूर करती हैं, चाहे वह सांप्रदायिकता का मुद्दा हो, सामाजिक-आर्थिक न्याय की बात हो, दलित जीवन, जात-पांत अथवा स्त्रियों की समस्या हो, प्रेमचंद की दृष्टि, उनकी ईमानदारी, उनकी प्रतिबद्धता और मानवीय संवेदना की झलक उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। प्रेमचंद की प्रथम कहानी संग्रह 'सोज़े वतन' के नाम से प्रकाशित हुई थी, जिसमें उनकी देशभक्ति-प्रधान कहानियां संकलित हैं। इस संग्रह में उनकी प्रसिद्ध कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' संकलित है, जिसमें प्रेमचंद ने लिखा है कि मातृभूमि की रक्षा में शहीद हो जाने वाले देशभक्त के शरीर से बहने वाले रक्त की बूंदें ही दुनिया का सबसे अनमोल रतन हो सकती हैं। देश के प्रति यह अगाध प्रेम उनका अपना जीवन मूल्य ही था। प्रेमचंद अपने लेखन के आरंभिक दौर में उग्र राष्ट्रवाद से प्रभावित थे और इसी कारण उनकी पहला कहानी-संग्रह 'सोज़े वतन' तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिया गया था। कालांतर में राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर गांधीजी ने संभाली एवं साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन के अलावा सामाजिक प्रश्नों, सांप्रदायिक एकता, स्त्री एवं दलित उत्थान आदि विषय को भी गांधीजी ने अपने राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल किया एवं सत्याग्रह, अहिंसा, सविनय अवज्ञा जैसी बातों पर ज़ोर दिया तो प्रेमचंद भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाए और वे गांधीजी के इन लक्ष्यों को अपनी कहानियों के माध्यम से लोगों के सामने लाना अपना दायित्व समझा। आगे चलकर प्रेमचंद ने ग्राम एवं किसान जीवन, दलित जीवन, स्त्री जीवन, बाल मनोविज्ञान आदि से संबंधित कहानियों की रचना की।

प्रेमचंद के रचनाकाल के शुरुआती दौर की कहानी 'बड़े घर की बेटी' में उनकी आदर्शवादी सोच की अभिव्यक्ति हुई है। वे संयुक्त परिवार के हिमायती थे। इस कहानी में आनंदी अपनी धैर्य, सहनशीलता और गांभीर्य से परिवार को टूटने से बचा लेती है। वह अपने देवर लाल बिहारी द्वारा अपमान की जाती है परंतु क्षमा मांगने पर उसे माफ़ कर देती है। साथ ही अपने पति द्वारा भी क्षमा कर देने को आग्रह करती है। आनंदी के क्षमा-दान के उपरांत उसके बारे में ससुर की यह टिप्पणी की 'बड़े घर की बेटियां ऐसी ही होती है' प्रेमचंद के आदर्शवादी सोच की ही अभिव्यक्ति जान पड़ता है। परंतु उन्नत-विचार, समझदारी, आदर्श-चिंतन और उदार हृदयता जैसी बातें 'बड़े' घरों या 'अभिजात वर्गों' की ही चीज़ हो ऐसी बात न होकर प्रेमचंद ने उक्त जीवन-मूल्यों को साधारण वर्गों में भी दिखाया है। 'गोदान' उपन्यास एवं 'मंत्र' कहानी इसके प्रमाण हैं। 'मंत्र' शीर्षक से प्रेमचंद ने दो कहानियां लिखी हैं–प्रथम कहानी के चरित नायक पं. लीलाधर चौबे हैं एवं दूसरी के बूढ़ा भगत है। हम यहां दूसरी कहानी की चर्चा कर रहे हैं जिसके नायक बूढ़ा भगत हैं। इस कहानी की शुरूआत एक घटना से होती है, जिसमें भगत अपने मरणासन्न बेटे को उपचार हेतु डॉ. चढ्ढा के पास लाता है, परंतु वह समय मरीजों के देखने के बजाय उनके गोल्फ खेलने जाने का था, और भगत के लाख अनुनय-विनय के बावजूद वे उसके बेटे को नहीं देखते फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है। डॉक्टरी को वे पेशे की तरह करते हैं, किसी सेवा-भावना के तहत या नैतिक आधार के तहत नहीं। यहां उनका आभिजात्य उनके मन पर हावी रहता है। लगभग बीस वर्षों के उपरांत डॉ. चड्ढा का बेटा अपने ही तिलक-समारोह में सांप पालने की अपनी रुचि का प्रदर्शन करता है और उसी का एक जहरीला सांप उसे डस लेता है। मिस्टर चड्ढा स्वयं डॉक्टर थे परंतु उनके पास इसका कोई उपचार नहीं था। वही उसे ठीक कर सकता था जिसे सर्पदंश उतारने का मंत्र हासिल हो। मुनादी होती है, दस हज़ार रुपयों का इनाम घोषित होता है। मुनादी भगत तक भी पहुंचती है। उसके पास वह मंत्र था जो डॉक्टर के बेटे को बचा सकता था। उसके मन में अपने बेटे की मृत्यु की घटना अपने सारे त्रासद अहसास के साथ उभर उठती है। उसके मन में द्वंद्व उठता है कि वह डॉक्टर के घर जाए या नहीं। कहानी का सबसे जीवंत भाग भगत का यह द्वंद्व ही है। वह क्रूर नहीं है, निष्ठुर नहीं है परंतु गहरी चोट खाया हुआ व्यक्ति है। परंतु उसका दूसरा मन, उसे प्रेरित करता है, उसकी नैतिकता को उभारता है और वह अपनी बुढ़िया पत्नी को बिना बताए डॉ. चढ्ढा के घर जाकर उनके बेटे को बचा लेता है। यहां डॉ. चढ्ढा और भगत की जीवन स्थितियां बिल्कुल विपरीत है। एक संपन्न है और दूसरा दरिद्र। किंतु डॉ. चढ्ढा संपन्न होते हुए भी दरिद्र हैं और भगत दरिद्र होते हुए भी मूल्य, निष्ठा एवं नैतिकता का धनी है। यहां प्रेमचंद यह दिखाना चाहते हैं कि मानवीय मूल्य आज तथाकथित

उच्च कहे जाने वाले लोगों में नहीं, उन छोटे कहे जाने वाले लोगों के बीच मिल सकते हैं। बूढ़े भगत की मानवीय एवं नैतिक चेतना कहानी को एक बहुत ऊंची जमीन पर प्रतिष्ठित करती है।

प्रेमचंद 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' के पक्षधर थे। यह संज्ञा उनके साहित्य पर सटीक बैठती है। एक ओर उन्होंने समाज के कटु यथार्थ को, उसकी विसंगितयों को उजागर किया वहीं दूसरी ओर मानव-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत महान आदर्शों, मानवीय एवं नैतिक मूल्यों से युक्त चरित्र की रचना की। 'नमक का दारोगा' उनकी आरंभिक कुछ बहुचर्चित कहानियों में एक है, जिसमें असत्य, अन्याय और अनैतिक आचरण पर सत्य, न्याय और नैतिकता की विजय दिखाई है। कहानी का नायक मुंशी वंशीधर नमक के विभाग में दारोगा के पद पर कार्यरत है, जो बेहद ईमानदार एवं कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति है। परंतु ऋण के बोझ से दबे पिता चाहते हैं कि बेटा ऊपरी आमदनी पर भी ध्यान दें। वे पहले ही मुंशी वंशीधर को आगाह करते हुए समझा चुके हैं कि–"नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मज़ार है। ऐसा काम ढूढ़ना जहां कुछ ऊपरी आय हो।...वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है इसी से उसकी बरकत होती है।"[2] प्रेमचंद ने भावुक हुए बिना अपने कहानियों में असामान्य चरित्रों को रचकर विद्यमान व्यवस्था के विद्रुपताओं को उभारने के लिए, पाठक को बेचैन और विक्षुब्ध करने के लिए, व्यवस्था के वास्तविक अमानवीय चरित्र को उसकी सारी अमानवीयता के साथ उद्घाटित करने का प्रयास किया है। 'सद्गति', 'सवा सेर गेहूं', 'कफन' इत्यादि इसी तरह की कहानियां है। प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन की इन्हीं निर्मम सच्चाईयों को अपनी पक्षधरता और मानवीय संवेदनाओं के साथ अपनी कहानियों में पूरी रचनात्मक तटस्थता के साथ उजागर किया है।

'ईदगाह' कहानी की लोकप्रियता का कारण इसके अंतर्गत प्रेमचंद द्वारा रचित चार-पांच साल के, बिना मां-बाप के एक बालक हामिद का चरित्र है। यह चार-पांच साल का बालक अपनी पूरी मानवीय संवेदना से युक्त बूढ़े हामिद के रूप में हमारे सामने अवतरित होता है। इस कहानी की कथा बस इतनी है कि रमज़ान के बाद ईद के मौके पर लगने वाली मेले में हामिद अपने हमउम्र बच्चों के साथ मेला जाता है। वहां सभी बच्चे तरह-तरह के खिलौने खरीदते हैं परंतु हामिद अपनी बूढ़ी दादी के लिए अपनी सारी पूंजी के एवज में लोहे का एक चिमटा खरीदता है क्योंकि उसे ख्याल आता है कि चिमटे के अभाव में उसकी दादी रोज ही अपने हाथ जला लेती है। प्रेमचंद ने इस त्रासद प्रसंग को अद्भुत रचनात्मक ईमानदारी एवं संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। कहानी का अंत बेहद भावुक एवं रोमांचित करने वाला है। बूढ़ा हामिद भी अंततः एक बच्चा हामिद ही है, तभी तो अमीना के आंसुओं का रहस्य नहीं समझ पाता। प्रेमचंद लिखते हैं–"बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएं देती जाती थी और आंसू की बड़ी-बड़ी बूंदे गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता!!"[3]

दलित-जीवन संदर्भों पर लिखी उनकी एक बहुचर्चित कहानी 'ठाकुर का कुआं' है। इस कहानी में प्रेमचंद अपनी बेबाक पक्षधरता एवं मानवीय सरोकारों के साथ हमारे सामने आए हैं। यह कहानी बहुत छोटी एवं महज एक घटना प्रसंग को सामने लाने वाली है परंतु पूरी बेधकता और प्रभाव के साथ। तथाकथित अछूत जाति की गंगी अपने बीमार पति जोखू के लिए पानी लाने ठाकुर के कुएं पर जाती है क्योंकि दलितों के अपने कुएं का पानी दूषित हो चुका था। उसे आशा थी कि वह रात के अंधेरे में चुपचाप ठाकुर के कुएं से पानी भर लेगी। अछूत होने के नाते उच्च कहे जाने वाली जातियों के कुएं उसके लिए निषिद्ध थे। उसके मन में ऊंचे लोगों के प्रति विद्रोह कौंध उठता है–"हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊंचे है? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहां तो जितने हैं, एक-से-एक छंटे हैं? चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें झूठे मुकदमें ये करें। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में है हमसे ऊंचे।"[4] यहां प्रेमचंद ने दलितों के प्रति महज़ करुणा या सहानुभूति न दिखाकर उनके लिए रचे गए नरक के विधानों के प्रति क्रूर और अमानवीय चेहरे को बेनकाब करते हुए गंगी के अंदर उठे आक्रोश की अभिव्यक्ति की है। एक तरफ़ गंगी के मन में यह विद्रोह उठता है वहीं दूसरी तरफ़ ठाकुर का भय सालता है कि उनके कुएं से पानी भरते ठाकुर देख न ले। मौक़ा पाकर गंगी चुपचाप कुएं में घड़ा डालती है, पानी से भरा घड़ा ऊपर तक खींच चुकी थी, तभी ठाकुर का दरवाज़ा खुलता है और रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिर जाता है। प्रेमचंद ने प्रायः अपनी कहानियों में साधारण जन, किसान, मज़दूर, दलित, स्त्री के शोषण का विरोध करते हुए उनके उचित अधिकारों के प्रति अपनी पक्षधरता की अभिव्यक्ति दी है वहीं उन्होंने उनकी व्यक्तिगत कमज़ोरियों, उनके अज्ञान, उनके रूढ़ आचार-व्यवहार की आलोचना की है। 'मुक्ति-मार्ग', 'पंच-परमेश्वर' इत्यादि इसी तरह की कहानियां है।

'पंच-परमेश्वर' कहानी बहुत ही सरल, सीधी एवं परंपरागत वर्णन-शैली में लिखी गई है। लोक में यह विश्वास है कि पंच की आत्मा में ईश्वर या खुदा का वास होता, पंच के आसन पर बैठते ही आदमी का मन निश्छल-निष्पक्ष देवता का मन हो जाता है। 'पंच-परमेश्वर' दो घटना-प्रसंगों से जुड़े दो साधारण पात्रों अथवा दो मित्रों की कहानी है। अलगू चौधरी एवं जुम्मन शेख खानदानी मित्र हैं। साथ ही साझे में खेती-बाड़ी भी होती है। जुम्मन की खाला अपना सब कुछ जुम्मन के नाम करके उनकी आश्रिता की तरह उनके साथ रहती है परंतु जुम्मन की पत्नी खाला के साथ दुर्व्यवहार करती है और जुम्मन उसकी अनदेखी करते हैं। अंततः खाला जुम्मन के खिलाफ पंचायत बिठाती है परंतु अधिकांश लोग जुम्मन के दबदबे के चलते पंचायत में नहीं आते। ख़ाला अलगू चौधरी के पास भी जाती है किंतु अलगू साफ शब्दों में कहते हैं कि उसके चलते वे जुम्मन से बिगाड़ नहीं करेंगे। हताश खाला अलगू से इतना ही कहती है कि 'बिगाड़ की खातिर क्या ईमान की बात नहीं कहोगे।' ख़ाला का यह वाक्य अलगू के हृदय में चुभ जाता है। पंचायत बैठती है। ख़ाला अलगू को पंच चुनती है। जुम्मन मन ही मन प्रसन्न होते हैं कि अलगू का फैसला उनके पक्ष में होगा। दोनों की दलीलें सुनने के बाद अलगू जुम्मन के ख़िलाफ़ फैसला देते हैं। न्याय और धर्म की जीत होती है। जुम्मन चकित रह जाते हैं। उनकी और अलगू की पुरानी मैत्री लगभग टूट जाती है। संयोग वश एक अन्य संदर्भ में समझू साहु के ख़िलाफ़ अलगू को पंचायत बुलानी पड़ती है, जो अलगू से खरीदे बैल का दाम चुकाने से इंकार कर रहा था। इस बार जुम्मन शेख को पंच चुना जाता है। जुम्मन लंबे समय से अलगू से प्रतिशोध लेने की सोच रहे थे। वे पंच के आसन पर बैठते हैं। दोनों ओर की दलीलें सुनने के बाद वे फैसला अलगू चौधरी के पक्ष में देते हैं। फैसला सुनकर अलगू विस्मित परंतु अभिभूत होते हैं। वे जुम्मन के गले लग जाते हैं। ख़ानदानी मैत्री फिर से कायम हो जाती है। जुम्मन शेख स्वीकार करते हैं कि उनके मन में बदले की भावना थी, परंतु पंच के आसन पर बैठते ही वह धुल गया। सचमुच पंच में परमेश्वर का वास होता है। इस प्रकार प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से आदर्श, नैतिक एवं मानवीय मूल्य की स्थापना करते हैं। यह काल्पनिक आदर्श न होकर हमारे साधारण जीवन-व्यवहारों में देखी गई सच्चाई है।

प्रेमचंद मनुष्य पात्रों के साथ-साथ पशु पात्रों में भी संवेदनात्मक भावना का सृजन किया है। उनकी कहानियों के पशु-पात्र केवल पशु ही नहीं है, वे सजीव मनुष्य पात्रों के जैसा मानवीय आचरण और क्रिया-कलापों के साथ उपस्थित हुए हैं और मनुष्य पात्रों की तरह ही कालजयी भी बने हैं। 'पूस की रात' का जबरा कुता, 'आत्माराम' का तोता, 'दो बैलों की कथा' के हीरा-मोती, और 'प्रेम का उदय' कहानी का गधा अपनी पूरी मानवीय संवेदना के साथ हमारे सामने जीवंत हो जाते हैं। 'पूस की रात' कहानी का सबसे मार्मिक अंश जहां जबरा और हल्कू परस्पर संवाद करते हैं, अपना सुख-दुख बांटते हैं और पूस की रात अपने आतंकदायीशीत से उन्हें एकात्म कर देती है। हल्कू और जबरा यहां मनुष्य और पशु न होकर समान अनुभूति के तार में बंधे प्राणी-मात्र हैं। हल्कू के लिए मानवीय संवेदना से युक्त प्राणी जबरा कुत्ता ही है, सहना नहीं क्योंकि कंबल खरीदने के लिए हल्कू ने जो पैसे इकट्ठे किए थे उसको सहना के गाली के डर से बकाया अदा करने के लिए दे दिए थे, जबरा ही पूस की ठंडी रात में हल्कू का सहारा बनता है। प्रेमचंद लिखते हैं–"जबरा ने अगले पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिए और मुंह के पास अपना मुंह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म सांस लगी। जब किसी तरह न रहा गया तो उसने जबरा को धीरे-से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया।"[7] परंतु यह सहारा भी क्षणिक होता है और बाद में पास के बगीचे में वृक्ष की पत्तियों को जलाकर आग तापना पड़ा। यहां प्रेमचंद किसानों के कारुणिक एवं दयनीय आर्थिक स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित कराना चाहते हैं कि जो किसान दिन-रात, जाड़ा-गर्मी-बरसात मेहनत करता है, ठंड को ठंड नहीं समझता उसको अपने शरीर ढकने के लिए उचित वस्त्र नहीं मिलता। ऐसी स्थिति केवल हल्कू या प्रेमचंद के समय की नहीं थी, आज भी हमारे देश में न जाने कितने हल्कू इसी तरह दिन-रात मेहनत करते हैं जिन्हें न तो तन ढकने के लिए कपड़ा है, न रहने के लिए घर और न ही खाने के लिए समुचित भोजन।

प्रेमचंद की एक बहुत ही चर्चित कहानी है–'दो बैलों की कथा'[8]। यह जानवर के माध्यम से आदमी पर लिखी गई कहानी है। यदि यह कहा जाय कि आदमी की आदमीयत की तुलना में जानवर के जानवरपन ज्यादा बहुमूल्य, मानवीय एवं संवेदनशील है। दोनों बैल हीरा और मोती मानव के तुलना में ज्यादा मूल्यनिष्ठ, लोगों पर दया एवं सहानुभूति दिखाने वाले हैं। प्रेमचंद यहां जानवरों को भी मानवीय गुण, धर्म एवं कर्त्तव्यनिष्ठता से युक्त दिखाया है। यह कहानी दो जानवरों की सोच और व्यवहार की तुलना तथाकथित मनुष्य कहे जाने वाले पात्रों की सोच और व्यवहार से की गई है। अर्थात् एक तरफ़ हीरा-मोती दो जानवर हैं तो दूसरी तरफ़ झूरी, उसकी पत्नी, उसके साले, उनकी पत्नियां, कांजी हाउस के चौकीदार, कसाई आदि है। प्रेमचंद ने हीरा मोती के आपसी भाई-चारे, उनकी मैत्री, एक-दूसरे के सुख-दुख के प्रति उनकी चिंता आदि का चित्रण किया है। झूरी दोनों बैलों का मालिक हैं और उन्हें बहुत प्यार करता है। हीरा-मोती भी मालिक पर जान देते हैं, परंतु झूरी अपनी पत्नी से दबता है और यह जानते हुए भी कि उसकी ससुराल में बैलों की दुर्गति होगी, वह उन्हें अपनी ससुराल भेज देता है। परंतु दोनों विद्रोह कर वापस झूरी के घर आ जाते हैं। फिर झूरी का साला भैरो आकर ले जाता है। दोनों को सूखा भूसा खाने को दिया जाता है। दोनों खाते नहीं है। फिर घर से साले की लड़की दो रोटियां लाकर दोनों को एक-एक रोटी देती है। इस तरह झूरी के साले उन पर अत्याचार करते हैं। इस पर मोती भड़कता है–"मुझे मारेगा, तो मैं भी एक-दो को गिरा दूंगा।" हीरा समझाता है–"नहीं। हमारी जाति का यह धर्म नहीं है।" उन पर और अत्याचार होता है। फिर एक दिन मोती कहता है–"अब तो नहीं सहा जाता, हीरा!" हीरा कहता है–"क्या करना चाहते हो?" मोती–"एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक दूंगा।" हीरा–"लेकिन जानते हो, वह प्यारी लड़की, जो हमें रोटियां खिलाती है। उसी की लड़की है, जो इस घर का मालिक है। यह बेचारी अनाथ न हो जाएगी?" मोती–'तो, मालकिन को न फेंक दूं। वही तो उस लड़की को मारती है।' हीरा–'लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूल जाते हो।' दोनों जब दुबारा झूरी के ससुराल से भागते हैं और रास्ता भूल जाते हैं। इस पर मोती कहता है–'तुम भी बेतहासा भागे। वहीं उसे मार गिराना था।' इस पर हीरा कहता है–'उसे मार गिराते, तो दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म छोड़ दे, लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़े?' कांजी हाउस में दोनों का अपने प्रयास से सभी जानवरों को मुक्त कराना, मोती का अकेले मुक्त होने से इंकार करना तथा यह कहना कि–'तुम मुझे इतना स्वार्थी' समझते हो, हीरा? हम और तुम इतने दिनों एक साथ रहे हैं। आज तुम विपत्ति में पड़ गए, तो मैं तुम्हें छोड़कर अलग हो जाऊ।' इतना ही नहीं आगे कहता है–'जिस अपराध के लिए तुम्हारे गले में बंधन पड़ा, उसके लिए अगर मुझ पर मार पड़े, तो क्या चिंता। इतना तो हो ही गया कि नौ-दस प्राणियों की जान बच गई। वे अब तो आशीर्वाद देंगे।' और भावी मृत्यु पर दोनों की यह सोच कि–'क्या चिंता है? मांस खाल, सींग, हड्डी सब किसी-न-किसी काम आ जाएंगी।' दो बैलों के माध्यम से प्रेमचंद अपनी सोच अपनी संवेदनशीलता को ही उजागर किया है। प्रेमचंद ने जानवरों में भी स्वाभाविक भ्रातृत्व, प्रेम, मैत्री, वात्सल्य, ममता, करुणा, त्याग, उदारता, बलिदान, नैतिकता, धैर्य, स्वाधीनता, कृतज्ञता, धीरज, विवेक, सहिष्णुता आदि का जो समावेश किया है वहीं तो वह बातें है जिन्हें मानवीय मूल्य कहा जाता है। प्रेमचंद ने जानवरों के आचरण, व्यवहार और सोच में दिखाकर आज के मनुष्य जाति को यह बताना चाहते है कि मानवीय चेतना एवं मूल्यों से कितना दूर होता जा रहा है।

प्रेमचंद अपने जीवन के अंतिम वर्ष (1936 ई.) में सबसे चर्चित एवं महत्वपूर्ण कहानी लिखी थी–'कफन'। दलित लेखकों के बीच यह कहानी विवादास्पद भी रही। 'कफन' वस्तुतः परजीविता पर केंद्रित कहानी है अर्थात् इनके पुरुष पात्र धीसू एवं माधव परजीवी किस्म के चरित्र हैं जो स्वयं निकम्मा रहकर किसी तरह आजीविका चलाने में विश्वास रखते हैं। प्रेमचंद उनकी इस परिस्थिति में पहुंचने का मुख्य कारण सामाजिक कुव्यवस्था की उपज मानते हैं। 'कफन' कहानी के मुख्य पात्र धीसू एवं माधव इसी परजीविता से अमानवीय बनते हैं, जो केवल दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व न करके समाज के प्रत्येक परजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी अमानवीयता का चरम उस समय देखने को मिलता है जब माधव की पत्नी बुधिया प्रसव-वेदना से व्याकुल होकर, छटपटा कर दम तोड़ देती है किंतु धीसू और माधव जाड़े की रात में अलाव के पास से इसलिए देखने नहीं जाते कि उनमें से कोई अलाव के पास से हटा तो दूसरा भूने हुए आलुओं को अकेला खा जाएगा। प्रेमचंद यहां यह भी दिखाना चाहते है कि भूखा आदमी एक समय के बाद अमानवीय हो ही जाएगा। धीसू एवं माधव को भी दो दिन के भूखे रहने के बाद ये आलू मिले थे, वह भी किसी के खेत से चुराकर लाये गए थे। धीसू एवं माधव परजीवी जरूर है पर उनमें व्यवहारिक बुद्धि की कमी नहीं है। उनको पता है कि गांव के लोगों की दया और सहानुभूति से उन्हें कफन खरीदने एवं अन्य कामों के लिए पैसे जरूर मिल जाएंगे और होता भी यहीं है, जमींदार एवं अन्य लोगों द्वारा दिए गए पांच रुपया उनके पास एकत्र भी हो जाता है। परंतु भारतीय समाज की विडंबना यह है कि जीते जी एक पैसा न देने वाले लोग मृत्यु के

बाद कफन खरीदने के लिए दे देते हैं।[10] यही विडंबना 'गोदान' उपन्यास में भी देखने को मिलता है। होरी अपने जीवन काल में गाय की साध पूरी नहीं कर सका, लेकिन उसके जीवन के अंतिम क्षण में पं. दातादीन (भारतीय धर्म व्यवस्था) उसकी पत्नी से गोदान करने को कहता है। बहरहाल 'कफन' कहानी में धीसू एवं माधव तर्क-वितर्क करते शराबखाने में पहुंच जाते हैं और कफन खरीदने के लिए जो पैसे मिले हैं उससे जमकर खराब पीते हैं और भर पेट खाना खाते हैं। शराब की चुस्कियां उन्हें दार्शनिक भी बनाती है साथ ही बुधिया को ढेरों शुभकामनाएं देते हैं, भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह उसे सीधा बैकुंठ भेजे। वे कहते हैं कि जब वह जीवित थी, तब भी हाड़तोड़ मेहनत करके उनका पेट भरती थी और आज मरने के बाद भी उसी की बदौलत वह सुख पा रहे हैं, जो उन्हें अपने जीवन में कभी नसीब नहीं हुआ था। यही कहानी का अंत होता है। प्रेमचंद व्यवस्था की विसंगतियों पर करारा चोट करते हुए यहां दिखते हैं। उन्होंने असामान्य चरित्रों की रचना कर सामाजिक व्यवस्था की अमानवीय और क्रूर चेहरा को बेनकाब कर दिया। इस कहानी के माध्यम से उन्होंने यह दिखाया है कि सामाजिक व्यवस्था मनुष्य को किस तरह अपने श्रम और अपने अस्तित्व से काटकर परजीवी बनाती है और उसे मानवीय से अमानवीय चरित्र में तब्दील कर देती है। भूखा आदमी कितना अमानवीयता के हद तक जा सकता है, हृदयहीन हो सकता है। इन कहानियों के अतिरिक्त अभी बहुत सारी कहानियां हैं जिनके द्वारा उन्होंने सामाजिक जड़ता एवं अमानवीयता पर कड़ा प्रहार किया है। उन सभी कहानियों की चर्चा एवं मूल्यांकन करना यहां संभव नही है। फिर भी कुछ कहानियों का हम यहां नाम लेना चाहेंगे जिनमें प्रेमचंद उच्च मूल्य की स्थापना करते हैं या उनके माध्यम से सामाजिक कुरीतियों, जड़ता, विडंबना, असंवेदनशीलता, स्वार्थ, शोषण, संवेदनहीनता पर आपत्ति दर्ज़ करते हुए अपनी मानवीय पक्षधरता का परिचय देते हैं। उन कहानियों में मुख्य रूप से 'बड़े भाई साहब', 'बूढ़ी काकी', 'मुक्ति मार्ग', 'परीक्षा', 'अलग्योझा', 'आत्माराम', 'रामलीला', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'प्रेम का उदय', 'लाटरी', 'मां', 'घासवाली', 'बेटों वाली विधवा' आदि का नाम लिया जा सकता है।

वास्तव में प्रेमचंद मानवतावादी रचनाकार थे। उनका संपूर्ण साहित्य मानवीय संवेदना एवं सरोकार से जुड़ा हुआ है। एक जागरुक कलाकार होने के कारण वे अपनी रचनाओं में कल्पना की अपेक्षा सत्य, निराशा की अपेक्षा आशा, मृत्यु की अपेक्षा जीवन, अंतर्दृष्टि के स्थान पर बर्हिदृष्टि, कुरूपता के स्थान पर सौंदर्य तथा यथार्थ के स्थान पर आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के पक्षधर थे।[13] प्रेमचंद ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष, 1936 ई. में लखनऊ में होने वाले 'प्रगतिशील लेखक संघ' के पहले अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए 'साहित्य के उद्देश्य' पर प्रकाश डालते हुए कहा था—"हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो—जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।[14]

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रेमचंद,साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2001, पृ. 51
2. साहनी, भीष्म (सं.), प्रेमचंद : प्रतिनिधि कहानियां, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृ. 48,

3-12. पांडेय, श्रीनिवास (सं.) प्रज्ञा, मानव-मूल्य विशेषांक, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, अंक-56, भाग-1, वर्ष 2010-11, पृ. 16.

14. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ. 26

❑

संपर्क : मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

आजकल का ग्राहक बनें :

मैं आपकी पत्रिका *----------का ❑ एक वर्ष (100 रुपये)

❑ दो वर्ष (180 रुपये) ❑ तीन वर्ष (250 रुपये) का ग्राहक बनना चाहता हूं।

शुल्क का रुपये---------- डिमांड ड्राफ्ट

----------दिनांक--------संलग्न है।

हस्ताक्षर ----------

नाम : ----------

पता : ----------

पिन : ❑❑❑❑❑❑

- **कृपया अपना चंदा डी.डी. *अपर महा निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय* के नाम बनाएं।**
- **पत्रिका भेजने में, चंदा प्राप्त होने के बाद, आठ से दस सप्ताह का समय लगता है। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें।**
- **दिल्ली से प्रकाशित हमारी अन्य पत्रिकाएं हैं : *बाल भारती, आजकल* (उर्दू), *कुरुक्षेत्र*(हिंदी व अंग्रेज़ी), *योजना* (हिंदी, अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी व उड़िया)।**

चंदा निम्न पते पर भेजें :

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 48-53, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लैक्स, लौधी रोड, नई दिल्ली-110003

रागमाला : लघु चित्रकला

रागमाला लघु चित्रकला के कलाकारों या यूं कहिए घरानों ने इस भाषा की सीमा को तोड़ दिया। इन चित्रकारों ने रेखाओं व रंगों के माध्यम से संगीत की भावनात्मक अभिव्यक्ति तो की ही साथ-साथ उस राग के माधुर्य व वातावरण को भी सफलतापूर्वक दर्शकों तक पहुंचाया। यही कारण है कि दुनिया भर में कला पारखी इन लघु चित्रों की सराहना करते हैं, बता रहे हैं **गोपाल गुप्ता**

प्रत्येक देश की पहचान उसकी आर्थिक स्थिति के साथ-साथ उसकी सांस्कृतिक धरोहर व परंपरा से आंकी जाती है जो वहां के रहन-सहन, कला, संस्कृति, भाषा, संगीत, नृत्य, साहित्य आदि पर आधारित होती है। कुछ देश ऐसे भी हैं, जहां एक से अधिक क्षेत्र हैं जिनकी सांस्कृतिक धरोहर कुछ भिन्न देखी गई है। परंतु भारत एक अनूठा देश है जहां की संस्कृति, विविध कलाएं, परंपराएं व वास्तुकला इतनी अधिक भिन्न व समृद्ध हैं कि लोग भौचक्के रह जाते हैं। वास्तव में भारत अनेक प्रांतों, राज्यों व क्षेत्रों में बंटा था। प्रत्येक क्षेत्र की भाषा, लोकगीत, लोकनृत्य, ललित कलाएं, खान-पान, वेश-भूषा रीति-रिवाज में भिन्नता देखी जाती थी। पुरातन काल में यहां के शासक व अधीक्षक अपनी रुचि के अनुसार अपने क्षेत्र के कलाकारों को प्रोत्साहित करते तथा उनका संरक्षण करते। इतिहासकारों के अनुसार कुछ राजाओं ने अपने राज्य के कलाकारों को अन्य राज्यों में भेजा, ताकि वह वहां की कला व संस्कृति का अध्ययन कर अपनी कला को निखारें। इससे दोनों राज्यों के कलाकारों के दृष्टिकोण में एक नई चेतना व दिशा का संचार हुआ तथा इनकी कला में अन्य प्रदेश की कला का कुछ-कुछ समावेश व प्रभाव पड़ा। यह बाद में बने लघुचित्रों में भली-भांति दृष्टिगत होता है।



अजंता की भित्ति चित्रकला शृंगार रस से ओत-प्रोत मानी गई है। कला विशेषज्ञों की ऐसी धारणा है कि इसी काल में लघु चित्रकला का प्रारंभ हुआ होगा, क्योंकि इन चित्रों में मानव आकार-प्रकार, भाव भंगिमा में अजंता के चित्रण से समानता पाई जाती है। भारत में लघु चित्रकला के कई घराने (स्कूल) पाए जाते हैं परंतु 'रागमाला' लघु चित्रों का एक विशिष्ट स्थान है। इन लघुचित्रों की विशेषता समझाने के लिए यह जानना आवश्यक है कि प्रत्येक 'परफ़ोर्मिंग आर्ट' जैसे संगीत, नृत्य, अभिनय की एक भाषा होती है इसी प्रकार चित्रकला, मूर्तिकला व वास्तुकला आदि की अपनी अलग भाषा मानी गई है। प्रत्येक विधा का कलाकार अपनी कला से संबंधित भाषा के द्वारा अपने विचार भाव व भावना को व्यक्त करता है, और दर्शकों तक उन्हें पहुंचाने का प्रयास। इस भाषा व कला की बारीकियों को समझना व उसका सफलतापूर्वक प्रयोग करना, इतना सरल नहीं जितना प्रतीत होता है। इसके लिए कलाकार को कठिन श्रम व साधना करनी पड़ती है।

रागमाला लघुचित्र कला के कलाकारों या यूं कहिए घरानों ने इस भाषा की सीमा को तोड़ दिया। इन चित्रकारों ने रेखाओं व रंगों के माध्यम से संगीत की भावनात्मक अभिव्यक्ति तो की ही साथ-साथ उस राग के माधुर्य व वातावरण को भी सफलतापूर्वक दर्शकों तक पहुंचाया। यही कारण है कि दुनिया-भर में कला पारखी इन लघु चित्रों की सराहना करते हैं। मसोली, कांगड़ा व मालवा के रागमाला लघुचित्र भारतीय संगीत में निहित रस, भाव, लय तथा राग की विशेषता (लक्षण) को भली-भांति प्रदर्शित करते हैं।

'राग' संस्कृत शब्द है जो स्वर माधुर्य व संगीत का द्योतक है। इसे ऐसे स्वरों का संगम भी कह सकते हैं जो व्यक्ति में एक पुकार का भाव, भावना व मानसिक उद्वेलन उत्पन्न करे तथा मधुर हो। प्राचीन लिखित सामग्री शारंग देव, कृत संगीत रत्नाकर के आधार पर छः मुख्य राग भैरव, मेघ, पंचम, नटनारायन श्री व बसंत का वर्णन है, जो ग्रीष्म, वर्षा, पतझड़, शरद पूर्व (आरंभ), शरद तथा बसंत ऋतु में क्रमशः गाये जाते थे। मनिषियों की यह मान्यता थी कि इन रागों को इन ऋतुओं में गाने, बजाने से मानव मन-मस्तिष्क को आनंद प्राप्त होगा। एक और मत के अनुसार छः राग भैरव, मालकोंस हिंडोला, दीपक, श्री और मेघ माने गए। छः रागों की तीस रागिनी व अड़तालिस राग पुत्र माने गए। इस प्रकार रागमाला लघुचित्र शृंखला में लगभग सभी राग, रागिनी व रागपुत्रों का चित्रण समय-समय पर किया गया। विस्मय की बात यह है कि इन लघु चित्रों की विविधता दर्शक को प्रत्येक राग, रागिनी व राग पुत्र की भिन्नता व स्वरबद्धता से उत्पन्न मधुर भाव व वातावरण को प्रस्तुत कर दर्शक को भाव-विभोर कर एक नए संसार में पहुंचा देती है जो शायद उसे उस कृति राग को सुनने से प्राप्त हो।

मालवा घराने के लघुचित्रों के चित्रण में रंग चयन व मानव आकृतियों के बनाव-शृंगार का उत्तम मिश्रण देखने को मिलता है। लहरदार बादल, अंडाकार आकाश, स्त्रियों के चित्रण में छरहरा, सुंदर लचीला विषयासक्त शरीर चमकदार रंग। कुछ चित्रों में धरातल इस प्रकार दर्शाया है मानो एक नाट्य-मंच हो और कलाकार उस पर बैठ अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हों। चित्रों में मानव आकृतियों के साथ वृक्ष, पशु-पक्षी, फलदार झाड़ियां इस प्रकार संजोई गई हैं कि दर्शक भाव-विभोर हो भौचक्का रह जाता है। इन चित्रों में खड़ी रेखाएं तथा लहराती समानांतर रेखाएं एक लय व ऐंद्रीय (सेनसुल) भाव निर्मित करती हैं। रंगों का प्रयोग उपयुक्त ढंग से किया गया है जिससे चित्र का

पृष्ठ 30 पर जारी

साक्षात्कार

किसी एक भाषा तक बंधकर नहीं रहना चाहता

पहली बार सर्वश्रेष्ठ हरियाणवी फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार जीतने वाली फिल्म 'पगड़ी' के निर्देशक **राजीव भाटिया** *से* **प्रदीप सरदाना** *की बातचीत*

राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों के 62 वर्षों के इतिहास में यह पहला मौक़ा था जब गत 3 मई को किसी हरियाणवी फिल्म को सर्वश्रेष्ठ हरियाणवी फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। राष्ट्रीय पुरस्कार पाने वाली इस फिल्म का नाम है—'पगड़ी द ऑनर'। दिलचस्प बात यह है कि इस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेत्री का पुरस्कार भी इसी फिल्म की अभिनेत्री बलजिंदर कौर को मिला है। इससे हरियाणवी फिल्म 'पगड़ी' के हिस्से में एक साथ दो पुरस्कार आ गए हैं। यूं सन 2000 में एक हरियाणवी फिल्म 'लाडो' राष्ट्रीय पुरस्कारों का हिस्सा बन चुकी है, लेकिन उसे किसी निर्देशक की पहली फिल्म के रूप में एक अन्य अंग्रेज़ी फिल्म 'डॉलर ड्रीम्स' के साथ संयुक्त पुरस्कार मिला था, सर्वश्रेष्ठ हरियाणवी फिल्म के रूप में नहीं। इसीलिए इस बार पुरस्कार समारोह के दौरान नई दिल्ली के विज्ञान भवन में सूचना प्रसारण मंत्री अरुण जेटली ने अपने भाषण के दौरान हरियाणवी फिल्म 'पगड़ी' की इस उपलब्धि का विशेष उल्लेख किया।

'पगड़ी द ऑनर' फिल्म ऑनर किलिंग के उस विषय पर है जिसको लेकर अक्सर कुछ न कुछ सुनने को मिलता रहता है। हरियाणा में यह मुद्दा ज्यादा सुर्खियों में रहता है और इस विषय को पहले भी कुछ फिल्मों आदि में दिखाया गया है।यह फिल्म एक गरीब किसान मांगेराम के बेटे राजबीर और एक अमीर की बेटी तान्या की प्रेम कहानी है। राजबीर और तान्या विवाह करना चाहते हैं लेकिन तान्या के पिता रमेश इस विवाह के ख़िलाफ़ हैं। यह देख राजबीर और तान्या घर से भाग जाते हैं। तब रमेश पुलिस में मांगेराम और राजबीर के विरुद्ध शिकायत दर्ज कराता है और पुलिस मांगेराम को गिरफ़्तार कर लेती है। यहां तक मांगेराम को मारा पीटा भी जाता है और इस चक्कर में मांगेराम की पगड़ी गिर जाती है। अच्छे संस्कारों के समर्थक और शरीफ़ मांगेराम अपने इस अपमान को सहन नहीं कर पाते। कहते हैं जब कोई ग़रीब, शरीफ़ और नेक आदमी किसी के विरुद्ध खड़ा हो उठता है तो अच्छे-अच्छे देखते रह जाते हैं। मांगेराम के माध्यम से यही सब इस फिल्म में दिखाया गया है।

इस फिल्म का निर्देशन राजीव भाटिया ने किया है जबकि फिल्म का निर्माण उस वी आर एंटरटेनर्स से किया गया है जिसमें राजीव के साथ उनके माता-पिता शकुंतला भाटिया तथा अशोक भाटिया और उनकी पत्नी वंदना भाटिया भी हैं, यानी पूरा भाटिया परिवार शामिल है। 'पगड़ी' इस बैनर की तो पहली फिल्म है ही वहीं बतौर निर्देशक भी राजीव की यह पहली फिल्म है। राजीव भाटिया इससे पहले एकता कपूर के कई सीरियल की विभिन्न कड़ियों का निर्देशन करने के साथ केतन मेहता और मुकुल एस आनंद जैसे फिल्मकारों की कुछ फिल्मों में बतौर सहायक निर्देशक काम कर चुके हैं।

प्रश्न : **आपकी फिल्म 'पगड़ी' हरियाणवी के साथ हिंदी में भी है। सेंसर ने भी इस फिल्म को हिंदी-हरियाणवी दोनों भाषाओं का संयुक्त प्रमाण पत्र दिया है। ऐसे में क्या आपने कभी सोचा था कि आपकी यह फिल्म सर्वश्रेष्ठ हरियाणवी फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार पाकर एक नया इतिहास बनाएगी।**



उत्तर : जब मैंने फिल्म बनाने का फैसला किया तब मैंने हरियाणवी फिल्म ही बनानी है, ऐसा कुछ नहीं सोचा था। मैं स्वयं हरियाणा के हिसार का रहने वाला हूं और ऑनर किलिंग जैसा संवेदनशील मुद्दा मुझे शुरू से ही परेशान करता रहा है। इसीलिए मुझे लगा कि मुझे इस मुद्दे पर कुछ करना चाहिए। बस मैंने इसी विषय पर फिल्म बना दी और इसे पुरस्कार भी मिल गया। सच तो यह है कि पुरस्कार की उम्मीद नहीं थी और यह तो कभी नहीं सोचा था कि हमारी पहली फिल्म नया इतिहास बनाएगी। लेकिन इतना विश्वास था की फिल्म पसंद जरूर की जायेगी। क्योंकि हमने इस पर बहुत मेहनत की। कला फिल्मों की सबसे बड़ी चुनौती यही होती है कि दर्शक बोर न हों। इसके लिए हमने फिल्म पूरी होने के बाद इसे बहुत से बच्चों को भी दिखाया तो उन्होंने पूरी फिल्म को आराम से देखा। तब हमें तसल्ली हुई कि यह बोर नहीं कर रही है।

आप बरसों से टीवी सीरियल बनाने में जुटे थे और कई बड़े टीवी निर्माताओं के साथ सफलता से काम कर रहे थे फिर अचानक फिल्म निर्माता-निर्देशक बनने का आपने क्यों सोचा ?

जी, मैंने प्रीतिश नंदी के सीरियल 'राज कहानी' से पहली बार स्वतंत्र निर्देशक के रूप में काम शुरू किया था और मैं अब तक 25 सीरियल का निर्देशन कर चुका हूं। जिनमें 11 सीरियल तो एकता कपूर के साथ ही किए जैसे—क्योंकि सास भी, कहीं तो होगा, कसौटी, केसर और कुसुम। फिर धीरज कुमार के साथ 'मायका' और 'बेटियां' सीरियल किए और परेश रावल के साथ 'मैं ऐसी क्यों हूं' तथा केतन मेहता के साथ 'चाचा चौधरी'। एक दिन

मुझे लगा कि यदि मैं ऐसे ही दिन-रात सीरियल ही करता रहूंगा तो फिल्में तो कभी नहीं कर पाऊंगा। तब मैंने सीरियल से ब्रेक लेकर अपनी इस फिल्म बनाने की योजना पर काम शुरू कर दिया।

आपकी यह पहली फिल्म है। इसे बनाते हुए आपको किस तरह की समस्याओं का सामना ज्यादा करना पड़ा?

मुझे फिल्म की पटकथा लिखने में तो ख़ास समस्या नहीं आई। विषय को भी मैं अच्छे से समझता था और तकनीकी अनुभव भी थे। हालांकि पटकथा लिखने में मुझे एक साल लग गया। पर सबसे ज्यादा समस्या मुझे आर्थिक रूप से आई मैंने इसके चलते बहुत से लोगों को अपने इस प्रोजेक्ट के साथ जोड़ने का प्रयास किया लेकिन मेरी पहली फिल्म थी इसलिए कोई साथ देने नहीं आया। एक बार तो मैं हारकर पीछे ही हट गया। तब मेरे माता पिता ने मुझे सहयोग दिया उन्होंने कहा यह पहली फिल्म बना रहे हो तो इसमें हमसे जो भी हो सकेगा करेंगे पर यह फिल्म अब बननी ही चाहिए। फिल्म



पर करीब 50 लाख रुपये की लागत आई है और यह सारा पैसा हम परिवार के चार लोगों ने मिलकर ही जुटाया है।

अब इस राष्ट्रीय पुरस्कार के बाद तो आप सब बहुत खुश होंगे। मैं पुरस्कार समारोह में देख रहा था कि आपकी माता जी तो बहुत खुश और उत्साहित थीं!

जी बिलकुल हम सब बहुत बहुत खुश हैं। राष्ट्रीय पुरस्कार तो हम भारतीय फिल्मकारों के लिए ऑस्कर जैसा है। इससे ऊपर तो कुछ है ही नहीं। हमको शुरुआत में ही सर्वश्रेष्ठ मिल गया, इससे अच्छी बात क्या हो सकती है।

फिल्म की सारी शूटिंग आपने हरियाणा में की है और अधिकांश कलाकार भी हरियाणा के हैं, इसका मतलब शुरू से आपका फ़ोकस सिर्फ़ हरियाणा पर ही रहा!

फिल्म की शूटिंग हरियाणा में ही करनी है, यह पहले नहीं सोचा था। क्योंकि हरियाणा में इतनी शूटिंग करना संभव नहीं लगता था लेकिन विषय हरियाणा का था तो मुंबई या कहीं और बाहर जाकर हम शूटिंग करना नहीं चाहते थे इसलिए बहुत हिम्मत करके हरियाणा में शूटिंग करने का फैसला किया। पर अच्छी बात यह हुई कि इस मामले में हमको सभी का सहयोग मिला। हमने हिसार में ही करीब 10 लोकेशन पर शूटिंग की। जहां तक कलाकारों की बात है तो फिल्म के 30 प्रमुख कलाकारों में 28 पहली बार हमारी फिल्म से ही फिल्मों में पदार्पण कर रहे हैं। सिर्फ़ दो कलाकार यशपाल शर्मा और बलजिंदर कौर ही ऐसे हैं जो पहले भी फिल्में करते रहे हैं। इधर यह भी संयोग रहा कि हमारे सभी कलाकार हिसार से हैं। यूं ऑडिशन में हरियाणा के और क्षेत्रों से भी लोग आए थे लेकिन जिनका चयन हुआ वे सभी हिसार के निकले। सभी कलाकारों को हरियाणा से लेने का मकसद यह था कि जितनी अच्छी हरियाणवी वहां के लोग बोल सकते हैं उतनी और कोई नहीं।

फिर आपने पूरी फिल्म को हरियाणवी भाषा में क्यों नहीं रखा?

उसका कारण यह है कि मैं हकीकत दिखाना चाहता हूं असली ज़िंदगी में भी हरियाणा के लोग अपनी हरियाणवी में बात करते हैं और बाक़ी लोग उनसे अपनी हिंदी में ही करेंगे। फिल्म में जो चरित्र हरियाणा का है वह हरियाणवी बोलता है और जो बाहर का है वह हिंदी लेकिन हमको खुशी है कि हमारी फिल्म को हरियाणवी फिल्म के रूप में पुरस्कार मिला।

आप आगे भी हरियाणवी फिल्म बनाना चाहेंगे या अब सिर्फ़ हिंदी फिल्में ही बनाएंगे ?



मैं एक फिल्मकार हूं। मैं किसी एक भाषा तक बंधकर नहीं रहना चाहता। अपनी इस फिल्म को भी मैंने अंतरराष्ट्रीय स्वरूप के अनुसार बनाया है। यदि आगे हरियाणा से जुड़ा विषय हुआ तो फिर से हरियाणवी भी बना सकता हूं। मैं जब अपनी इस फिल्म को बना रहा था तब मेरे दोस्तों का कहना था कि हरियाणवी में सिर्फ़ फूहड़ फिल्म ही बन सकती है। इसलिए 'पगड़ी' फिल्म मेरे लिए एक चुनौती थी, मैंने फूहड़ता की जगह इतने संवेदनशील मुद्दे को लिया लेकिन हमारी इस फिल्म के बाद मेरे दोस्तों का नज़रिया बदल गया है।

अब अपनी इस फिल्म को लेकर आप क्या सपने देख रहे हैं ?

मैं अभी 'पगड़ी' को रिलीज़ से पहले अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में ले जाने की तैयारी में हूं। जैसे कार्लोवीवारी, बर्लिन, वेनिस और मॉस्को फिल्म समारोह। मुझे उम्मीद है वहां भी लोग इसे पसंद करेंगे। उसके बाद में इसे देश में रिलीज़ करूंगा, पहले हरियाणा में फिर बाक़ी शहरों में। अभी तक लोगों ने ऑनर किलिंग की समस्या को ही दिखाया है पर हमारी फिल्म की ख़ास बात यह है कि हमने इसका हल भी बताया है। राष्ट्रीय पुरस्कार के बाद इस बात की भी संभावना बनती है कि हरियाणा आदि में अब इस फिल्म को कर मुक्त कर दिया जाएगा। फिल्म हरियाणवी के साथ हिंदी में भी है इसलिए लग रहा है 'पगड़ी' को सिर्फ़ हरियाणा में ही नहीं अन्य जगहों पर भी पसंद किया जाएगा। ❑

संपर्क : ई-22, हरी विला, विकास मार्ग, लक्ष्मी नगर, दिल्ली -110092

रागमाला ...

पृष्ठ 27 से आगे

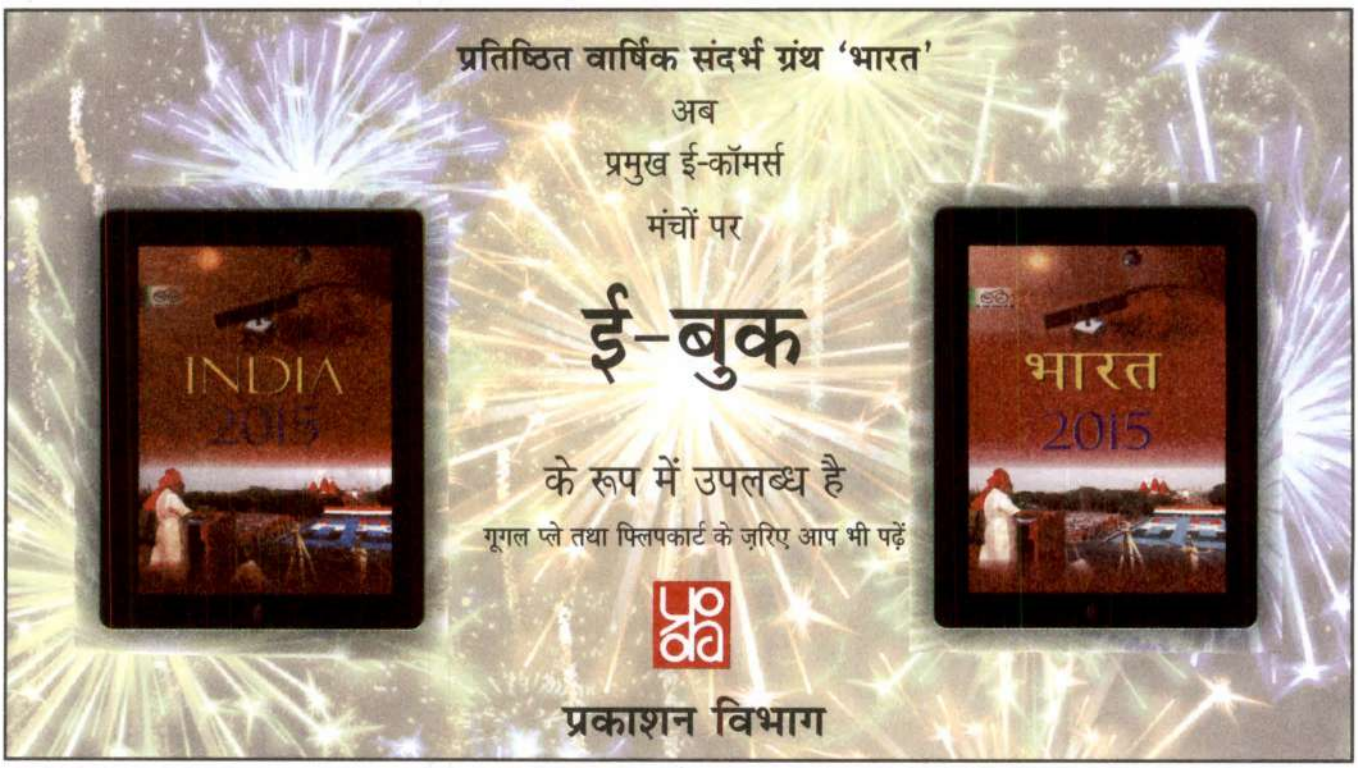
समानांतर विभाजन एक रागात्मकता का आभास कराता है। सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर पता चलता है कि यह चित्र पहले रेखांकित किए गए थे तथा बाद में वैषम्यक (कंट्रास्टिंग) रंगों का प्रयोग कर एक रुचि का प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। आज के कलाकार कंट्रास्टिंग रंगों का प्रयोग करने से प्रायः हिचकिचाते हैं। कला व सौंदर्य की दृष्टि से इन चित्रों में स्थायित्वता (परमानेंट वैल्यू) पाई गई है।

पांच लघुचित्र 16x22 सेंटीमीटर के आकार के तथा जिनकी परिधी एक-सी बनी है, देखने में आए। यह लघुचित्र राग बसंत, मेघ, हिंडोला, वैरावरी रागिनी व सोरठा पर आधारित हैं। इनके एक भाग में कुछ पंक्तियां लिपिबद्ध हैं जो कलाकार का नाम, राग, राग-लक्षण, चित्र बनाने की तिथि व स्थान बताती हैं। अधिकतर लघु चित्रों में किसी न किसी भाग में यह लिखित सामग्री देखी गई है पर यह लिखित भाग भी चित्र का ही एक अंग प्रतीत होता है तथा चित्र की एकात्मकता को भंग नहीं करता। अधिकतर लघु चित्रों में रात्रि के समय का आकाश दिखाया गया है जैसे कांगड़ा शैली के पूर्व बने चित्रों में या फिर फूल, पत्ती आदि की पच्चीकारी। मालवा घराने के चित्रों में नदी-तालाब व इमारतों का चित्रण एक विशेष प्रकार के वातावरण को दर्शाने के लिए किया गया है। सन् 1469-1501 में 'गयास शाह' अपने समकालीन विचारकों से भिन्न मत रखता था। उसने उन कलाकारों को प्रोत्साहित किया जिन्होंने निम्मत-नामा चित्र शृंखला को जन्म दिया। इसमें मुख्य विषय कृष्ण लीला, नायिका भेद, दुर्गापाठ, रागमाला आदि प्रमुख हैं। वैसे तो रागमाला लघुचित्रों का एक लंबा इतिहास है जिसके पीछे मुग़ल सम्राटों का संरक्षण व प्रोत्साहन पूरी तरह देखा जा सकता है। समाजशास्त्रियों व इतिहासकारों की यह धारणा देखने में आई है कि युद्ध व राजनीतिक परिवर्तन कला व कलाकारों के लिए अवरोधक सिद्ध होते हैं परंतु 1500 से 1800 के बीच जो परिवर्तन भारत में हुए विशेषकर राजस्थान व उसके इर्द-गिर्द उसमें एक नया नेतृत्व उभरा जिसने समय-समय पर साहित्य, कला और कलाकारों को प्रोत्साहित किया तथा एक नई चेतना दी। इस काल में सभी प्रकार की कलाओं और उनसे जुड़े कलाकारों का उत्थान हुआ। कलाकारों की कृतियों में पर्शियन व मुग़लकाल की कला का प्रभाव पड़ा। चित्रों में स्त्री, पुरुष की वेशभूषा में जो परिवर्तन आया वह काफ़ी मुखर रूप से देखा जा सकता है। चित्रों में लावण्य के साथ शृंगार रस अधिक उत्कृष्ठ रूप से सामने आया। कहीं-कहीं विलासिता का भाव भी आया परंतु रंगों के चयन में भारतीय मूल तत्वों का प्राधन्य बना रहा, इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उस काल में रंग प्राकृतिक वस्तुओं जैसे पेड़, पत्ती की छाल, मिट्टी, धातुओं की भस्म आदि से प्राप्त किए जाते थे। अतः सीमित थे, पर कलाकारों की कल्पनाशक्ति की सराहना करनी पड़ती है क्योंकि सीमित सामग्री व रंग होने पर भी प्रत्येक राग, रागिनी व राग पुत्र को चित्रित करना एक भगीरथी प्रयास से कम नहीं। कहीं-कहीं तो एक राग व रागिनी पर कई चित्र बनाए जो भिन्न होते हुए भी भाव रस तथा लय में साकार व सफल पाए जाते हैं।

'मालवा' को राजा विक्रमादित्य की राजधानी भी माना गया है। यह मेवाड़, चंबल, मादी बेतवा तथा नर्मदा नदी से जुड़ा है। यहां कृषि व वन संपदा की बहुतायत के कारण संपन्नता पूर्ण रूप से थी इसलिए यहां के लोग ललित कलाओं आदि में रुचि रखते थे और पारंगत भी थे। ऐसा लगता है कि भौगोलिक दृष्टि से संपन्नता के कारण यहां के चित्रों में नदी, तालाब, मोर, इमारतें आदि अवयवों का प्रयोग समुचित रूप से रागमाला लघुचित्रों में किया गया। रागमाला व अन्य भारतीय लघुचित्र संसार के सभी संग्रहालयों में भारत की कला का मान बढ़ा रहे हैं।

❑

संपर्क : 239, आकाश दर्शन, मयूर विहार, फेस-1, दिल्ली-110091



भूकम्पित नेपाल

राजनारायण बिसारिया

'भूमि हमारी माता है
हम पृथिवी के बेटे हैं'
– ये शब्द हमने अगणित बार उचारे!

हमारे सामने जन्मदात्री मां
और धरती में कोई अंतर नहीं रहा
हमने धरती को मां की तरह
सब कुछ सहने वाली कहा!
उसका एक सार्थक पर्याय
हमारे दिलों में घर कर के
बैठा ही रहा–क्षमा!
लेकिन अचानक ये क्या हो गया
कि धरती आवेश में कांपने लगी,
पता नहीं रोष में
होश में या लाचारी में
और ...
शुरू हो गई क्रूरतम विनाश-लीला!

आया प्रलयकारी भूचाल
केंद्र बना
हिम शिखरों की देहरी पर बसा
–नेपाल!

पलक झपकते ढहने लगीं इमारतें
भरभरा कर गिरने लगीं
आश्रयदाता छतें और दीवारें

ऐन निशाने पर बसा गोरखा ज़िला या
उसका बरपाक गांव अकेले नहीं थे प्रताड़ित
इस विनाश-कांड में
गांव के गांव, क़स्बे और नगर
तहस-नहस होकर
खंडहरों में बदलने लगे
टूटती, बिखरती, सरपट लुढ़कती चट्टानों ने
अधिक ही दबोच लिया
निर्दोष निर्भय ज़िंदगी को
दबाकर छोड़ दिया ज़िंदा शरीरों को
मलबे की क़ब्रों में।

जगह-जगह
घायल आह, कराह
चीख़-पुकार, रक्त-रंजित, असहाय!
ऐसा भूडोल आया कि पर्वतों के
सुरम्य परिवेश पर मौत की छाया!
हज़ारों मृत, हज़ारों घायल
लाखों लापता
लाखों बेघरबार, लाचार!
दिल और दिमाग़
दोनों ही
मार्मिक और आर्थिक पीड़ाओं में ग्रस्त
रोगों की आशंकाओं से ग्रस्त
छिन्न-वेश
पूरा देश!

लेकिन आकाश साक्षी है कि
प्रताड़ितों को छोड़ा नहीं गया अकेला
मीडिया ने तत्काल अपना काम किया
ख़बर फैली और उसी पल
संवेदना में डूब गया सारा भूमंडल!

पड़ोसी दौड़े तुरंत
भारत को लगा जैसे घर में ही हुआ है हादसा
हर क्षण हर जगह सहयोगी!
दौड़ते आए दूर-दूर तक के देशों से
स्वयंसेवी
बरस पड़ी विश्वभर की
मददगार शोकाकुल कामनाएं!

देखते-देखते
समवेत राहत के संसाधन
जूझने लगे विनाश के अवशेषों से
निकलने लगे बाहर, दबे-ढके शव
मृतप्रायः देहें, अंतिम सांस गिनते शरीर!
ऐसे करिश्मे भी काफ़ी कुछ हुए
कि अबोध किलकारी लौटी
और मौत के जबड़ों से
सुरक्षित निकाल ली गई जीवंत ज़िंदगी!
पहली बार नहीं आई थी ऐसी
प्राकृतिक आपदा
ऐसा शुरू से बार-बार होता आया है
लंबी कहानी है
मूल में कभी पृथ्वी का कंपन है
कभी आग है
कभी बाढ़ का पानी है!

और भी मूल में
विश्वंभरा धरती का सीमातीत दोहन है
प्रगति के नाम पर
प्रकृति का खुले आम शोषण है!

क्यों न हम अब
कुछ अलग तरह से सोचें
ऐसी योजनाएं लाएं
जो प्रकृति के रास्ते में न आएं!

धरती को ही नहीं
पूरी प्रकृति को
अपने सहज लय-क्रम में चलने दें
उन्हें दुश्मन नहीं, दोस्त बनाएं
उन्हें भी साथ लेकर चलें
उन्हें भी
प्रगति के पथ पर अपनी वैज्ञानिक
उपलब्धियों के फूल-फल चखाएं!

इस सबके बाद ही
चंद्रमा पर
जाने लौट आने की बात करें
पहले सुरक्षित हो लें
फिर 'मंगल' मनाएं!

संपर्क : 6489, सेक्टर-बी, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

कहानी

हारमोनियम वाला डाक्टर

राधेश्याम तिवारी

"इतना सवेरे हाथ में कुछ लिए वह कौन आ रहा है!"

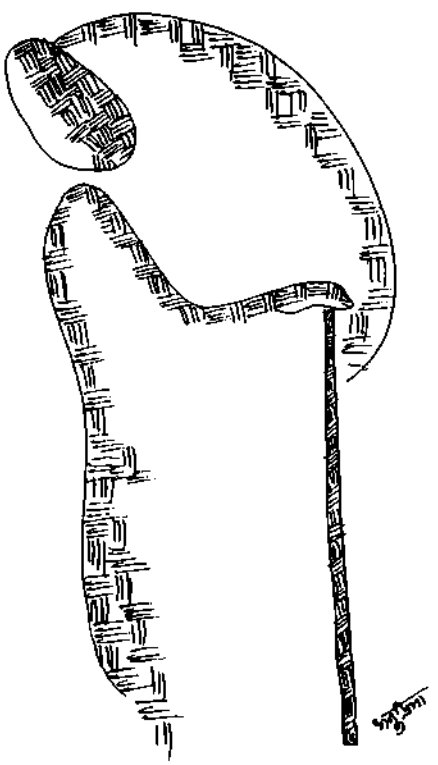
दरवाज़े पर बैठे-बैठे कुन्नू बाबू ने सोचा। अप्रैल का महीना होने के कारण दिन बड़ा होने लगा था। सुबह चार बजे ही कुन्नू बाबू की नींद खुल जाती है। नित्यक्रिया से निबटने के बाद नहा-धोकर वे घर के दरवाज़े पर बैठ जाते और कबीर के दोहे अपनी बेसुरी आवाज़ में गाने लगते–

खाली साधु न बिदा करूं, सुन लीजै सब कोय
कहै कबीर कुछ भेट करूं, जो मेरे घर होय।

आस-पड़ोस के लोग यह जान जाते कि कुन्नू बाबू की यह दिनचर्या वहां के लोगों के लिए अलार्मघड़ी का काम करती। चाहे कुछ हो जाए, लेकिन उनके सोने-जागने के समय में कोई परिवर्तन नहीं होता। उनके बैठने का भी एक निश्चित स्थान है, जहां और भी कुर्सियां लगी रहती हैं। उनका घर कबीरपुर गांव के बिलकुल शुरू में और ऊंची जगह पर है। गांव में आने का मुख्य मार्ग भी उधर से ही है। इससे गांव में आने वाले राहगीर दूर से ही दिख जाते हैं। 80 वर्षीय कुन्नू बाबू का नाम केदर भगत है। मगर पूरा इलाका उन्हें कुन्नू बाबू के नाम से ही जानता है। क्षेत्र में कुशवाहा लोगों की संख्या सबसे अधिक है। इस समाज के कुछ बुजुर्ग अपने टाइटल में भगत भी लगाते हैं। कुन्नू बाबू की आंखों की रोशनी मद्धिम है, फिर भी चश्मे से वे मोटे अक्षरों को पढ़ लेते हैं। निकट आने पर आगंतुक ने जब उनके पांव छुए तो कुन्नू बाबू ने कहा–"अरे वागीश तुम! बंबई से कब आए बेटा...?"

"अब तो आना-जाना लगा ही रहता है, चाचा जी। बंबई जाना मजबूरी है–पत्नी और बेटा वहीं हैं।" वागीश ने कहा।

"अनुराग बाबा की अनुपस्थिति बहुत



खल रही है। मैं तो पूरी तरह अकेला हो गया हूं... वे मुझसे 10 वर्ष बड़े थे, लेकिन हम लोग हर दूसरे-तीसरे दिन मिल ही लेते थे। उनके बिना मेरा मन नहीं लगता था और मेरे बिना उनका ख़ैर। छोड़ो, यही जीवन का सत्य है। मैं ही अब कितने दिन का मेहमान हूं...।" यह कहते हुए कुन्नू बाबू की आंखें गीली हो गईं। उनके पास पड़ी कुर्सी पर बैठते हुए कुछ देर रुककर वागीश ने कहा–"मृत्यु के बारे में बहुत नहीं सोचना चाहिए। इससे आदमी कमज़ोर होता है। और फिर जो काम बिना सोचे ही हो जाए उसके बारे में सोचकर अमूल्य समय नष्ट करने का क्या औचित्य है। मृत्यु को जब आना है आ जाएगी, उसके आने से पहले ही जीवन में ख़लल डालने के लिए उसे क्यों याद करें...।"

"मैं अपने विचार को मूर्त रूप देने आया हूं।"

"पहले तुम्हारे विचार का पता तो चले।" कुन्नू बाबू ने कहा। तभी अपने हाथ में ली हुई वस्तु वागीश ने कुन्नू बाबू की ओर बढ़ाई।

"चश्मा लाना तो..." कुन्नू बाबा ने घर की ओर मुंहकर आवाज़ लगाई। उनकी बहू चश्मे का केस और वागीश के लिए पानी का गिलास देकर चली गई। कुन्नू बाबू ने चश्मा लगाकर देखा तो वह रसीद बुक थी। उस पर लिखा था–'अनुराग गिरी हृदयरोग अस्पताल निर्माण समिति'।

"अनुराग बाबा का निधन हृदयाघात से ही हुआ था। उनके नाम पर यहां अस्पताल खुले, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है, लेकिन यह होगा कैसे..."कुन्नू बाबू ने चिंता व्यक्त की।

"आप जो कर सकते हैं कीजिए, बाकी मुझपर छोड़ दीजिए। मदनमोहन मालवीय ने अगर यही सोचा होता तो आज बनारस में हिंदू विश्वविद्यालय नहीं होता। मैं आज भी यह मानता हूं कि देने वालों की कमी नहीं है, लेने वाले सुपात्रों की कमी है और फिर हमारे सामने सबसे बड़े उदाहरण तो अनुराग गिरी बाबा थे, जिन्होंने अनाथ बच्चों के लिए इतना बड़ा यह आश्रम निर्मित किया...।" वागीश ने कुन्नू बाबू की ओर विश्वास के साथ देखते हुए कहा।

"तो कहो, मैं क्या कर सकता हूं?"

"आप बहुत कुछ कर सकते हैं। आप जो कुछ भी करेंगे वही मेरे लिए बहुमूल्य होगा और उससे मेरा आत्मबल भी बढ़ेगा।"

"हां, तो बोलो ना!" कुन्नू बाबू ने ज़ोर देकर कहा। तब तक उनकी बहू चाय रखकर चली गई।

"आश्रम के पास आप की पांच एकड़ ज़मीन है। आप उसे अस्पताल के लिए दे दीजिए।" वागीश ने चाय की चुस्की लेते हुए कहा। यह सुनकर कुन्नू बाबू गंभीर हो गए। इलाके में कुन्नू बाबू की सबसे अधिक ज़मीन है। उन्होंने कॉलेज के लिए भी कई एकड़ ज़मीन दान में दी थी। कबीरपंथी होने के कारण उस कॉलेज का नाम कबीर डिग्री कॉलेज रखा था, जो आज यहां के बच्चों के लिए वरदान साबित हो रहा है। बच्चों को पढ़ने के लिए अब दूर नहीं जाना पड़ता है।

"लेकिन यह ज़मीन तो मैंने कबीर धर्माश्रम के लिए छोड़ रखी है...।" कुन्नू बाबू ने कुछ देर सोचकर कहा। हालांकि अनुराग गिरी अनाथ आश्रम को भी उनका भरपूर सहयोग मिलता है।

"अस्पताल बनवाना तो उससे भी बड़ा मानव कल्याण का काम है।" यह सुनकर कुन्नू बाबू फिर

गंभीर हो गए।

"अनुराग बाबा के नाम पर मैं कुछ भी करने को तैयार हूं।" कुछ देर सोचकर उन्होंने कहा।

"एक निवेदन आपसे और है।"

"अब क्या!" कुन्नू बाबू ने हंसते हुए कहा।

"अस्पताल का शिलान्यास आप के हाथों होगा तो मुझे दोहरी खुशी होगी। इससे गिरी बाबा की आत्मा को भी शांति...।" वागीश अपनी पूरी बात कह न सके और बीच में ही उनकी वाणी बर्फ बनकर कंठावरोध करने लगी। कुन्नू बाबू भी खड़े हो गए। वागीश जब चलने को तैयार हुए तो जाते समय वागीश ने उनके फिर पांव छुए। कुन्नू बाबू के यहां से लौटते हुए वागीश को अपना अतीत याद आया।

दो वर्ष पूर्व डा. वागीश को कौन नहीं जानता था! बंबई में उनके जैसा हृदय-रोग विशेषज्ञ कोई दूसरा नहीं था। उनकी ख्याति इतनी बढ़ गई थी कि अमेरिका जैसे विकसित देशों में भी वे बुलाए जाने लगे थे। दिल्ली के एम्स में महीने में छह दिन उनका आना तय था। मेडिकल के छात्र उनको चलती-फिरती लाइब्रेरी मानते थे। वे जब भी एम्स आते तो उनके साथ चिकित्सकों की एक टीम होती थी। वे चिकित्सा को एक पवित्र कर्म मानते हैं और व्यवसाय से जोड़कर देखने वाले चिकित्सकों को इस पेशे का दुश्मन। उनकी नज़रों में चिकित्सक केवल चिकित्सक होता है। वह किसी का अपना या पराया नहीं। उसके जीवन का चरम लक्ष्य रोगी को राहत देना है। वे यह भी मानते हैं कि जो चिकित्सक निर्लोभी, पवित्र और मनुष्यता का पक्षधर होता है, उसकी दवा में दुआ का असर होता है। ऐसे चिकित्सक के पास रोगी रोते हुए आते हैं और हंसते हुए जाते हैं। हालांकि कुछ लोग डा. वागीश को सिनिकल भी मानते हैं। इसका मुख्य कारण उनका विचित्र व्यवहार है। वे अक्सर अपने क्लिनिक में मरीज़ों को देखते-देखते कुर्सी छोड़कर उठ जाते और दूसरे कमरे में जाकर हारमोनियम बजाने लगते। उस समय उनके कमरे में कोई नहीं जाता। फिर अचानक उस कमरे से निकलकर वे क्लिनिक में आ जाते और रोगियों को देखने लगते। उनके इस व्यवहार से उनका एक नाम हारमोनियम वाला डाक्टर भी पड़ गया था। डा. वागीश का एक बेटा है जो अभी पांचवीं कक्षा में है। पत्नी भी चिकित्सक हैं जो जसलोक अस्पताल में हैं। धर्म से वह ईसाई हैं जबकि डा. वागीश जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, हिंदू हैं। घर में एक दाई है जिसका नाम फ़ातिमा है। उसी के ऊपर बच्चे की देख-भाल और घर की साफ़-सफ़ाई की ज़िम्मेदारी है। दाई भी घर की सदस्य जैसी ही है। डा. वागीश जब मंदिर जाते तो साथ में पत्नी और बच्चा भी होते और पत्नी जब चर्च जातीं तो साथ में डा. वागीश भी जाते। धर्म को लेकर उनमें कहीं कोई समस्या नहीं आई। हां, घर में किसी देवी-देवता की तस्वीर नहीं है अगर तस्वीर है तो अनुराग गिरी की। उसमें बच्चों से घिरे गिरी बाबा मुस्कुरा रहे हैं। उस तस्वीर में करीब 10 वर्ष के वागीश भी हैं। वह तस्वीर उनके शयन कक्ष में है। इसलिए सोते-उठते वे सबसे पहले उस तस्वीर को ही निहारते हैं।

डा. वागीश अनुराग गिरी को 'बाबा' कहकर संबोधित करते। वे आश्रम के सभी बच्चों के बाबा हैं, लेकिन एक दिन अचानक उन्हें जब सूचना मिली कि अनुराग गिरी यानी उनके बाबा बहुत बीमार हैं और दिल्ली के एम्स में भर्ती हैं तब वह परेशान हो गए और उसी दिन फ्लाइट से वे दिल्ली आ गए। हालांकि इस बीच उनका विदेश जाने का कार्यक्रम पहले से तय था, लेकिन उन्होंने बाकी कामों को दरकिनार कर एम्स जाना जरूरी समझा। वे एम्स गेट पर अभी पहुंचे ही थे कि किसी ने उन्हें नाम लेकर पुकारा। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो कुन्नू बाबू थे। उन्हीं से उन्हें जानकारी मिली कि गिरी बाबा का निधन हो गया है। कुन्नू बाबू ने यह भी कहा कि उन्हीं के लिए वे रुके हुए थे। शाम गहराने लगी थी। कुन्नू बाबू को रात की ट्रेन से मैरवा अनाथ आश्रम निकलना था। उन्होंने जाते-जाते यह भी बताया कि आश्रम में ही गिरी बाबा की समाधि बनेगी। कुन्नू बाबू के जाने के बाद डा. वागीश को एक-एककर अपना अतीत याद आने लगा था।

मैरवा का अनुराग गिरी अनाथ आश्रम ही उनका घर था। कहते हैं कि किसी महिला ने रात्रि में आश्रम के बाहर नवजात को छोड़ दिया था। गिरी बाबा ने जब बच्चे के रोने की आवाज़ सुनी तो बाहर आकर उन्होंने उसे देखा। उसे उठाकर उन्होंने आश्रम में काम करने वाली एक महिला को सौंपते हुए कहा, "इसे संभालो। इसका नाम आज से वागीश होगा।" वागीश जब मेडिकल की पढ़ाई के लिए विदेश जाने लगे थे तभी शांति देवी नामक महिला ने अपना शेष जीवन आश्रम की सेवा में बिताने की इच्छा जताई। वह विधवा हैं और पास के गांव के केशव तिवारी की भाभी लगती हैं और निःसंतान हैं। ग़रीब परिवार की होने के कारण उनकी शादी एक ऐसे व्यक्ति से कर दी गई थी जो न सिर्फ़ उम्र में उनसे दोगुना बड़ा था बल्कि रोगी भी था। शादी के कुछ ही समय बाद शांति देवी विधवा हो गईं। उसके बाद ससुराल के लोग भी उन्हें प्रताड़ित करने लगे। अंत में उन्होंने निर्णय लिया कि वह अपना शेष जीवन आश्रम में अनाथ बच्चों की सेवा में बिताएंगी। गिरी बाबा ने उन्हें आश्रम में सेवा का अवसर दिया। आश्रम के बच्चे उन्हें अम्मा जी कहते। आश्रम में अधिकांश ऐसे परिवारों के बच्चे हैं जो असहाय हैं। उन्हें पढ़ाने से लेकर हर तरह की जरूरत की पूरी ज़िम्मेदारी आश्रम की होती। कुछ बच्चे ऐसे भी हैं जिनके माता-पिता का कुछ पता नहीं है। ऐसे तमाम बच्चों की मां शांति देवी हैं और बाबा स्वामी अनुराग गिरी। वैसे तो गिरी बाबा का सभी बच्चों पर समान स्नेह था, लेकिन वागीश के प्रति उनके मन में विशेष स्थान शुरू से रहा। वागीश जब कुछ बड़े हो गए तो उन्हें पढ़ाने वाले शिक्षकों में कुन्नू बाबू के सबसे बड़े सुपुत्र भी थे। वे आज भी आश्रम में बच्चों के लिए प्रति दिन एक घंट समय देते हैं। इन दिनों वे कबीर डिग्री कॉलेज के प्रिंसिपल हैं। आगे की पढ़ाई के लिए गिरी बाबा ने जब वागीश को बनारस भेजा था उस समय उनकी पढ़ाई का पूरा खर्च कुन्नू बाबू ने ही वहन किया था। तब कुन्नू बाबू को भी वागीश में कुछ विशेष नज़र आया था।

उन्हें याद है। एक बार मैरवा के उस अनाथ आश्रम में डा. राजेन्द्र प्रसाद भी आए थे। उनका परिचय कराते हुए गिरी बाबा ने कहा था—"ये बहुत त्यागी जीव हैं। यहीं पास के जीरा देई के रहने वाले हैं। इनके प्रताप का ज्ञान तुम लोगों को बड़ा होने पर होगा"। मैंने देखा कि राजेंद्र बाबू ने आश्रम में आते ही गिरी बाबा के पांव छुए और कहा—"आप देश और समाज की बड़ी सेवा कर रहे हैं।" यह सुनकर गिरी बाबा की आंखें खुशी से नम हो गईं। कुछ समय बाद जब वे देश के राष्ट्रपति बने तो राष्ट्रपति भवन में उन्होंने गिरी बाबा को भी बुलाया था। उनमें गिरीश भी थे। उन्होंने उनके गालों को सहलाते हुए कहा था—

"बबुआ, खूब पढ़ के देश के महान नागरिक बन और देश के सेवा कर...।" गालों पर उनके हाथों के स्पर्श से ऐसा लगा मानो लोहे को पारस मणि का स्पर्श हो गया हो। राजेंद्र बाबू के साथ वाली यह तस्वीर आज भी गिरी बाबा के आश्रम में मौजूद है। वागीश को एक दिन गिरी बाबा ने ही कहा था कि जब उन्हें मेडिकल की पढ़ाई के लिए विदेश जाना था तो उन्होंने कई लोगों से सहयोग मांगा था। उनमें एक महिला भी सहयोग के रूप में अपना गहना देने चली आई थी। जब बाबा ने उन्हें लेने से इनकार किया तो वह फूट-फूटकर रोने लगी थी। आख़िर गिरी बाबा को उसका दिया दान स्वीकारना पड़ा। उन्होंने स्पष्ट तो कुछ नहीं बताया, लेकिन उनका संकेत था, हो सकता है वह महिला तुम्हारी मां हो।

विदेश से लौटने के बाद वागीश की मुंबई के जसलोक अस्पताल में पहली ज्वाइनिंग हुई थी। उन्होंने जब ज्वाइन किया तभी डा. एलिजा से उनका परिचय हुआ और वह बढ़ते-बढ़ते शादी तक आ पहुंचा, लेकिन बिना बाबा के आदेश के वह शादी नहीं कर सकते थे। सो वे मैरवा आश्रम गए। उस समय गिरी बाबा अस्वस्थ थे।

"तुम्हे देखकर मेरी बीमारी ग़ायब हो गई।" वागीश ने जब गिरी बाबा के पांव छुए तो उन्होंने हर्षित मन से कहा।

"आप मेरे साथ बंबई चलिए। मेरे पास रहेंगे तो मेरी देख-रेख में रहेंगे।" वागीश ने कहा।

"बेटा, अब आश्रम की चिंता मुझे कुछ ज्यादा ही सताने लगी है। मैं सोच नहीं पा रहा हूं कि मेरे बाद इस आश्रम के बच्चों को कौन देखेगा!"

"आप इसकी चिंता छोड़िए। पहले स्वस्थ हो जाइए, फिर इसकी व्यवस्था हो जाएगी।" वागीश की बातें सुनकर गिरी बाबा कुछ गंभीर हो गए। थोड़ी देर बाद वागीश ने जब अपनी शादी की चर्चा चलाई तो बाबा इतने खुश हुए कि उनकी आंखों में आंसू आ गए। वहां उपस्थित शांति अम्मा की भी आंखें खुशी से छलछला गईं लेकिन बाबा को जब यह पता चला कि जिनसे वागीश शादी करना चाहते हैं वह ईसाई महिला हैं तो उन्होंने कहा—"ये धार्मिक सीमाएं मनुष्य को छोटा करने का काम करती हैं। इसीलिए तुम बिना इसे सोचे शादी कर लो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है...।"

एम्स गेट के पास बैठे-बैठे वागीश ने यह निर्णय लिया कि वह अब अपने जीवन का अधिकांश समय आश्रम में ही बिताएंगे और बीच-बीच में बेटे और पत्नी से मिलने बंबई भी जाते रहेंगे। उसके बाद वागीश ने अस्पताल की नौकरी छोड़कर अपना शेष जीवन दान दे दिया आश्रम को। वहीं उन्होंने यह भी संकल्प लिया कि गिरी बाबा के नाम पर वे एक चेरीटेबल अस्पताल खोलेंगे और क्षेत्र के लोगों की सेवा करेंगे।

आज अस्पताल का शिलान्यास है। कुन्नू बाबू शिलान्यास करने आए हैं। इस अवसर पर एक मंच भी बना है, जिस पर चार कुर्सियां लगी हैं। एक कुन्नू बाबू के लिए, दूसरी जिलाधिकारी मृदुल सिन्हा के लिए, तीसरी शांति अम्मा के लिए और चौथी कुर्सी डा. वागीश के लिए। दाईं ओर एक और कुर्सी लगी है जिस पर अनुराग गिरी की तस्वीर रखी गई है। बाईं ओर स्पीकर स्टैंड है जिस पर वक्ता अपने विचार रखेंगे। क्षेत्र के लगभग सभी प्रतिष्ठित लोग आ चुके हैं। बारी-बारी से प्रमुख लोगों ने गिरी बाबा को पुष्पांजलि दी। आज के दिन गिरी बाबा का जन्म दिन भी आश्रम में मनाया जाता है। इसी अवसर पर शिलान्यास का आयोजन रखा गया। कुन्नू बाबू ने पहले ही यह कह रखा है कि वे गिरी बाबा के बारे में कुछ नहीं बोल पाएंगे। वे इसी शर्त पर आए भी। हालांकि क्षेत्र के गणमान्य लोगों ने गिरी बाबा से जुड़े अनेक संस्मरण सुनाए। अम्मा ने भी कुछ नहीं कहा। जिलाधिकारी के बोलने के बाद वागीश बोलने के लिए खड़े हुए—

"माताओ, देवियो एवं सज्जनो! गिरी बाबा के बारे में मैं क्या बतलाऊं। हमारे बीच कुन्नू बाबू हैं उनके सामने गिरी बाबा के बारे में कुछ कहना धृष्टता होगी। बस मैं इतना ही कह सकता हूं कि आज मैं जो कुछ भी हूं उन्हीं की बदौलत हूं। मेरे ऊपर उनका इतना ऋण है कि मैं जीवन-भर उससे उऋण नहीं हो सकता। सच कहूं तो यहां के एक-एक लोगों का मैं क़र्ज़दार हूं। आश्रम समाज के सहयोग से ही चलता है और इसी आश्रम से मुझे ज़िंदगी मिली है। उसी का ऋण अस्पताल का निर्माण करवाकर मैं उतारना चाहता हूं लेकिन इस समाज से मुझे कुछ शिकायत भी है। मैं नहीं जानता कि मेरी मां कौन और कहां है लेकिन इसके लिए मैं उसे नहीं, इस समाज को दोषी मानता हूं..." डा. वागीश ने अभी अपनी बात पूरी भी नहीं कि थी कि केशव तिवारी बीच में ही उठ खड़े हुए और चिल्ला पड़े, "यह शिकायत नहीं समाज के प्रति कृतघ्नता है। पहले अपने गिरेबान में झांककर देखो...।"

"चुप हो जाइए पंडित जी। जब कोई बोल रहा हो तो बीच में बोलना अशिष्टता और मूर्खतापूर्ण व्यवहार है।" कुन्नू बाबू ने डांटते हुए कहा। केशव तिवारी उनकी डांट से तुरंत शांत हो गए।

"तो ... मैं फिर कह रहा हूं कि इस समाज से मुझे शिकायत है। तिवारी जी ने ठीक कहा कि मुझे अपने बारे में सोचना चाहिए, लेकिन मैं तिवारी जी से ही यह पूछना चाहता हूं कि क्या व्यक्ति समाज की इकाई नहीं है? अगर मैं यह कहते हुए शर्मिंदगी महसूस करता हूं कि मुझे अपने मां-बाप का पता नहीं है तो क्या यह शर्मिंदगी समाज की नहीं है? जिस समाज में लड़कियों की शादी दहेज के बिना नहीं होती, ऐसे में अगर किसी कुंवारी मां से कोई संतान पैदा हो जाती है तो क्या उसके लिए समाज जवाबदेह नहीं है। अपने को कुलीन कहने वाले लोगों को डूब मरना चाहिए कि वे दहेज को अपनी प्रतिष्ठा का विषय बनाते हैं और गर्व से कहते हैं कि वे सभ्य हैं। अगर यही सभ्यता है तो फिर असभ्यता क्या है! भ्रूण-हत्या के विरोध में बोलने वाले लोग सिर्फ दहेज जैसी बुराई को मिटा दें तो भ्रूण-हत्या आप से आप समाप्त हो जाएगी। आज मेरी मां जहां भी होगी क्या मुझे भूल पाई होगी..." वे कहते-कहते अचानक रुक गए और रो पड़े। सभा स्थल में सन्नाटा और उदासी छा गई। लोगों ने देखा कि शांति अम्मा भी वागीश से लिपटकर बेतहाशा रोने लगी हैं। दूसरे दिन अख़बार में अस्पताल के शिलान्यास की ख़बर थी और कुन्नू बाबू के हवाले से यह रहस्योद्घाटन किया गया था कि—"हारमोनियम वाले डाक्टर की पढ़ाई के लिए अपना गहना आश्रम में दान करने वाली कोई और नहीं, बल्कि शांति अम्मा ही हैं।

❑

संपर्क : डी-70, गली, नंबर 4, अंकुर एन्क्लेव, करावल नगर, दिल्ली-110094

कृपया ध्यान दें

चंदा भेजने और चंदे के बारे में पूछताछ के लिए अथवा पत्रिका प्राप्त न होने की स्थिति में कृपया वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक से सीधे संपर्क करें।

पता :

वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

कमरा नं. 48-53, सूचना भवन सी.जी.ओ. कॉम्प्लैक्स, लोधी रोड,

नई दिल्ली-110003

ई-मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

उज़बेकिस्तान में भक्ति साहित्य का अध्ययन

उल्फ़त मुखीबोवा

भक्ति साहित्य भारतीय जनता के हर एक भाषा में विद्यमान है। इस साहित्य का अध्ययन रूस और यूरोप के देशों में 20वीं सदी के बीच में शुरू हुआ था। रूस में भक्ति साहित्य के सगुण भक्ति में कृष्ण भक्ति के प्रसिद्ध कवि सूरदास के कृतित्व का न.म. साजानोवा, यु. व. सवेतकोव की तरफ़ से और रामभक्ति में तुलसीदास के कृतित्व का यु.व. सवेतकोव तथा निर्गुण भक्ति में कबीर के कृतित्व का न. गाफ़ुरोवा की तरफ़ से अध्ययन हुआ था और इनकी किताब भी छप चुकी हैं। दक्षिण भक्ति साहित्य में मराठी साहित्य का भक्त-कवि नामदेव पर ग. सतरेलकोवा ने काम किया और इनकी भी किताब कई साल पहले छप कर आई। रूसी विद्वान के हिंदी साहित्य पर लिखी किताबों या लेखों में भी भक्ति-काल के बारे में कुछ विचार भी प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें मीराबाई, दादूदयाल, रसखान और रहीम तथा दक्षिण के तमिल भक्ति में अल्वर भक्तों के बारे में भी कुछ जानकारी मिल सकती है।

उज़बेकिस्तान में भक्ति-साहित्य का अध्ययन बीसवीं सदी के बीच में शुरू हुआ और यह अध्ययन वार्ता साहित्य से शुरू हुआ और वह था सतरहवीं सदी के 'चौरासी वैष्णवण की वार्ता' पर आधारित मेरा पी.एच-डी. का शोध कार्य। इस शोध कार्य के बारे में मैंने सोचा था कि भक्ति-साहित्य ही वार्ता साहित्य है लेकिन, बाद में मुझे पता चला कि (भक्ति-साहित्य में) पूरे भारत में हज़ारों भक्त-कवि हैं जिनके बारे में हमें अभी तक कोई जानकारी नहीं है। इस साहित्य को और गहराई से अध्ययन करने के लिए मैं सन् 2010 में भारत में 5 महीने की कुशलता बढ़ाने के कोर्स में गई। वहां जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में काम करने लगी। इस अध्ययन के समय मुझे भक्ति साहित्य के अन्य प्रतिनिधियों के बारे में जानकारी मिली और एक-एक करके भक्ति साहित्य के कई दूसरे, रंग-बिरंगे पृष्ठ मेरे सामने खुलने लगे। इससे मुझे यह समझ में आया कि भक्ति आंदोलन से इंसान पर (हृदय पर) जो प्रभाव पड़ा जिससे समाज में भक्ति के तरह-तरह के रास्ते सामने आए, जैसे दक्षिण में अप्पर का शिवभक्ति, रज्जब जी गुरुभक्ति, आनंदधन का 'एकला चलो' और 'निज आनंद', रामालिंगम स्वामी का 'ज्योति के साधक' होना, मलूकदास का मानव की सेवा भक्ति तथा भिन्न-भिन्न जैन भक्त लोग भी रहे, जो जैन धर्म की उन्नति के रास्ते में लगे रहे।

ये सारे भक्त और संत लोग बाबरी बादशाहों के सलतनत (मुग़ल सम्राज्य) में रहते और अपनी भक्ति का गुन-गान करते थे। सूत्रों से यह भी पता चला कि हर एक बाबरी बादशाह का अपना-अपना मनपसंद भक्त या संत हुआ करता था जिनके साथ वे हमेशा धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर वार्तालाप करते थे। भक्ति का प्रभाव औरंगज़ेब तक पड़ा। औरंगज़ेब कट्टर होते हुए भी भक्त और संतों के साथ मिलनसार था और अपनी रुचि की समस्याओं पर उनके साथ विचार-विमर्श भी करता था। इसका एक अच्छा उदाहरण बलदेव वंशी की 'मलूकदास' नामक पुस्तक में मिला। वहां औरंगज़ेब की संत मलूकदास के साथ निर्गुण और सगुण भक्ति पर बातचीत लिखी गई है। इस तरह के उदाहरण मुझे हर एक बाबरी बादशाह में मिले।

भक्तों के साथ संबंध रखने में बादशाह अकबर का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय था, जो जैन भक्तों के साथ भी, कृष्ण भक्तों के साथ भी लगातार मिलते रहते थे। 'वार्ता साहित्य' में अकबर के सूरदास और कुंभदास के साथ मुलाक़ात के बारे में जानकारी मिली। सूत्रों से बादशाह अकबर का जैन भक्तों के साथ अच्छी दोस्ती के बहुत अच्छे उदाहरण मिले। हिरविजयसुरि, विजयसेनसूरि, शांतिचंद्रसूरि, भानुचंद्रसुरि जैसे जैन भक्त अकबर के दरबार में थे और अकबर ने उन्हें काफ़ी ऊंचे स्तर के पदों पर रखा था। जैन धर्म की उन्नति के लिए उन्हें सारी सुविधाएं मिलती थीं। अकबर की तरफ़ से उनको कई तरह की उपाधि भी मिलती रहती थी। जैसे सलतनत की अच्छी सेवा के लिए हिरवजयसुरि को 'जगदगुरु' की, 300 ब्राह्मणों को वाद-विवाद में जीतने के लिए विजयसेनसुरि को 'सवाई हिरवजयसुरि' की तथा धार्मिक सिद्धांतों की अच्छी जानकारी के लिए सिद्धिचंद्रसुरि को 'ख़शफ़हम' की उपाधि दी गई थी। 'आइन-ए-अकबरी' में भी उच्च स्तर के विद्वानों की सूची में हिरवजयसुरि, विजयसेनसुरि, भनुचंद्रसुरि जैसे भक्तों के नाम शामिल किए गए थे।

अकबर के लिए हर एक धर्म अपना धर्म जैसा था। उदाहरण के लिए जैन धर्म के अहिंसा को अमल में लाने के लिए अपनी सलतनत में साल में छः महीने तक जानवरों का गोश्त खाना मना कर दिया था। दशहरा, दीपावली, होली जैसे त्योहारों में बड़ी रुचि के साथ भाग लेता था।

दूसरा उदाहरण, जहांगीर बादशाह के समय का जिसके दरबार में भी जैन धर्म की उन्नति पर अलग-सा ध्यान दिया जाता था। इसका एक अच्छा उदाहरण है कि जैन भक्तों में से सत्यविजयजी, यशोविजयजी, बिजयानंदसुरि, आनंदधन जैसे जैन भक्त जहांगीर के सौजन्य में रहते थे। इनमें से विजयदेवसुरि से बहुत प्रभावित होकर जहांगीर ने उन्हें 'जहांगीरी महातापा' की उपाधि दी थी। इस तरह भक्ति साहित्य से संबंध सूत्रों से पता चलता है कि भक्ति आंदोलन में कृष्ण-भक्ति एवं राम-भक्ति के अलावा जैन भक्ति की भी काफ़ी उन्नति हुई। वे भी बाबरी सलतनत में, बाबरी बादशाहों के साथ अच्छे व्यवहार में रहकर, भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर अपने जैन धर्म को सुदृढ़ करने में लगे रहे थे। बाबरी बादशाहों ने भक्ति पर बड़ी रुचि दिखाई और हर एक धर्म के भक्तों का हमेशा समर्थन देते रहे।

भक्ति आंदोलन में रज्ज्जब जैसा गुरुभक्त, मलूकदास जैसा मानवता की सेवा में लगे, आनंदधन जी जैसा 'निज आनंद' और 'एला चलो' के रास्ते से चलने वाला तथा रामालिंगम स्वामी की तरह 'ज्योति के साधक' होकर रहनेवाला भक्त और संत मध्यकालीन भारतीय साहित्य के सबसे उच्च स्तर के कवि और भक्त इनसान समझ सकते हैं। भक्ति की राह में चलनेवाले इन भक्तों के बारे में जानकर बल्लभाचार्य की वह बात मुझे याद आती है जिसे मैंने वार्ता साहित्य में पढ़ी थी, 'भक्ति फलदायक रास्ता है'।

अंत में यह कहना जरूरी है कि भक्ति आंदोलन का हर एक धर्म के प्रतिनिधियों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ा। हिंदुओं में यह कृष्ण-भक्ति और राम-भक्ति के रूप में, जैन-भक्ति में जैन धर्म की उन्नति में, साथ-ही-साथ भक्ति में अपने अलग रास्ते में चलनेवाले भक्त उभरकर आए और मध्यकालीन भारत में मानव और जीवन मूल्यों को समझ में पुनर्स्थापित करने में इन भक्त लोगों का आचरण और उनके कृतित्व का बहुत बड़ा योगदान है। ❑

संपर्क : द्वारा देवेंद्र चौबे, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

जन्मदिवस पर विशेष

गुलेरी और आंचलिकता

पीयूष गुलेरी

आधुनिक हिंदी साहित्य के नवोत्थान में जो कुछ साहित्यिक विभूतियां क्षितिज पर उभर कर सामने आती हैं उनमें भारतेंदु सहित उनकी 'मंडली' के सदस्य और फिर द्विवेदी युग में जो देदीप्य मान नक्षत्र प्रकाशित हुए उनमें पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी का नाम अमर है। पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी अद्‌भुत प्रतिभा के धनी ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने अपनी योग्यता और मौलिक संरचना के बल पर बड़े-बड़े साहित्यिक दिग्गजों से लोहा मनवाया। वे विलक्षण भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा से संपन्न थे और अदम्य साहस के धनी भी। भास्मान भास्कर की भांति साहित्यिक क्षितिज पर उभरे और अपनी अद्‌भुत रचनाओं की तेजस्वी किरणों से हिंदी जगत को प्रकाशित किया। गुलेरी जी बहुआयामी और बहुमुखी मौलिक प्रतिभा से संपन्न थे। उनमें आधुनिक भारत के निर्माण में आधुनिक हिंदी भाषा की सेवा का उत्तम जज़्बा थ। यही कारण है कि अपने जीवन काल में उन्होंने अनेक स्तरों पर हिंदी के विकास, परिस्थापना, समृद्धि और संपन्नता हेतु दिन-रात एक कर दिया। निजी जीवन की कठिनाइयों, पारिवारिक विवशताओं, दैवी आपदाओं को उन्होंने हिंदी की प्रगति में कभी आड़े नहीं आने दिया। मां भारती के लिए संगठनात्मक और रचनात्मक दोनों मोर्चों पर शूरवीर योद्धा की तरह डटे रहे। यह चाहे नागरी प्रचारिणी सभा बनारस हो या जयपुर में समालोचक का संपादन। हिंदी साहित्य सम्मेलनों के आयोजन हों अथवा 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका का शोधात्मक एवं गवेषणात्मक संपादन। प्रत्येक ज़िम्मेदारी को बख़ूबी निभाया। गुलेरी जी का विशिष्ट रचना काल सन् 1904 से सन् 1921 ईसवी का माना जाएगा। उनके जीवन का यह वह समय है जब उन्होंने पद्य और गद्य में अनूठी रचनाएं कीं जिनका सिक्का अपने जीवनकाल में मनवाया और अपने विरोधियों को भी भूरि-भूरि प्रशंसा करने पर विवश किया। वैसे इससे पूर्व सन् 1902 ईसवी में जब कर्नल स्विण्टन और कैप्टन ए.एफ. गैरेट को जयपुर वेधशाला के जीर्णोद्धार के लिए नियुक्त किया गया तो ज्योतिष शास्त्र का वेत्ता, संस्कृत का मर्मज्ञ और पश्चिम की दो तीन भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण गुलेरी जी का ही उनके सहयोग एवं सहायता के लिए चयन किया गया। उन्होंने जयपुर यंत्रालय के पुनरुत्थान में अभूतपूर्व सहायता की तथा 'सम्राट सिद्धांत' जैसे दुर्बोध ज्योतिष ग्रंथ का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। इसके साथ यंत्रों को स्थिर तथा निश्चित करने और उनके परीक्षण में अपूर्व योगदान दिया। जयपुर की वेधशाला के मुख्यद्वार पर एतद् संबंधी संगमरमर पर खुदी जानकारी आज भी उपलब्ध है। यही नहीं यंत्रालय में अनेक यंत्रों पर विदेशी अभियंताओं के संग गुलेरी जी का नाम अभी भी अंकित है जो उनकी बहुमुखी प्रतिभा का साक्षात उदाहरण है। विशेषकर आश्चर्य तब होता है जब मात्र उन्नीस वर्ष की कम आयु में कोई ऐसा अद्‌भुत कार्य कर दिखाए। जयपुर की वेधशाला के पुनरुद्धार के ऐतिहासिक कारनामे के साथ गुलेरी जी आज भी अमर हैं।

साहित्य के क्षेत्र में गुलेरी जी ने कवि, कहानीकार, भाषाविद्, वैय्याकरण, निबंधकार, भाषा वैज्ञानिक, लोककला, लोक संस्कृति, समीक्षक, संपादक और शैलीकार के रूप में जो योगदान दिया है वह न केवल अप्रतिम है प्रत्युत् उन्हें अमरता प्रदान करने में भी सक्षम है। यह अलग बात है कि गुलेरी जी की अमरता उनकी कहानियों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ गई है किंतु उससे कहीं अधिक अमरता उन भाषाविद और भाषा वैज्ञानिक निबंधों की रचनाओं में झलकती है। हिंदी भाषा के संगठन और उत्थान में जो-जो कार्य उन्होंने किए वे सब रेखांकीय है। उनके संपादकत्व में नागरी प्रचारिणी सभा की पत्रिका का शोध पत्रिका के रूप में रूपांतरण और भाषा संबंधी खोजपूर्ण सामग्री, गौरवपूर्ण इतिहास रचने जैसा महान कार्य है। उसकी



टक्कर का काम फिर न हुआ और उन द्वारा किस्तों में प्रकाशित 'पुरानी हिंदी' लेखमाला आज भी अकाट्य प्रामाणिक एवं एकांत मौलिक विषयवस्तु के रूप में मान्य है। गुलेरी जी ने हिंदी साहित्य में जो नए-नए प्रयोग किए उनमें से हिंदी भाषा को साहित्यिक भाषा के अतिरिक्त लोकरंजक और लोकप्रिय बनाने का उद्योग भी था। इसीलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में जब भी समय मिला, लोक संस्कृति और लोक भाषा के पक्ष में अविच्छिन्न रूप से समंजित कर दिया। वे गज़ब के शैलीकार थे और समालोचक पत्र के माध्यम से अपनी अनूठी शैली के साथ हिंदी साहित्य में उतरे थे। गुलेरी ने अपनी रचनाओं में जिस आंचलिकता के चलन की शुरूआत की है वह तत्कालीन परिस्थितियों में देखे जाने पर उनकी शैली की कई वर्ष आगे की सोच को रेखांकित करती है। उनकी रचनाओं में आंचलिकता का यह सन्निवेश ही उनकी मौलिकता, सजीवता और शाश्वतता का प्रबल घटक बनकर आया है। खोज के नज़रिए से गुलेरी जी की रचनाओं का विहंगम दृष्टिपात दर्शाता है कि हिंदी साहित्य में जिस आंचलिकता का आगमन आधुनिक युग, विशेष कर उपन्यासकार फणीश्वर नाथ रेणु से माना जाता रहा है, सुखद आश्चर्य यह है, कि उसका सूत्रपात और धड़ल्ले से चलन गुलेरी जी बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण (1904-1922 ईसवी) में ही कर चुके थे।

साहित्य में आंचलिकता-वर्णन अथवा अविच्छिन्न आंचलिकता से अभिप्राय अंचल-विशेष की सभ्यता और संस्कृति के चित्रण से है। यह चित्रण अंचल विशेष की भाषागत, जातिगत, समाजगत, धर्मगत, संस्कृति गत, लोक व्यवहार गत, लोक विश्वास गत, लोक मान्यता गत अथवा लोकोक्ति एवं मुहावरा गत हो सकता है। वैसे 'अंचल' शब्द का मुख्य कोशगत अर्थ है, वस्त्र का छोर। इसे प्रकटगत ढंग से ओढ़नी आदि का वह छोर है जो प्रायः छाती और पेट पर रहता है, कहा जाएगा। यह छोर एक प्रकार से शालीनता पूर्वक नारी सौंदर्य का रक्षात्मक कवच है। यह छोर सौंदर्य की अभिवृद्धि का द्योतक भी है। यही छोर सौंदर्य को नित नवीन बनाए रखता है। देश के अंचल से अभिप्राय वह विशेष छोर अथवा किनारा है जिसका अपना पृथक अस्तित्व है। इस पृथक अस्तित्व के मूल कारण वहां के निवासियों का देश के अन्य भागों से हटकर अलग सभ्यता और संस्कृति है। यह वह सभ्यता और संस्कृति है जो देश को नित नवीन नव्यता से पूरित रखती है। अंचल-विशेष, मानो अपनी

इस सभ्यता और संस्कृति रूपी नारी के वक्ष और पेट पर इस प्रकार पड़ा रहता है कि उस अंचल के अस्तित्व की शाश्वतता और सनातनता बनी रहे। देश के विभिन्न अंचलों की यही सांस्कृतिक विशेषताएं उस देश के सांस्कृतिक-वैविध्य को दर्शाती हैं। भारत देश की महानता इसी सांस्कृतिक विरासत के वैविध्य में छिपी हुई है। संस्कृतियों की विविधता, अलग अस्तित्व और पृथक पहचान इस देश की अनेकता में एकता और एकता में अनेकता की थाती है। यही सांस्कृतिक-वैभव देश के गौरव और महत्व को बढ़ाकर चार चांद लगाता है।

अंचल विशेष की पृथकता, उसकी सभ्यता, संस्कृति और जनसमाज में निहित है। समाज की जातिगत विशेषता उनके जीवनयापन के स्वभावगत विषयों को लेकर आते हैं। उनका रहन-सहन, बोलचाल, तीज-त्योहार, विवाह-शादियां, छिंज-मेले, संस्कारगत-कृत्य, लोक-नाट्य, लोकवाद्य, लोकनृत्य, तंत्र-मंत्र-यंत्र विद्या, दंत-कथाएं, वार-झंझोटियां, लोकगाथाएं, कथन, प्रसंग, बुझारतें, लोकोक्तियां, मुहावरे, शब्दावली, करणीय कर्म, अकरणीय कृत्य, लोक निषेध, निषेधात्मक शब्द, वाक्य और विचार, चित्रकारी, लीखणू-अल्पना आदि कलात्मक विशेषताएं देश के उस अंचल विशेष की नवीनता एवं चित्ताकर्षक सौंदर्य की अलग पहचान को चिन्हित ही नहीं करतीं प्रत्युत् देश की सांस्कृतिक थाती की अकूत धरोहर बन जाती हैं। लोकसमाज में नानाविध मनोरंजन-सामग्रियां नित नए-नए रुप से उपलब्ध होती हैं और गंगोत्री यमनोत्री की पवित्र धारा की तरह अपने शाश्वत स्वरूप में बरकरार रहती हैं। देश के विभिन्न अंचलों की यह विरासत देश की मुख्यधारा की भाषा में स्थान पाकर जब उस भाषा के मूल स्वरूप में हिल-मिल जाती है तो न केवल उस भाषा के कथ्य को सशक्तता संपन्न ही करतीं है बल्कि समग्र देश की एकता को भावात्मक सूत्र में पिरोकर विशाल समाज-सागर को भेंट भी करती है। यही नहीं साहित्य में यह आंचलिकता रचनाकार की अभिव्यक्ति-सामर्थ्य, अभिव्यक्ति-चातुर्य, और अभिव्यक्ति-क्षमता को भी दर्शाती है तथा ऐसी समर्थ रचनाएं साहित्य और समाज की विरल धरोहर बनकर अजर-अमर हो जाती हैं।

गुलेरी ने साहित्य की इस नब्ज़ को भली भांति पकड़ लिया था। इस पर गुलेरी जी के घुमक्कड़ व्यक्तित्व के अनुभवों ने उसे सतरंगी डोरों से रंग दिया था। साहित्य-पिपासु जानते हैं कि गुलेरी जी का शैक्षणिक रिकार्ड उनकी मेधावी-छवि को अच्छी तरह से दर्शाता है। प्रारंभिक शिक्षा से लेकर बी.ए. तक उनका प्रथम श्रेणी का रिकार्ड है। बी.ए. में तो उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। उनकी विभिन्न विषयों में रुचि, अंग्रेज़ी साहित्य, दर्शन शास्त्र और संस्कृत का अगाध ज्ञान उनके व्यक्तित्व को विराट बनाता चला गया। अमर कृती गुलेरी योग्य, कर्मठ, सच्चरित्र और निष्ठावान व्यक्तित्व के धनी थे। भाषा, विज्ञान, कला और गणित के ज्ञान से संपन्न थे। चार-पांच विदेशी भाषाओं के विज्ञ ही नहीं थे बल्कि छह-सात प्रांतीय भाषाओं के ज्ञान से भी मंडित थे।

गुलेरी की अपने गांव गुलेर से संपृक्ति बराबर बनी रही। आमतौर पर गुलेरी जी का साहित्यिक परिचय देते वक्त यह कहा जाता है कि गुलेरी जी के पूर्वज तत्कालीन पंजाब (अब हिमाचल प्रदेश) से आकर जयपुर में बस गए थे। सन् 1966 ईसवी के पश्चात् जब पंजाब से कांगड़ा अंचल का भूभाग हिमाचल-प्रदेश का अभिन्न अंग बना तो कतिपय साहित्यकार मित्रों ने गुलेरी जी को इस प्रकार चित्रित किया कि जैसे वे राजस्थानी थे और हिमाचल प्रदेश छोड़-छाड़ दिया हो। यद्यपि यह बात इस निबंध के साथ जोड़कर चर्चित नहीं होनी चाहिए फिर भी गुलेरी जी के व्यक्तित्व के साथ कांगड़ा अंचल की विशेषताओं से उभरी शैली, साहित्यिक रचनाओं के अध्ययन के साथ टंकित करके देखने के लिए बहुत ही आवश्यक है। जिस प्रकार वर्तमान समय नौकरी अथवा किसी अन्य व्यवसाय के कारण कुछ लोग दूसरे प्रांतों में चले जाते हैं वैसे ही गुलेरी जी के पिता को जयपुर के राजा काशी से लिवा ले गए थे। वहीं गुलेरी जी का जन्म और शिक्षा हुई तथा बाद में जयपुर राज्य की ओर से मेयो कॉलेज अजमेर में मोतमिद और प्राध्यापक भी हो गए। किंतु विशेष बात यह है कि भले ही गुलेरी जी के पूर्वजों को जयपुर के राजा ने जागीर देने का प्रस्ताव किया था तो भी उन्होंने उसे लेने से इंकार कर दिया था। वैसे भी गुलेरी जी और उनके सभी भाइयों की विवाह शादियां भी गुलेर ही में हुईं। तिस पर आज भी उनका पुश्तैनी मकान गुलेर ही में है।

गुलेरी जी के जीवनानुभव और कार्यक्षेत्र का क्षितिज इतना विशाल है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों, प्रांतों और प्रांतीय अंचलों की सभ्यता एवं संस्कृति के अनुभव से परिपुष्ट कर जाता है। कांगड़ा अंचल (तत्कालीन पंजाब) जिसमें वर्तमान के कुल्लू एवं लाहौल स्पिति जिले भी सम्मिलित थे, की सभ्यता-संस्कृति की धरोहर उनके पास पैतृक संपत्ति की भांति सुरक्षित थी। इसके अतिरिक्त गुलेर-राज्य कांगड़ा की बड़ी शाखा थी (गुलेर का राजा हरिचंद्र ही कांगड़ा का वास्तविक राजा था जिसने बाद में गुलेर-राज्य की स्थापना की थी, जिसे पर्वतीय राजाओं को राजतिलक देने का अधिकार था।) इससे मंडी और शिमला की रियासतों से भी उनका संपर्क रहा। परिणामस्वरूप गुलेरी जी को कांगड़ा, मंडी, शिमला आदि के अंचलों की सभ्यता एवं संस्कृति के आदान-प्रदान का खासा अनुभव था। यह सर्वविदित है कि गुलेरी जी के पिता पंडित शिवराज जी, 'महाराज' (गुलेरी जी के पिता की 'महाराज' विशेष उपाधि थी। घर परिवार के लोग और संबंधी-जन उन्हें 'महाराज' से ही संबोधित करते थे) जयपुर—राज्य के मुख्य पंडित, संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल और महाराजा के विशिष्ट मंत्री, पदों पर सुशोभित थे। इससे गुलेरी जी की जयपुर-राज्य की समस्त छोटी-बड़ी रियासतों के अंचलों से वाबवस्तगी हो गई थी। बाद में मेयो कॉलेज अजमेर में जयपुर-हाऊस के मोतमिद होने से राजपूताना के सभी क्षेत्रों के राजकुमारों के गुरुत्त्व के कारण राजस्थान के भाषायी और सांस्कृतिक-वैविध्य का सरोकार उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए धन जुटाने के सिलसिले में गुलेरी जी का समाज-सेवी महान शिक्षाविद् पंडित मदन मोहन मालवीय से जो साक्षात्कार हुआ वह उनके घनिष्ट संबंध में परिवर्तित होकर उन्हें विश्वविद्यालय की मनीद्र चंद्र नांदी चेयर के प्रोफेसर एवं कॉलेज ऑफ ओरिंटियल लर्निंगि (प्राच्य शिक्षा) में प्रिंसिपल के पद पर नियुक्ति हेतु ले गया। इस प्रकार उत्तर प्रदेश के विभिन्न अंचलों की संस्कृति से आमने-सामने होने का जो अवसर उन्हें प्राप्त हुआ वह उन जैसे जागरुक और संवेदनशील रचनाकार को अशेष सभावनाओं से परिपूरित करता है। पंजाब और सिंध तथा लायलपुर क्षेत्र में परिवार की पुरोहिताई थी और यजमानों से पारिवारिक संबंध भी, जिनकी परिपुष्टि गुलेरी जी के अनेक पत्रों द्वारा होती है।

इधर देहरादून (वर्तमान उत्तराखंड) में तो गुलेरी जी की रिश्तेदारी थी। उनकी बेटी का विवाह भी वहीं हुआ था। यहां तक कि उनके ज्येष्ट पुत्र स्वर्गीय योगेश्वर गुलेरी अपने अंतिम समय तक नालापानी में रहते रहे। देहरादून से उनका संबंध और कुमाऊं में नित्य आते-जाते रहने से उस अंचल की संस्कृति से उनका चोली-दामन का नाता था। रचनाकार गुलेरी जी ने संख्या में यद्यपि बहुत कम कविताएं लिखी हैं तो भी उनकी काव्य रचनाओं में लोक-शब्दावली का सुंदर प्रयोग हुआ है। अधिकतर कथा-कहानी और उपन्यास रचना में लेखक को आंचलिक-प्रयोग का स्वातंत्र्य रहता है। निबंध आदि में ऐसे प्रयोगों की बहुत कम गुंजायश होती है। किंतु गुलेरी जी ने अपनी निबंधात्मक रचनाओं में भी धड़ल्ले से आंचलिक वर्णन किए हैं। उनकी रचनाओं में लोक शब्दावली, शब्दों का प्रयोग, उनके स्वरूपात्मक परिवर्तन,

व्याख्या और अर्थ परिवर्तन आदि पर विस्तार से चर्चाएं हुई हैं। गुलेरी जी को जब कभी समय मिला उन्होंने अपने आंचलिक अनुभवों को पाठकों के साथ सांझा करने का अवसर हाथ से नहीं जाने दिया। यह अवसर चाहे निबंधों की वर्णनात्मक और विवरणात्मक अभिव्यक्ति का हो अथवा भाषावैज्ञानिकता में शब्दों की निरुक्ति, उनके रूप-परिवर्तन अथवा तद्भवीय स्वरूप के विवेचन का, गुलेरी जी खुल कर विभिन्न अंचलों की संस्कृति और लोक-प्रयोग के साथ विस्तार से विश्लेषित करते नहीं थकते। इस संदर्भ में गुलेरी जी विरचित 'पुरानी हिंदी' शोध-प्रबंध से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं–

हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण का उदाहरण है

वायसु उड्डा वन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।।

अद्ध वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति।।

(वियोगिनी कौआ उड़ाने लगी कि मेरा पिया आता हो तो उड़ जा। इतने में उसने अचानक पिया को देख लिया। कहां तो वह वियोग में ऐसी दुबली थी कि हाथ बढ़ाते ही आधी चूड़ियां जमीन पर गिर पड़ीं और कहां हर्ष से इतनी मोटी हो गई कि बाकी चूड़ियां तड़-तड़कर चटक गईं।)

चारणों के मुख से कई पीढ़ियों तक निकलते-निकलते राजपूताने में इस दोहे का अब यह मंजा हुआ रूप प्रचलित है–

काग उड़ावण जांवती पिय दीठो सहसत्ति।

आधी चूड़ी कागगल आधी टूट तडित्ति।।

निशाना ठीक लग गया, चूड़ियां ज़मीन पर न गिरकर कौए के गले में पहुंच गईं और चूड़ी टूटने का अपशकुन भी मिट गया। दोहे के प्रथम रूप उड्ड्या वन्तिए, पिऊ, दिट्ठउ, गया, अद्धा, फुट्ट, तडत्ति (तड़-तड़) फिर काग, उड़ावण, जावंती, पिय, दीठो, चूड़ी, आधी (हिमाचली अधियां) टूट (टुट्टी), तड़ित्ति (तिड़की गेइयां) आदि शब्दों का तारतम्य हिमाचली और राजस्थानी अंचल की भाषाओं में समानता समरसता का सुंदर उदाहरण है। उसी व्याकरण में से एक दोहा और लीजिए–

पुत्ते जाएं कवणु-गुणु अवगुणु कवणु मुएण।।

जा बप्पी की भुहडी चम्पिज्ज्इ-अवरेण।।

(उस बेटे के जन्म लेने से क्या लाभ और मर जाने से क्या हानि जिसके होते बाप की धरती पर दूसरा अधिकार कर ले।)

बेटा जायां कवण गुण अवगुण कवण धियेण।

जो ऊमां2 धर3 आपणी गंजीजै4 अवरेण5।।

(धी से, पुत्री से, खड़े खड़े, पृथ्वी, धरा, गंजन की जाए, जीती जाए)

मूल दोहे में मुए पुत्र से क्या अवगुण' कहा गया है किंतु पीछे, स्त्री जाति की ओर अपमान बुद्धि बढ़ जाने से उसका उत्तराधिकार न होने से, धी-पुत्री, संस्कृत दुहितृ, हिमाचली (पंजाबी) धी) से क्या अवगुण हो गया है।

... राजस्थान के चौहानों की राजधानी पहले शाकंभरी (सांभर) थी। ...उसी का सातवां वंशधर हमीर था। शार्ंगधर (कवि) पद्धत्ति में उस समय की बोलचाल की भाषा के मंत्र, शब्द और वाक्य दिए हैं जो उस समय की हिंदी के नमूने हैं।(इन नमूनों में राजस्थानी और हिमाचली भाषा से मेल खाते शब्दों का स्वरूप भी दर्शनीय है पी. गु.)

... ये वैसे ही मंत्र हैं जिनके लिए गुसांई तुलसीदास जी ने लिखा है कि 'अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू।' दहने 'हाथ में पानी का बरतन लेकर बाएं हाथ की अनामिका से सात बार मंत्र पढ़कर उसे हिलाकर जिसे वह जल पीने को दिया जाए वह तत्क्षण निर्विष हो जाता है। (नं. 2868-9) मंत्र यह है–ओं गुरु के पाय शरणम्। ओं चवि चवि चारि भार विसुभाटी।

(= कह, कह विष की भट्टी के चार भार, चव = कहना (चबणा) चब्बी-चब्बी गल्ल करनी पी गु) यथा सुकवि चंद सच्चो चवै) तैलिंग देश के राजा तैलप की छेड़छाड़ पर मुंज ने उस पर चढ़ाई की। मंत्री रुद्रादित्य ने राजा का भावी अनिष्ट समझ और अपने को असमर्थ जान चिता में जलकर प्राण दे दिए। गोदावरी पर जा कर भले ही मुंज तैलप राजा को छः बार हरा चुका था किंतु इस बार मुंज की सेना छलबल से काटी गई और तैलप मुंज को 'मूंज' की रस्सियों से बंदी करके ले गया। वहां उसे लकड़ी के पिंज़रे में कैद रखा। तैलप की बहन मृणालवती से मुंज का प्रेम हो गया। एक दिन मुंज कांच में मुंह देख रहा था कि मृणालवती पीछे से आ खड़ी हुई और मुंज के यौवन और अपनी अधेड़ उमर के विचार से उसके चेहरे पर म्लानता आ गई। यह देख मुंज ने यह दोहा कहा–मुंज भणई मुणालवइ जुव्वण गयुं न झूरि।/जह सक्कर सय खंड थिय तो इस मीठी चूरि।। (सं. 4)

अर्थ–मुंज कहता है, हे मृणालवती! गए हुए यौवन (को) का सोच मत कर। यदि शक्कर के सौ टुकड़े हो जाएं तो वह चूरी (चूर्ण की हुई) भी मीठी होती है।

भणइ = कहै (सं भणति) मृणालवइ-स्वर कि 'उ' श्रुति देखो।

जुव्वण-जोवन (पंजाबी) यौवन। गयुं-गयो (कर्म कारक) झूरना-पछताना, विलाप करना। जइ (सं. यदि हिं. जे) सय-शत् थय-वर्तमान 'था' का स्त्रीलिंग, संस्थित, थी, गुजराती थई। इस-यह)

अब उपरिलिखित दोहे का हिमाचली स्वरूप देखिए-मुंज-नाम, मुंज की रस्सी, भणई-भणत, गलाणा, भण-भण करना (मक्खियों अथवा मधुमक्खियों की ध्वनि, बोलना, जुव्वण-जोवन गोरिया दा जोवन चुम्मैं-चुम्मैं चली गया (हास्यरस कथन), गयुं-गेया, गया; झूरि-झूरना, पछताणा-फलाणा/फलाणी अपणे कर्मा पर झूरा दा। झूरा दी। दिक्खी-दिक्खी झूरना), जइ जे जेकर, सक्कर = सक्कर, घ्यो सक्कर, सैह-तां अजकल घ्यो सक्कर हन (मु.), सय-सौ, थिय-थिया (थिया का हिमाचली प्रयोग देखिए :

मनू री मनाली देखी, थीपू लौंगा वाली देखी।

ठौं तिल्ले आली देखी। बधिया शिंगार थिया।

... एकी एकी हाखडू रा मुल्ल लख लख हुंग्गा (प्रबल संभावना)

दाडुआं रे दाणें सांही दंदा री कतार थिया।। (पी.गु.)

(लाल चन्द प्रार्थी)

गुलेरी जी यहीं नहीं रुकते और राजस्थान के बीकानेर के राजा पृथ्वीराज की रानी चांपादे ने पति का अपने धौलों (श्वेत केशों = हिमाचली धौलो पी.गु.) पर पछतावा करते देख ऐसे ही दोहे (लोक काव्य) कहे थे--

नरां, नाहरां, डिगमरां पाकां ही रस होय ...

नरां तुरंगा बना फलां पक्कां पक्कां खाव!! (महिला मृदुवाणी)

वीर रस निमज्ज्ति एक उदाहरण दर्शनीय है कि जिसमें वीरांगना अपने पति की वीरगति प्राप्त करने पर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करती है और कहती है कि यदि वह पीठ दिखाकर (रणक्षेत्र से भागकर) घर लौटता तो मैं शर्म के मारे अपनी समवयस्क सखियों को मुंह दिखाने के काबिल न रहती–

भल्ला हुआ जु मारिआ, बहिणि महारा कंतु।

लज्जे जं तु वयंसि अहु, जइ भग्गा घर एंतु।। (दो. स. 31)

उपरिलिखित दोहे को आधुनिक हिमाचली के साथ जोड़कर देखिए तो हिमाचली भाषा का तेरहवीं शताब्दी में उद्गम देखा जा सकता है। (भल्ला हुआ = भला हुआ, होया, जो = जे, जेकर, मारिआ = मारेया गेया, बहिणि = बहिणी, भैणे, महारा = म्हारा, जे खरि गल मन्नी जाइये तां म्हारा क्या जाणा?, कंतु = कंतु, कंत, कैंत, सुण मेरे कंता चोला फटी रा, मिंजो लेइ दे तूं छैल घघरूआ-लो.गी. लज्जेज्जं लज आई जांदी, लजाई जांदी, जं = जे, जेकर, तु = तां वयंसि-अहु = वय, बरेस अपणी बरेसा व्हालियां (स्हेलियां) साह्मणै, जइ = जेकर, भग्गा = भगणा, भागणा, भगी याणा, न्हठी, याणा, न्हठी-नैं, घरु = घर, घरैं, एंतु = औंदा पी.गु.)

अपने 'पुरानी हिंदी' ग्रंथ में गुलेरी जी ने ऐसे 185 दोहों के अतिरिक्त लोक-प्रचलित परंपरित अनेक दोहों, कथनों, कहावतों, दंत-कथाओं को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। उक्त ग्रंथ में भले ही उनका उद्देश्य पुरानी हिंदी के उद्गम, स्वरूप और लिखावट-भेद आदि को स्पष्ट करते हुए उसे स्थिर करना था, किंतु जब हम गुलेरी जो को हिंदी साहित्य में आंचलिकता के सूत्रधार के रूप में देखें तो उनके भाषा विज्ञान जैसे शुष्क विषय में भी ऐसे अनेक आंचलिक वर्णनों के माध्यम से उसे सरस और ग्रहणीय बनाने का संदर्भ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो उठता है। 'अमंगल के स्थान में मंगल शब्द' शीर्षक निबंध पारंपरिक मान्यताओं, लोक विश्वासों, नए शब्दों के निर्माण, पुराने शब्दों के त्याग और हिमाचली शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से आंचलिकता से सराबोर हैं। इन पंक्तियों का लेखक जब गुलेरी जी पर शोध के दौरान वाराणसी में हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकार आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र से मिला तो उन्होंने उक्त निबंध की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उसे देख लेने का विशेष अनुरोधात्मक संकेत किया था। उदाहरण देखिए, 'दिया बुझ गया-कहना अमंगल समझा जाता है, क्योंकि बुझाना मृत्यु का भाव सूचित करता है। इसलिए 'दिया बुत गया—दिया नंद गया-दिया बड़ा हो गया-दिया ठंडा हो गया-दिया बढ़ गया आदि प्रयोग काम में लाए जाते हैं। ... होली जल गई की जगह राजपूताने में 'होली मंगल गई कहते हैं।... शवदाह से होने के कारण चूल्हा जलाते' या बालते (हि.) नहीं उसे चिताते और 'चिताने' में 'चिता' शब्द आ जाने से उसे जगाते हैं। 'मरने' के बदले 'शांत होना' या 'चल बसना' कहा जाता है। ... सपत्राकरण का अर्थ भी वृक्ष के पत्ते नोचना ही है। केवल मंगल के लिए निष्पत्र को सपत्र कह दिया। जैसे दीपक बुझने को : नंदना' कहते हैं। इस प्रसंग में प्रोफैसर के.बी. पाठक ने यह सूचित किया है कि कन्नड़ी भाषा में 'नंदु' धातु का अर्थ बुझना भी होता है। ... चिता के लिए 'लकड़ी' काटी जाती है और रसोई के लिए ईंधन का भारा (हिमा.)। 'पानी देना' या जल देना—तर्पण का सूचक होने से 'पानी पिलाना' ही व्यवहार में आता है। चूल्हे में 'आग देना' कहने से नई बहू डांटी जाती है। आग को भी बैसांदर (वैश्वानर) कहते हैं। इसी से यह कहावत प्रसिद्ध है—दूसरे के घर लगे तो बैसांदर, अपने घर लगे तो आग।'... मृत्यु में सहानुभूति दिखाने के लिए जाने से 'फिरने जाना' कहते हैं और मैथिल लोग इसी भाव को 'जिज्ञासा' शब्द से प्रकट करते हैं। शवदाह के लिए बंगाली 'सत्कार' शब्द काम में लाते हैं।

गुलेरी जी प्रणीत 'देवकुल' निबंध में पारंपरिक व्यवस्था लोक-विश्वास, लोक-रीतियों, लोक-कलाओं, झरनों, कुंओं, बावलियों और चश्मों के आसपास स्थापित देवकुलों के इतिहास को अंचल-विशेष से संदर्भायित करके चित्रित किया गया है। निबंध में देवकुलों के पुरातन इतिहास और वर्तमान में भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों में हमारी लोक-मान्यता पर सुरुचिपूर्ण ढंग से सोदाहरण व्याख्या की गई है। उदाहरणार्थ...देव पूजा का पितृ-पूजा से बड़ा संबंध है। देवपूजा पितृ पूजा से ही चली है। मंदिर के लिए सबसे पुराना नाम 'चैत्य' है जिसका अर्थ 'चिता' (दाहस्थान) पर बना हुआ स्मारक है। ... देवकुल का बड़ा इतिहास है। मंदिर को राजपूताने में देवल कहते हैं, छोटी मढ़ी से देवली कहते हैं। ... पुजारी को देवलक कहते हैं, लेखों में देव कुलिक मिलता है।... पंजाबी में वह लकड़ी का सिंहासन, जिसमें गृहस्थों के ठाकुर जी रखे जाते हैं, देहरा कहलाता है। ग्राम तथा नगरों के नाम में देहरा पद भी उनके देवस्थानों का सूचक है। पंजाबी-पहाड़ी में सती के स्मारक चिन्ह को देहरी तथा सतियों को समष्टि में 'देहरी' कहते हैं। (सतियों के लिए 'महासती' पद का व्यवहार सारे देश में मिलने से देश की एकता का अद्भुत प्रमाण मिलता है। मेवाड़ के महाराणाओं की सतियों के समाधिस्थान को महासती कहते हैं, जैसे 'दरबार महासत्यां दरसण-करण ने पधार्या' मैसूर के पुरातत्व विभाग की रिपोर्ट से जाना जाता है कि वहां सती स्तंभ 'महासतीकल' कहे जाते हैं। विपरीत लक्षणा से पंजाबी-पहाड़ी में 'महासती' या 'म्हासती' दुराचारिणी स्त्री के लिए गाली का पद हो गया है। पति के लिए सह मरण करने वाली स्त्रियों को ही सती कहते हैं, किंतु कई देवलियां पोता सतियों की भी मिलती हैं, जो दादियां अपने पोते के दुःख से सती हुईं। ... कोयम्बुतर ज़िले (मद्रास) में कुछ पुरानी समाधियां पांडुकुल कहलाती हैं। यह भी देवकुल का स्मरण हैं।

देवकुलों की इस परंपरा को अपने गांव गुलेर की कुल परंपरा के साथ जोड़कर अंचल-विशेष के चलन, विश्वास, रीति और गांव के इतिहास के संक्षेप वर्णन के साथ अपनी आंचलिक सूझ-बूझ और गांव के प्रति संवेदनशीलता को वे किस मर्मस्पर्शी ढंग से अभिव्यक्त करते हैं, देखते बनता है—"पंजाब (तत्कालीन, अब हिमाचल प्रदेश) कांगड़ा जिले के पहाड़ी प्रांत में जो राजमार्गों से विदूर तथा मुसलमानी विजेताओं तथा प्रभावों से तटस्थ रहा, अब तक (सन् 1920 ई.) देवकुल की रीति चली आती है। वहां प्रत्येक ग्राम के जलाशय पर मरे हुओं की मूर्तियां रखी जाती हैं। मेरे ग्राम गुलेर के देवकुल का वर्णन सुन लीजिए। गुलेर बहुत ही पुराना ग्राम है। कटोच वंशों की बड़ी शाखा की राजधानी वह हुआ, छोटा वंश कांगड़े में राज्य करता रहा। श्मशान तो नदी के तीर पर हैं जहां पर कई कुल की सतियों की देहरियां हैं। गांव के बाहर, श्मशान से पौन मील इधर, बछूहा (बत्सकूहा = वत्स कूप) नामक जलाशय है, जिस पर वत्सेश्वर महादेव हैं। उसके पुजारी रौलु (रावल) नामक ब्राह्मण (?) होते हैं जो मृतक के वस्त्रों के अधिकारी हैं। वत्सकूप तथा महादेव के मंदिर के पूर्व को एक तिबारा सा है। छत गिर गई है। खंभे दीवालें बची हैं। वहां पर सैंकड़ों प्रतिमाएं हैं जिन्हें मूहरे (मोहरे) कहते हैं। मृत्यु के पीछे ग्यारहवें दिन जब महाब्राह्मणों को शय्या दान करते हैं उस समय लगभग एक फुट ऊंचे पत्थर पर मृतक की मूर्ति कुराई जाती है। मूर्ति बनाने वाले गांव के पुश्तैनी पत्थर गढ़नेवाले हैं जो पनचक्कियों के घराट' बनाते हैं। ... मूर्ति उस देवकुल में पहुंचा दी जाती है। उस कुल के आदमी जलाशय पर स्नान संध्या करने आते हैं तब मूर्ति पर कुछ दिनों तक जल चढ़ाते रहते हैं।...सभी उच्च जातियों के मृतक मूर्ति रूप में, इस देवकुल में गांव बसाकर रहते हैं। गुलेर के राजाओं तथा रानियों के मूहरे भी यहीं हैं। वे दो ढाई फुट ऊंचे हैं। उनके नीचे 'राजा-रानी' अक्षर भी लड़कपन में हम लोग पढ़ा करते थे। गांव के लोग पहचान लेते हैं कि यह अमुक का मूहरा है। कई वर्षों तक हम अपने पितामह की प्रतिभा को पहिचानते तथा उस पर जल चढ़ाते थे।...पुरुष की मूर्ति बैठी हुई बनाई जाती है, स्त्री की खड़ी।...राजाओं की मूर्ति घोड़े पर होती है। अस्त्र-शस्त्र भी दिखाए जाते हैं। उस प्रांत में जहां बां, नौण तला आदि हैं वहां सब जगह मूहरे रखे जाते हैं। (बां = संस्कृत बापी) बिहारी कवि बाय, (मारवाड़ी) बाव, नौण = (संस्कृत निपान, पाणिनी का निपान माहाबः), (मारवाड़ी) निवाण। तला = (संस्कृत) तड़ाग या तटाक (हिंदी) तालाब।) सड़क किनारे जो जलाशय मिलता है वहां गांव पास हो तो, 8-10 प्रतिमाएं रखी मिलेंगी। कुल्लू, मंडी तथा शिमले के कुछ पहाड़ी राज्यों में भी यह चाल है। यह प्राचीन देवकुल की रीति अब तक उन प्रांतों में है जहां परिवर्तन बहुत कम हुए हैं। गुलेरी जी द्वारा प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से ये आंचलिक वर्णन उनकी विशेषता है और आंचलिक प्रेम का उदाहरण भी। देश के विभिन्न प्रांतों की आंचलिकता के अनुभवों को आत्मसात कर हिंदी भाषा की मुख्यधारा में परोसने की उनकी यह पहल निश्चय ही उनकी दूरदृष्टि का परिणाम है। ❑

संपर्क : अपर्णा-श्री, हाऊसिंग कॉलोनी, धर्मशाला (हि.प्र.)

रेणु की कहानियों में गीतात्मक प्रयोग

रेणु की कथा-संरचना में लोक-भाषा और लोक-गीतों का समावेश लोक-जीवन की संवेदना को विस्तृत रूप में उद्घाटित करता है। यह उनकी रचनात्मक क्षमता को जीवंत और रसग्राही बनाता है। इस तरह परिनिष्ठित हिंदी में प्रयुक्त होकर यह लोक-जीवन की भाषा और गीत उसे एक नया कलेवर देते हैं। इस नई सर्जनात्मक भाषा में इससे एक नई प्राणवत्ता का संचार होता है, बता रहे हैं **भारत यायावर**

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के आधुनिक काल के प्रकरण तीन में हिंदी काव्यधारा के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत को स्थापित किया है। वह सिद्धांत साहित्य-भाषा और लोक-भाषा के आंतरिक संबंधों पर ज़ोर देता है। दूसरी बात यह कि रामचंद्र शुक्ल ग्रामगीतों के महत्त्व को समझते थे तथा उसे साहित्य की मुख्यधारा में जगह देने के हिमायती भी थे। रेणु की कहानियों में प्रयुक्त लोक-गीतों की महत्ता भी इससे प्रतिपादित होती है। सबसे पहले रामचंद्र शुक्ल के विचारों को देखें—"पंडितों की बंधी प्रणाली पर चलने वाली काव्यधारा के साथ-साथ सामान्य अपढ़ जनता के बीच एक स्वच्छंद और प्राकृतिक भावधारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है—ठीक उसी प्रकार जैसे बहुत काल से स्थिर चली आती हुई पंडितों की साहित्य भाषा के साथ-साथ लोक-भाषा की स्वाभाविक धारा भी बराबर चलती रहती है। जब पंडितों की काव्य-भाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोकभाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है तब शिष्ट समुदाय लोक-भाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य-परंपरा में नया जीवन डालता है।"



रामचंद्र शुक्ल के इस कथन को यदि कथा-भाषा के संदर्भ में रखकर देखें, तो रेणु ही ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने लोक-जीवन, लोक-भाषा और लोक-गीतों का अपनी कथा-रचनाओं में इतने कलात्मक रूप में प्रयोग किया है कि इससे कथा-भाषा की चली आती परंपरा में एक नए युग की शुरुआत होती है। नामवर सिंह के शब्द लेकर कहें तो "इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से यह पता चलता है कि लोक-जीवन ऐसी शक्ति है जो सामाजिक गतिरोध को तोड़ने के साथ ही साहित्यिक गतिरोध को भी समाप्त करती है।" कथा कहने की पारंपरिक प्रणाली में यह संभव भी नहीं था, इसलिए रेणु ने लोक-जीवन की संवेदना को प्रस्तुत करने के लिए एक नई कथा-परंपरा को जन्म दिया। उनके उपन्यासों के संदर्भ में निर्मल वर्मा ने सही लिखा है—"शायद ही किसी हिंदी उपन्यासकार ने उपन्यास की नैरेटिव परंपरा को झिंझोड़कर उसे प्रेमचंदीय ढांचे से बाहर निकालकर इतना नाटकीय, इतना लचीला, इतना काव्यात्मक बनाया था, जितना रेणु ने और यह नाटकीयता, यह कविता अलंकारमय और कृत्रिम नहीं थी, क्योंकि परंपराग्रस्त किसान और आधुनिक ऐतिहासिक आंदोलन के बीच जिस मुठभेड़ को रेणु ने अपना विषय बनाया था, उसमें पहले से ही बारूदी नाटकीयता विद्यमान थी। ... रेणु जी पहले कथाकार थे, जिन्होंने भारतीय उपन्यास की जातीय संभावनाओं की तलाश की थी।" रेणु की यह विशेषता उनके उपन्यासों के साथ-साथ कहानियों और रिपोर्ताजों में भी दिखाई देती है। इसका कारण है—"गांव ने रेणु को बहुत कुछ दिया है—केवल कथाओं की विषयवस्तु ही नहीं, उसका शिल्प पक्ष—'गप्प रसाने का भेद'—तक रेणु ने अपनी गंवई परंपरा से ही प्राप्त किया है। लोकगीतों की स्निग्ध कथा-रस ने रेणु की कहानियों में अद्भुत पठनीयता भर दी है।"

अपनी आत्म-संस्मरणात्मक कहानी 'रेखाएं : वृत्तचक्र' में एक जगह वे लिखते हैं—"राजनीति करता था, सभाओं में मुख्य वक्ताओं तथा नेताओं के भाषण के पहले, भीड़ को शांत रखने के लिए, गीतों से भीड़ को भुलाए रखने के लिए मेरी जरूरत होती और साथ में घुंघरूवाली खंजनी लेकर मैं मंच पर अलापता हुआ प्रकट होता—'भैया किसनवां हो, दुश्मन तोहार बड़का ज-मीं-दा-आ-आ-र!" रेणु राजनीति करते थे, जो किसानों की चेतना को जगाने वाला था। और, इसमें लोकगीतात्मक शैली में रचे गए उनके गीतों का असर ज्यादा होता था। उन्होंने लोक-जीवन में व्याप्त गीतों के टुकड़ों को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है और कहीं-कहीं लोकगीतों की तर्ज़ पर स्वयं गीत रचकर अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के गीत उनके उपन्यासों और कथा-रिपोर्ताजों में भी बहुतायत में हैं। उनका लोक-गीतों के प्रति यह रुझान शुरू से ही था, जिसका रचनात्मक प्रयोग उन्होंने अपनी कथा-रचनाओं में किया है। इस संदर्भ में उनकी कही हुई यह बात यहां उल्लेखनीय लगती है—"अपने जिले के गांव-गांव घूमा, लोगों से मिला, उनके सुख-दुख से परिचित हुआ।...अपनी सक्रियता के कारण साथियों के साथ गांवों में रात के वक्त भी डेरा डालना पड़ता।...रात में दूर से कभी ढोलक-झांझ पर नाच-गाने की स्वर लहरियां मंडराती आती और मैं अपने साथियों को सोते छोड़ वहां चल देता, कहीं 'विदेशिया', कहीं 'जालिम सिंह सिपहिया' और किसी गांव में 'ननदी-भउजिया' के नाच-गान। मैं नाच देखने से ज्यादा नाच देखने वालों को देखकर अचरज से मुग्ध हो जाता। तब समझा कि हमारे लच्छेदार भाषणों से ज्यादा प्रभाव उस सांस्कृतिक चेतना का होता है, जो उन्हें मुसीबतों में भी गाते रहने के लिए मजबूर किए रहती है। जहां तक बोली और भाषा का प्रश्न है, इन्हीं गांवों में घूमकर भाषा की शक्ति को समझने का मौका मिला।"

रेणु की कथा-संरचना में लोक-भाषा और लोक-गीतों का समावेश लोक-जीवन की संवेदना को विस्तृत रूप में उद्घाटित करता है। यह उनकी रचनात्मक क्षमता को जीवंत और रसग्राही बनाता है। इस तरह परिनिष्ठित हिंदी में प्रयुक्त होकर यह लोक जीवन की भाषा और गीत उसे एक नया कलेवर देते हैं। इस नई सर्जनात्मक भाषा में इससे एक नई प्राणवत्ता का संचार होता है। रेणु की कहानियों में प्रयुक्त गीतों की पंक्तियां कथा-प्रसंगों के अनुसार बदलती रहती हैं। इस प्रकार उनमें वस्तु-विविधता है। यहां आगे, उनके कुछ गीतात्मक प्रयोगों को उद्धृत कर, उन अनेक कथा-प्रसंगों को रखा जा रहा है, जिनके अनुसार उसके विषय बदलते रहते हैं।

'आत्म-साक्षी' कहानी का नायक है गनपत। पहले वह आर्यसमाजी हुआ। वह आर्यसमाजी सभा-मंच पर खंजड़ी बजाकर 'अछूतोद्धार' वाला गीत गाता था—'हिंदुओ! दिल में सोचो-विचारो जरा अपने भाई से नफरत ... !' सन् तीस में इसी गीत को गाने के अपराध में जेल गया। वह 'सरमाजी' नामक कम्युनिस्ट की कृपा से कामरेड बन गया। फिर "जेल से निकलने के बाद सारे जिले में गनपत ही अकेला 'पार्टी कॉमरेड' रहा कई वर्षों तक। एक ही साल में बिहार प्रांत के कई 'किसान फ्रंट' और मजदूर-मोर्चों पर पहुंचकर गनपत ने मेहनतकशों की लड़ाई में साथ दिया, नारा लगाया, धरना दिया, खंजड़ी बजाकर गीत गाए, अछूतोद्धार के बदले सरमाजी का सिखाया हुआ 'अंतर्राष्ट्रीय गीत' गाया—

उग रहा है आफ़ताब, लाल लाल आफ़ताब
जाग रे किसान भाई, जाग, जाग रे मजदूर भाई, जाग!

लेकिन फिर कम्युनिस्ट पार्टी टूटती है और उसके विभक्त दोनों दलों की आपसी रस्साकसी में, गनपत जैसा साधारण आदमी अपमानित, अवहेलित और दरकिनार कर दिया जाता है। गनपत को लगता है—इतने दिनों तक एक 'अंध सुरंग' में वह चल रहा था—बेमतलब, बेकार, अकारथ। गनपत के मन में अचानक 'निरगुन' की एक कड़ी गूंज गई—तेरो जनम अकारथ जाय मूरख ...! हरेक राजनीतिक पार्टी के कर्मठ, ईमानदार, कर्त्तव्यनिष्ठ और निश्छल स्वभाव

के गनपत जैसे कार्यकर्ता की जीवन-भर की साधना, अंत में छले जाकर ऐसे ही बेकार हो जाती है। निरगुन पद की एक पंक्ति, पूरी कहानी की भाव-सत्ता को उजागर कर देती है। 'पुरानी कहानी : नया पाठ' में बाढ़ का आना, जीवन का त्रस्त होना, फिर राजनीतिक पार्टियों की अपनी अवसरवादिता, रिलीफ़-कैम्प आदि का दिलचस्प चित्रण है किंतु, बाढ़ आने के पहले सब कुछ शांत है। एक मनोरम दृश्य है, जिसका चित्रण रेणु काव्यात्मक शैली में करते हैं। ऐसे में एक किसान एक बिरहा अलाप उठता है। रेणु लिखते हैं—"कारी कोसी की शाखा नदियां-पनार, बकरा, लोहन्द्रा और महानदी के दोनों कछारों पर भदई धान, मकई और पटसन के खेतों पर मोटी कूंची से पुता हुआ गहरा हरा रंग! गांवों की अमराइयों और आंगनों में 'मधुश्रावणी' के मोहक गीतों की गूंज! हवा में नव वधुओं की सूखती-लहराती लाल, गुलाबी, पीली चुनरियों की मादक गंध! मड़ैया में लेटे, मकई के दुधिया बालों की रखवाली करने वाले अधेड़ किसान के मन में रह-रहकर एक मीठा पाप जगता है—पाट के खेतों में साग खोंटनेवाली काली-काली जवान मुसहरनियों के झुंड को देखकर। वह विरहा अलापने लगता है, ऊंचे सुर में—

अरे सांवरी सुरतिया पर/ चमके टिकुलिया कि
छतिया पर जोड़ी अनार गे/ छौंड़ी छतिया पर जोड़ी अ-ना-आ-आ-आ-र!
... छौड़ी माने तू बोली हमार गे
छौड़ी माने तू बतिया ह-मा-आ-आ-र!

इस गीत को सुनकर लड़कियां बुरा नहीं मानतीं। वे खिलखिलाकर हंसीं, फिर हंसते-हंसते एक-दूसरे पर गिर पड़ीं—मार मुंहझौंसे बुढ़वा-बानर को! बुढ़ौती में अनार का सौख देखो। यह उल्लास और हास भरा परिवेश बदल जाता है।

रेणु के लिए लोकगीत जितना महत्त्व रखते हैं, उतना ही साहित्यिक गीत। वे दोनों को समतुल्य मानते हैं। उन्होंने विश्वकवि रवींद्र नाथ ठाकुर के प्रसिद्ध गीत—'यदि तोमार डाक सुने केऊ ना आसे, तबे एकला चलो रे' के अंतिम टुकड़े को शीर्षक बनाकर एक पाड़ा यानी भैंसा, जो मानवीय गरिमा से युक्त है, को आधार बनाकर एक अलग ही रंग की कहानी लिखी है।

बूंदाबादी शुरू होती है। मन का हुलास, गले में बरसाती गीत 'बारहमासा' की लय में फूटकर निकल पड़ा—'एहि प्रीति कारन सेतु बांधल सिया उदेस सिर-राम हे-ए-ए-ए !"

फिर कोसी नदी का प्रलयंकारी रूप। भीषण बाढ़। चारों ओर पानी ही पानी। जल-प्रलय। हाहाकार। रेणु ने अपने रचनात्मक गद्य में गीतों का समावेश अद्‌भुत ताल-लय में किया है। अद्‌भुत शब्द और ध्वनि संयोजन।

"निरुपाय, असहाय लोगों ने झांझ-मृदंग बजाकर कोसी मैया का वंदना-गीत शुरू किया। जवानों ने टांगी-कुदाली से बांस की बल्लियों, लकड़ियों को काटकर मचान बांधना शुरू किया।

मृदंग-झांझ के ताल पर फटे कंठों का भयोत्पादक सुर..."कि आहे मैया—कोसका-आ-आ-आ हैय—मैया—तोहरो-चरनवां—में मैया अड़हूल-फूलवा कि हैय-मैया हमहूं चढ़ायब—हैय ...!'

... छम्मक-तक-धिन्ना, धिन-तक-धिन्ना !
... छम्मक-कट-छम, छम्मक-कट-छम !

उतराही—गांव का एकमात्र 'पद्धुआ पागल' हंसता हुआ इसी ताल पर जनकवि नागार्जुन की कविता की आवृत्ति कर रहा है—"ता-ता थैया, ता-ता थैया, नाचो-नाचो कोसी मैया ...!"

और इसी ताल पर नाचती हुई कोसी मैया आई और देखते ही देखते खेत-खलिहान-गांव-घर-पेड़ नाचने लगे। फिर गांव वालों का हाहाकार। करुण क्रंदन। जीवन-रक्षा के लिए संघर्ष। चीख-पुकार। एक अद्‌भुत नाटकीय दृश्य! रेणु अनेक स्वर-ध्वनियों का संयोजन--इसी ताल पर 'ता-ता थैया, ता-ता थैया' के साथ करते हैं। इस बाढ़-लीला-प्रसंग को समाप्त करते हुए वे फिर 'पद्धुवा पागल' को ले आते हैं—"इलाके का 'पढ़वा पागल' आजकल 'निराला' की एक ही पंक्ति को बार-बार दुहराता है—"मिट्टी का ढेला शकरपाला हुआ।" और उधर शरणार्थी बंगाली मल्लाहों के गीत की एक कड़ी, रजनीगंधा के तुनुक कोमल डंठली की तरह टूट-टूटकर बिखर रही है—ओ-रे भा-य-य-य!! तोमारि लागिया-बधुआ-आ-आ कांदे हाय-हाय-उगो पिरित करिया बधुआ मने पस्ताय।

रेणु ने लोक-गीतों के साथ-साथ नागार्जुन और निराला के गीतों की पंक्तियों को संयोजित कर, भीषण आपदा के वातावरण में एक सधे हुए कलाकार की तरह, लोक-जीवन को साहित्यिक गरिमा से मंडित कर दिया है, जिसके कारण एक विलक्षण कथा-कृति का निर्माण हुआ है। रेणु के लिए लोकगीत जितना महत्त्व रखते हैं, उतना ही साहित्यिक गीत। वे दोनों को समतुल्य मानते हैं। उन्होंने विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर के प्रसिद्ध गीत—'यदि तोमार डाक सुने केऊ ना आसे, तबे एकला चलो रे' के अंतिम टुकड़े को शीर्षक बनाकर एक पाड़ा यानी भैंसा, जो मानवीय गरिमा से युक्त है, को आधार बनाकर एक अलग ही रंग की कहानी लिखी है। 'टौंटी नैन का खेल' कहानी में कीर्तन-मंडली के गीतों के कुछ टुकड़ों का प्रयोग हुआ है—

अरे सोचे सियाजी के मैया हो धनु कैसे टुटे।
धाक-धिन्ना ताक-धिन्ना।
गौरी के माई डराओल हो बम भोला के देखिके।

ये कीर्तन के पारंपरिक रूप हैं। कीर्तन में भक्तिपरक गीत गाए जाते हैं। इस कीर्तननिया दलों में एक चिंगारी जी हैं, जो पहले क्रांतिकारी थे, अब आरती देवी के प्रेम में दीवाना हो गए हैं। उन्होंने अपना नाम चंदन रख लिया है। वे अपना बनाया हुआ कीर्तन गा रहे हैं —

अरे नैनों को दरशन सुख दे दो नैनों को .../ अरे नैनों को दरशन सुख दे दो।
मिटे हृदय की साध .../ दरश बिनु नैना है बेकार/ आज मेरे ...

आंगन में चंदन-चर्चित वधु आरती चुपचाप बैठी हुई है। औरतें एक ही गीत गा रही हैं—"रुकमुनी जाइछे ..."। आरती के दादा बूढ़े लामलरैन बाबू का हूक्म है, औरतें और गीत नहीं गा सकती। सिर्फ भगवान का गीत ही चलेगा। वे कहते हैं—रुकमुनी जाइछे ... नहीं-नहीं ... यह गीत नहीं चलेगा। ओ रुक्मिणी का नाम है ? तब तो भगवान का गीत है। यह चलेगा। औरतें गाती हैं—

अरे अच्छा-अच्छा चूड़िया बनावे रे भइया लहेरिक/ रुकमिनी जाइछे ससुराल!
अरे ऐसना चोलिया बनावे रे दरजिया कि/ छतिया पर जोड़ो रे अनार!

यह शादी के अवसर पर ग्रामीण औरतों का बनाया हुआ अपना गीत है। उधर चन्दनजी ने आरती को प्रेम-पत्र लिखा, कविता में—

तुम मीरा गिरधर की दासी/ चंदन तेरा दास / करो मत मुझको प्रिये निराश !

इस तरह इस कहानी में भक्ति-गीत, शृंगारिक गीत के साथ-साथ प्रेम-कविता का सुंदर मिश्रण है। इन सभी गीतात्मक पंक्तियों का प्रयोग कहानी में बारीकी से गूंथकर किया गया है। रेणु की एक शब्द-चित्रात्मक कहानी है—'दिलबहादुर दाय', जो एक नेपाली गोरखे के चरित्र को केंद्र में रखकर लिखी गई है। दिलबहादुर कहता है—"घर से निकलो और अंगरेज़ सरकार का 'इंदरजाल' देखो—

धन-धन अंगरेज़ी सरकार !
पानी मा जहाज चलाए को/ आकाश मा जहाज उड़ाए को !

यानी पानी और आकाश में जहाज चलाता है, वह अंग्रेज़ी सरकार 'धन्य' है।" वह झयाउरे नामक नेपाली लोकगीत गाता है—

यो झिल्को झलमती राती
कोई छै न साथी/
जानू छ मलाई टाढ़ा ...।

1945 में प्रकाशित कहानी 'रखवाला' भी नेपाली पृष्ठभूमि की कहानी है। इसमें भी नेपाली लोक-गीतों के कुछ टुकड़े कहानी में पिरोए हुए हैं। इस कहानी के शीर्षक को प्रतिध्वनित करने वाली लोकगीत की ये दो पंक्तियां हैं—

(वह) बैठी-बैठी गीत की एक कड़ी गुनगुना रही थी—
तिमीत आयो लखन, दाज्यु लाय कहां छोड़े ?

(तुम तो आए लक्ष्मण, पर भाई को कहां छोड़ आए?) कि पिछवाड़े से (रखवाले ने) गाकर उत्तर दिया—'दाज्यु त गए मृगा पछि, में जाए तिन्नो रखवारे!"

(भाई तो हिरण के पीछे गए, मैं तुम्हारी रखवाली करने आया हूं।)

इस लोक-गीत की संवेदना, कहानी के मुख्य स्वर को प्रगाढ़ करती है।

रेणु की प्रसिद्ध कहानी 'रसप्रिया' में विद्यापति-पदावली की अनेक पंक्तियों का गायन है। रेणु ने इस कहानी में कुछ गीतों के टुकड़े प्रस्तुत किए हैं। विद्यापति के पदों की गायन-कला ही रसप्रिया है। मोहना जैसे लड़के की खोज में ही मानो मिरदंगिया भटक रहा था। शुद्ध रसप्रिया गाने वाला आज भी कोई है, देखकर उसे संतोष होता है। अब उसका मन निरगुन गाने को होता है। रेणु लिखते हैं—"अब से मैं पदावली नहीं, रसपिरिया नहीं, निरगुन गाऊंगा! देखो, मेरी ऊंगली शायद सीधी हो रही है। शुद्ध रसपिरिया कौन गा सकता है आजकल? ...

अरे, चलू मन, चलू मन - ससुरार जइबे हो रामा
कि आहो रामा,
नैहिरा में अगिया लगायब रे की ...

निर्गुण वाणी में इस लोक-जीवन को 'नैहर' और ईश्वर मिलन को 'ससुराल' माना गया है। मिरदंगिया के मन में निरगुन के प्रति लगाव का हो जाना, उसके विरक्त मन को दर्शाता है। रसप्रिया जीवन से लगाव और प्रेम से सराबोर हृदय रखने वालों को अपनी ओर खिंचता है। 'रसप्रिया' कहानी में इन दोनों भावों का समन्वित उपयोग है। मिलन और विछोह की अनेक स्वर-लहरियां रेणु की कहानियों में आती रहती हैं। इनकी अभिव्यक्ति कभी-कभी गीतों के टुकड़ों के रूप में हुई है। 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम' कहानी में गीतों के मुखड़े सबसे ज्यादा हैं। इनका फिल्मीकरण करते हुए शंकर शैलेंद्र ने विस्तार दिया है। ये गीत कथा के प्रवाह के साथ इस प्रकार बहते रहते हैं कि वे उसकी भावधारा और संगीतात्मकता को और भी प्रगाढ़ करते हैं।

हिरामन का मन दरअसल रेणु का अपना मन है। इस मन में लोक-गीतों की पंक्तियां गूंजती रहती हैं। वे एक जगह लिखते हैं—"कहानी या उपन्यास लिखते समय थकावट महसूस होती है अथवा कहीं उलझ जाता हूं तो कोई ग्राम-गीत गुनगुनाने लगता हूं। ... इस समय एक बरसाती गीत गाने को जी मचल रहा है—भादव मास भयंकर रतिया-या-या, पिया परदेश गेल धड़के मोर छतिया-या-या, कैसे धीरा-आ-आ-आ, कैसे धीर धरौं मन धीरा—आसिन मास नयन ढरै नीरा-आ-आ-आ ..!!" एक जगह वे लिखते हैं—"मैं लोक-गीतों की गोद में पला हूं। इसीलिए हर मौसम में मेरे मन के कोने में उस ऋतु के लोकगीत गूंजते रहते हैं। मैं कहीं भी रहूं —इन लोकगीतों की स्मृति-ध्वनियां मुझे अपने गांव में—कुछ क्षण के लिए पहुंचा देती है।" रेणु का यही मन—जो लोकगीतों से रचा है, हिरामन का भी है। रेणु की तरह हिरामन भी सुरजीवी है। रेणु लिखते हैं—"हिरामन का मन आज हल्के सुर में बंधा है। उसको तरह-तरह के गीतों की याद आती है। बीस-पच्चीस साल पहले, विदेशिया, बलवाही, छोकरा-नाच वाले एक-से-एक गजल-खेमटा गाते थे। अब तो, भोंपा में भोंपू-भोंपू करके कौन गीत गाते हैं लोग। जा रे जमाना! छोकरा-नाच के गीत की याद आई हिरामन को—सजनवा बैरी हो गए हमारो! सजनवा ...! अरे, चिठिया हो तो सब कोई बांचे, चिठिया हो तो ...।"

यह गीत हिरामन को क्यों पसंद है। क्यों यह विरह व्यथा भरी गीत-पंक्तियां वह हृदय से गाता है क्योंकि उसका जीवन भी अकेलेपन में गुज़र रहा है। उसकी कोई जीवन-संगिनी नहीं। उसकी भी शादी हो—उसने बार-बार सपना देखा है। वह अपनी दुलहिन को लेकर लौट रहा है। गांव के सारे बच्चे तालियां बजाकर गा रहे हैं। हर आंगन से झांककर देख रही हैं औरतें। उसकी दुलहिन डोली का परदा सरकाकर देखती है।

लाली-लाली डोलिया में/लाली रे दुलहिनिया!

बच्चों द्वारा गाया जाने वाला यह गीत इस तरह हिरामन के जीवन-संदर्भ से जुड़ा है। 'सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है। नहीं हाथी, नहीं घोड़ा, नहीं गाड़ी... वहां पैदल ही जाना है।'—गीत हिरामन के सच्चाई पर चलने के संकल्प को दर्शाता है, जो एक संवेदनशील, पारदर्शी, निर्मल चरित्र का मनुष्य का द्योतक है। हीराबाई को ऐसा मनुष्य पहली बार मिला है। उसके जीवन में कामी-लोलुप लोग ही मिलते हैं। हिरामन जैसा निश्छल आदमी कहां मिलता है? इसलिए बहुत जल्दी ही हीराबाई ने परख लिया कि हिरामन सचमुच हीरा है। हीराबाई भी एकांगी है परंतु उसका मन भी कोमल है। उसे भी हिरामन की तरह गीत और कथा दोनों का शौक है। वह हिरामन से अपने गांव की बोली में गीत सुनने का आग्रह करती है। हिरामन उसे महुआ घटवारिन की गीत-कथा सुनाता है—हे-अ-अ-अ सावना-भादवा/के-र उमड़ल नदिया-गे मै यो-ओ ओ/ मैयो गे रैनि भयावनि-हे-ए-ए-ए/ तड़का-तड़के धड़के करेज—आ-आ मोरा/ कि हमहुं जे बार-नान्ही रे-ए-ए ...।

इस लोक-गीत का गद्यानुवाद—"ओ मां, सावन-भादो की उमड़ी हुई नदी, भयावनी रात, बिजली कड़कती है, मैं बारीक्वारी, नन्हीं बच्ची, मेरा कलेजा धड़कता है। अकेली कैसे जाऊं घाट पर! हिरामन के इस गीत-कथा को हीराबाई मग्न होकर हिरामन को एकटक देखती हुई सुन रही है। हिरामन को हीराबाई की खोई हुई सूरत एकदम भोली लगती है। यही उसका असली चेहरा और रंग-रूप है। हिरामन ने गले में कंपकंपी पैदा कर गीत को आगे बढ़ाया—

हूं-ऊं-ऊं डाइनियां मैया मोरी-ई-ई
नोनवा चटाई काहे नाहि मारलि सौरी घर-अ-अ
एहि दिनवां खातिर छिनरो धिया
तेहू पोसलि कि नेनू-दूध उटगन।

हीराबाई इस गंवई गीत की 'भाखा' भी समझती है। 'उटगन' माने-उबटन-जो देह में लगाते हैं। वह हिरामन को पहले गुरु मानती है, फिर उस्ताद भी मान लेती है। वह कहती है कि हमारे 'शास्तर' में लिखा हुआ है, एक 'अच्छर' सिखाने वाला भी गुरु और एक राग सिखाने वाला भी उस्ताद! हीराबाई के लिए हिरामन भाई भी है, मीता भी, गुरु भी, उस्ताद भी। यह एक ऐसा प्रेम-संबंध है, जो बेहद ऊंचाई पर स्थित है जिसमें मानवीय संवेदना की पराकाष्ठा है लेकिन यह संबंध चिरस्थाई नहीं है। गुलफाम ही ऐसे संबंधों में पड़ते हैं और मारे जाते हैं। गुलफाम अर्थात् फूल की तरह निर्मल, पवित्र चेहरे वाले—हिरामन और हीराबाई संवेदना के धरातल पर ही मारे जाते हैं अर्थात् बिछड़ते हैं और आहत् होते हैं। "अजी हां, मारे गए गुलफाम!" हीराबाई रोते हुए क्यों गा रही थी? दूसरा गुलफाम हीरामन उस समय यह समझ नहीं पाता, पर कहानी के अंत में यह गीत उसकी अंतरात्मा से मानो प्रकट होता है और पूरी कहानी की अर्थवत्ता को उजागर कर देता है। 'तीसरी कसम' में कथा-तत्त्व के ताने-बाने में उसमें प्रयुक्त गीतों की अहम् भूमिका है। इसके कारण यह कहानी काव्यात्मकता और संगीतात्मकता से परिपूर्ण होकर मन पर अद्भुत प्रभाव छोड़ती है। यह कालजयी कहानी है, जिसे जितनी बार पढ़ा जाए, उतनी ही अनुपम लगती है। रेणु ने 'ना जाने केहि भेष में' तथा 'अग्नि संचारक' नामक दो कहानियां कवि-पात्रों को लेकर लिखी है। ये दोनों कवि-पात्र ऐसे हैं, कि लोग उन्हें देखकर ही भाग जाएं। उनकी कविताएं हास्य पैदा करती हैं। एक कवि हैं श्री भैरो प्रसाद 'भौंरा' और दूसरे अग्निबोध जी। भौंराजी ने महाकाव्य लिखा है—'गुनगुनायन'। वे हर शब्द के ऊपर अनुनासिक चिह्न लगाते हैं। वे बोलते भी ऐसा ही हैं। उपन्यास को 'उपनिन्यास'। उनकी काव्य-पंक्तियां हैं —

हर कली में सो रहा हैं भौंरे का मधुर गान—
आंज मैं जगा रहा हूं सुप्त तान गुप्त गांन
गुनगुनगुन मंधुर-मधुर
अंगर मेरे गीत सुनो
समर को हो जाओ तैयार देश के जवान।

निस्संदेह रेणु की कहानियों में यह एक अलग स्वर है, जो अद्भुत हास्य की सृष्टि करता है। 'अग्नि-संचारक' कहानी के अग्निबोध जी अपनी आग-मार्का कविताएं सुनाते हैं और अंत में वे 'लाइटर' बेचते हुए नज़र आते हैं। फिर एक हास्यास्पद वातावरण की सृष्टि हो जाती है। इस तरह की हल्की-फुल्की कहानियों में कहीं-न-कहीं दबा हुआ एक व्यंग्यात्मक स्वर भी है, जो एक भोजपुरी भाई के 'सरवा अगिन-बोटवा' संबोधन से सहज ही प्रकट हो जाता है। रेणु की कहानियों में जिस तरह लोक-भाषा के विभिन्न रूप आकर, साहित्यिक कथा-भाषा में, एक नई रचनात्मकता का उद्रेक करते हैं, उसी तरह गीतों के विभिन्न स्तर के टुकड़े, कथानक में विन्यस्त होकर, कथा के प्रवाह और वातावरण को एक सांगीतिक लय प्रदान करते हैं। ये ऊपर से जोड़े गए नहीं हैं। इनका संदर्भ भी है और अर्थ भी। ❑

संपर्क : यशवंत नगर, मार्खम कॉलेज के निकट, हज़ारीबाग-825301 (झारखंड)

कविता और संगीत का अंतर्संबंध

नंदकिशोर नंदन

कविता और संगीत के अंतर्संबंधों की प्राचीनता यह तो सिद्ध करती ही है कि वे एक-दूसरे के पूरक की भूमिका में रहे हैं बल्कि यह भी सर्वमान्य है कि दोनों कलाएं मिलकर न केवल एक-दूसरे के सौंदर्य को निखारती चलती हैं अपितु उनसे मिलनेवाली आनंद की अनुभूति लोकोत्तर और चिरस्थायी होती है। इसके बावजूद दोनों कलाएं अपनी स्वतंत्र प्रकृति और मौलिक पहचान निरंतर बनाए रखती हैं। यह इसलिए संभव हुआ है कि दोनों कलाओं के उत्स भिन्न रहे हैं। यदि शब्दों की वर्णात्मकता कविता का उत्स है तो शब्दों की ध्वन्यात्मकता संगीत का। इसलिए दोनों की पारस्परिकता दोनों कलाओं के स्वतंत्र प्रस्फुटन में कहीं बाधक नहीं होती है। वे एक-दूसरे से पृथक अपना वैशिष्ट्य सदैव अक्षुण रखती है। दोनों कलाओं की इसी विलक्षण आंतरिक एकता को विश्व कवि रवींद्रनाथ टैगोर ने इन शब्दों में रेखांकित किया है, ''छंदों में, शब्दों में, वाक्य-विन्यास में काव्य को संगीत का आश्रय लेना ही पड़ता है। जिसे किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता, उसे संगीत का आश्रय लेना ही पड़ता है। जिसे किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता, उसे संगीत के द्वारा ही कहना पड़ता है। जो वस्तु अर्थ का विश्लेषण करने पर अत्यंत सामान्य प्रतीत होती है, वही संगीत के द्वारा असामान्य हो जाती है। अतएव चित्र, संगीत ही काव्य के प्रधान उपकरण हैं। चित्र भाव को आकार देता है और संगीत भाव को गति प्रदान करता है। चित्र देह है और संगीत प्राण है।'' स्पष्ट है कि कविता और संगीत का यह अंतर्संबंध नैसर्गिक और अनिवार्य रहा है, जिसका सुंदर प्रमाण वैदिकयुगीन काव्य से आज तक की काव्य-यात्रा के साथ संगीत की सहज उपस्थिति है।

मनुष्य की सभ्यता-यात्रा के साथ ही कलाएं भी विकास-यात्रा करती हैं। इसलिए कविता और संगीत के अंतर्संबंधों की भी विकास-यात्रा साथ-साथ चलती रही है। यही कारण है कि वैदिक-युग की कविता और आधुनिक युग की प्रयोगशील कविता में इतना अधिक अंतर है। यही बात संगीत की दीर्घकालीन यात्रा में भी परिलक्षित होती है। उदाहरण के रूप में यह तथ्य स्मरणीय है कि वैदिक काल तक मात्र तीन स्वरों का प्रचलन था—षड्ज, ऋषभ और गांधार। नवीं सदी तक सात सुर प्रचलित हो चुके थे। काव्य और संगीत की अंतरंगता के दर्शन सर्वप्रथम ग्यारहवीं सदी के कवि-गायक जयदेव की कविता में होता है। उसके बाद हिंदी के पहले कवि अमीर खुसरो के काव्य में कविता और संगीत के अंतर्संबंध सुस्पष्टता के साथ दिखलाई पड़ते हैं। श्रीकृष्ण गोपाल वानखड़े गुरुजी के मतानुसार, ''अमीर खुसरो ने और कुछ भी अगर न किया होता तब भी सितार के जन्मदाता के रूप में भारतीय इतिहास में उनका नाम अमर होता। भारतीय वीणा और ईरानी तंबूरे का मिश्रण करके उन्होंने एक वाद्य यंत्र बनाया, जिसे हम 'सितार' के नाम से जानते हैं। एक किंवदंती के अनुसार प्राचीन मृदंग का आकार बदलकर, उन्होंने तबले को जन्म दिया। शास्त्रीय संगीत को 'ख़याल' प्रकार तथा सुर की गहराई से उभरता हुआ 'तराना' उन्हीं का योगदान है।''[2] उनकी कविता और संगीत का आंतरिक संबंध उनके पदों और दोहों में भी साफ़ तौर पर दिखलाई पड़ता है। जयदेव से लेकर विद्यापति तक के पदों में परिव्याप्त सांगीतिकता भी कविता और संगीत के अंतर्संबंधों के गहरे होते जाने का प्रमाण है। मध्यकाल के भक्त-कवियों के संपूर्ण काव्य में संगीत अनिवार्य रूप से विद्यमान है, जिसकी पुष्टि इस बात से होती है कि प्रायः हर पद किसी न किसी राग पर आधारित है। कबीर, सूर, तुलसी और मीरा उनके पदों की सांगीतिकता का आधार विभिन्न प्रकार के राग हैं। इस युग की संपूर्ण कविता लोककंठों और स्मृतियों के बल पर काल का अतिक्रमण करते हुए अमिट शिलालेख बन गई है, और आज भी विशाल जन-समूह की जीवन-यात्रा को अनुप्राणित कर रही है तो इसका एक महत्वपूर्ण कारण कबीर और संगीत की आंतरिक सन्निकटता है। निःसंदेह कविता और संगीत का समतोल ही एक उत्कृष्ट गीत-कविता को जन्म देता है। जहां दोनों कलाओं में एक-दूसरे पर अपनी वर्चस्व सिद्ध करने की होड़-सी होती है वहां कभी कविता अपनी श्रेष्ठता खो देती है तो कभी संगीत। दोनों की संतुलित एकतानता मध्ययुगीन काव्य की विशेषता रही है।

यहां यह स्पष्ट कर देना वांछित है कि जिस प्रकार छंदों की अपनी प्रकृति होती है, उसी प्रकार रागों की भी अपनी प्रकृति होती है। उदाहरणार्थ मंदाक्रांता छंद विरहजनित वेदना की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त माना जाता है तो पंचचामर छंद अभियान की गति के अनुरूप वीर-भाव की व्यंजना के सर्वथा अनुकूल है, वैसे ही संगीत में अलग-अलग राग अलग-अलग भावों अथवा मनोदशा की मार्मिक अभिव्यक्ति के अनुरूप माने गए हैं। डा. मदन मोहन प्रसाद वर्मा पूर्णेंदु ने अपनी महत्त्वपूर्ण शोधकृति 'कला विवेचन के संदर्भ में मध्युगीन हिंदी काव्य' में इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है— ''संगीत का भावों से गहरा संबंध है। विशेष भाव को उद्दीप्त करने के लिए विशेष प्रकार के राग का उपयोग होता है। भावाव्यंजन संगीत का चरम लक्ष्य है। रागों में बिंबोत्पादक क्षमता होती है। प्रत्येक राग में विभिन्न स्वरों का सम्मिश्रण उस राग में प्रयुक्त प्रभाव स्वरों के आधार पर ही किया जाता है। तोड़ी, भैरवी, असावरी गौरवाणी, वसत, मोहन, पूर्व कल्याण, हुसेनी, विहागड़ा आदि विभिन्न राग, विभिन्न कोमल कठोर, हर्ष-विषाद और सूक्ष्म मनोदशाओं के भाव-बिंबों के सर्जक हैं।''[3] तात्पर्य कि मध्यकाल से ही कवियों ने अपने पदों-गीतों में व्यक्त अनुभूतियों के अनुरूप ही उन्हें राग-रागिनियों में निबद्ध किया है।

कबीर, सूर, तुलसी और मीरा के पदों के रागाधारित स्वरूप के विवेचन से कविता और संगीत के गहरे रिश्ते को आसानी से समझा जा सकता है। राग खमाच में निबद्ध कबीर के पद 'भजौ रे भैया राम गोविंद हरी' को कुमार गंधर्व ने ऐसी तन्मयता के साथ गाया है कि कबीर की अनुभूति सजीव हो उठी है। इसी पद को सुब्बालक्ष्मी ने राग खमाच में एक अलग रूप दिया है, जो कम लोकप्रिय नहीं है। अपने अपूर्व गायन के साथ कबीर को प्रस्तुत करने के लिए कुमार गंधर्व ने ऐसी साधना की और उन्होंने कबीर के पदों को ऐसे नए सांगीतिक आयाम दिए कि कबीर स्वयं मूर्तिमान हो उठे हैं। कबीर के ही 'बाबुल मोरे नैहर छूटोहि जाय' को कुंदल लाल सहगल ने ऐसी मार्मिक गहराई के साथ गाया है कि उसे कोई दूसरा गायक वह गहराई नहीं दे पाया है। इसी तरह कबीर की प्रस्तुति में मन्ना डे ने भी 'धोबिया जल बिच मरत पियासा' और 'मन लागो मेरो यार फकीरी में' ऐसी अनुभूतिजन्य मार्मिक स्वर दिया है कि कविता और संगीत एक-दूसरे में मिलकर एक हो गए हैं। सूरदास के पदों में भी कविता और संगीत का अंतर्सौंदर्य देखते-सुनते बनता है। सूरदास जितने बड़े कवि हैं, उतने ही बड़े संगीतज्ञ भी। उनके स्वर-माधुर्य से प्रभावित हो वल्लभाचार्य ने उन्हें दास्यभाव की भक्ति छोड़कर कृष्ण-लीला का गान

करने के लिए प्रेरित किया था। यह भी कहा जाता है कि एक बार तानसेन ने अकबर के सामने एक पद गाया तो मुग्ध भाव से अकबर ने पद के सर्जक कवि का नाम पूछा था, तब तानसेन ने जो नाम बतलाया, वह सूरदास का ही था। कविता और संगीत का गहरा अंतर्संबंध सूर के पदों में भली-भांति परिलक्षित होता है। प्रायः सभी पदों के साथ उनकी रागिनियों का स्पष्ट उल्लेख है। उदाहरणार्थ यहां कतिपय पदों की उन रागिनियों का उल्लेख करना अपेक्षित होगा जिनके आधार पर उन्हें गाने से कवित्व और संगीत का अपूर्व आनंद पुष्प की सुगंध के समान अपनी संपूर्ण आभा के साथ प्रस्फुटित होता है। पंडित ओंकारनाथ ठाकुर ने सूर के पद 'मैया मोरि मैं नहि माखन खायो' की जिस गहरी संवेदना को अपने स्वर के अद्भुत आरोह-अवरोह के साथ प्रस्तुत किया है, वह शास्त्रीय-संगीत के इतिहास की विलक्षण घटना है। इसी पद को कई अन्य गायकों ने भी गाया है, लेकिन वह गहराई नहीं आ सकी है। पंडित जी ने 'मैया' शब्द को ही जितने रूपों में गाया है, उसने बाल कृष्ण की अंतर्वेदना को उतने और अलग रूपों में सजीव कर दिया है। यह पद राग तिलक पर आधारित है। सुधा मल्होत्रा ने 'मधुकर इतनी कहियो जाय' पद में गोपियों की वेदना को संपूर्णतः सजीव कर दिया है। यह पद राग मलार पर आधारित है जो वेदना अथवा करुणा की व्यंजना के सर्वथा अनुकूल माना जाता है। राग सारंग पर आधारित 'निसदिन बरसत नैन हमारे' को स्वर-कोकिला लता मंगेशकर ने गाकर गोपियों की विरह-वेदना की अश्रुप्लावित मनोदशा को वर्षा की बूंदों के साथ एकाकार कर दिया है।

कृष्ण-प्रेम की दिवानी मीरा के सभी पद सांगीतिक चेतना की दृष्टि से अनुपम हैं। भारतीय संगीत के अनुलंघ्य शिखर डी.वी. पलुस्कर के स्वर में गाए 'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो' और 'चलो मन गंगा यमुना तीर' संगीत और कविता की एकता के विरल उदाहरण हैं। जब सीताराम हरिदाण्डेकर इन्हीं गीतों को गाते थे तो लगता था मानो स्वयं पलुस्कर साहब गा रहे हैं।

मध्यकालीन कवियों के काव्य-संगीत की यह यात्रा आधुनिक युग में भी अपना विस्तार करती है और भारतेंदु से लेकर निराला, महादेवी, नेपाली, नरेंद्र शर्मा और बच्चन की कविताओं में अपने-अपने ढंग से प्रकट हुई है। भारतेंदु में मध्यकालीन कवियों के समान ही कविता और संगीत का अद्भुत समन्वय हुआ है। भारतेन्दु ने सूर-तुलसी के समान पद शैली की कविताएं लिखी हैं जो संगीत पर आधारित हैं। उनके कवित्तों और सवैया में संगीत जैसी लयात्मकता है। 'ब्रज की लता-पता मोहिं कीजै' जैसे पद गायकों के सुर में बंधकर और मधुर हो उठे हैं। आधुनिक युग में निराला ही एक मात्र ऐसे कवि हैं जो कविता और संगीत-शास्त्र दोनों ही में एक समान निपुण हैं। इस दृष्टि से वही गीत-सम्राट हैं। यह बात बेतुकी है कि जानकीवल्लभ शास्त्री निराला से बड़े गीत-कवि हैं क्योंकि उन्होंने संख्या में निराला से अधिक गीत लिखे हैं। कोशिश तो शास्त्रीजी ने भी की कि वह निराला के समान ही संगीत की शिक्षा प्राप्त कर उनके समान कविता और संगीत के अंतर्संबंधों को अपने काव्य में चरितार्थ करें। निराला की 'सरस्वती वंदना' हो या 'नयनों के डोरे लाल गुलाल' प्रायः अपने सभी प्रमुख गीतों की स्वर-लिपि वह स्वयं तैयार करते थे। कविता और संगीत के संबंधों के प्रसंग में रवींद्र और निराला के दृष्टिकोण में समानता रही है जबकि जानकीवल्लभ शास्त्री कविता में संगीत के महत्व को अस्वीकार ही नहीं करते, उसका विरोध भी करते हैं। "मेरा मन संगीत की वह तर्क-हीन प्रतिष्ठा सह नहीं पाता। कारण, मैं देखता हूं कि जिस प्रकार कवि द्वारा उद्भासित भाव संगीत से संवेद्य बनते हैं, उसी प्रकार संगीत के सुरों से किसी भी प्रकार व्यंजित न होने वाले भाव-काव्य में स्पष्ट और मर्मस्पर्शी हो जाते हैं।"[1] कदाचित् यही कारण है कि शास्त्रीजी के गीत न तो कवित्व की दृष्टि से निराला के आस-पास ठहरते हैं और न ही वे गीत नेपाली तक की भी समकक्षता पा सके हैं। संगीत कविता को किस गहराई और मार्मिकता से व्यक्त करता है, इसे देखना हो तो संगीतकार जयदेव के संगीत में निबद्ध मन्ना डे के स्वर में प्रस्तुत बच्चन की 'मधुशाला' को सुनना चाहिए। दोनों कलाओं में से किसी एक के प्रति अतिरिक्त आग्रह दूसरे के प्रति दुराग्रह बन जाता है। नेपाली के गीतों की अतुलनीय लोकप्रियता का प्रमुख कारण कवित्व और संगीत का मणिकांचन संयोग है। उनके अधिकांश गीतों में अंतर्निहित संगीतात्मकता इतनी नैसर्गिक है कि श्रोता के हृदय में संवेदना सजीव हो उठती हैं—'जनम-जनम मैंने भी ओढ़ी', 'कहां प्रेम जल में', 'मैं प्यासा भृंग जनम-भर का', 'कितनी पीर भरी तुमने प्यार में', 'तन का दिया प्राण की बाती', जैसे सैकड़ों गीत आज भी करोड़ों के कंठहार हैं।

फिल्म-संगीत के सौ वर्षों का इतिहास भी कविता और संगीत की पारस्परिकता का प्रमाण है। श्रेष्ठ कवियों ने फिल्मों को कवित्वपूर्ण गीत दिए हैं जिन्हें संगीतकारों और गायकों ने अपनी प्रतिभा और साधना के बल पर सर्वकालिकता प्रदान की है। नरेंद्र शर्मा के गीत "ज्योति कलश छलके" (भाभी की चूड़ियां) और सत्यम् शिवम् सुंदरम्, नेपाली के गीत—'दूर पपीहा बोल रात आधी रह गई (गजरे), 'रहूं कैसे मैं तुझको निहारे बिना (तुलसीदास), मुझे तो शिवशंकर मिल गए (शिवभक्त) जैसे दर्जनों गीतों ने कविता-संगीत की समीपता को प्रमाणित किया है। प्रदीप, इंदीवर और शैलेंद्र के फिल्मी गीत भी इस कथन की पुष्टि करते हैं। साहिर, मजरूह, कैफ़ी जैसे शायरों के गीतों में भी कवित्व और संगीत एक होकर लोककंठ का शृंगार बने हुए हैं।[5]

इस संक्षिप्त विवेचन के आलोक में यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि कविता संगीत से जुड़कर न केवल अपनी संवेदना को गहराई और व्यापकता प्रदान करती है बल्कि अपना क्षेत्र विस्तार करती है। कविता और संगीत के संबंध को प्रतिपादित करते हुए निराला जहां यह कहते हैं—"जैसे बाग की बंधी और वन की खुली हुई प्रकृति—दोनों ही सुंदर हैं, पर दोनों के आनंद तथा दृश्य दूसरे-दूसरे हैं। जैसे आलाप और ताल की रागिनी। इसमें कौन अधिक आनंदप्रद हैं, यह बतलाना कठिन है, पर इसमें संदेह नहीं कि आलाप, वन्य प्रकृति तथा मुक्त काव्य स्वभाव के अधिक अनुकूल हैं।" वहीं प्रख्यात कवि-आलोचक टी.एस. इलियेट The Music of Poetry में यह कहे बिना नहीं रहते—"शब्द-संगीत और अर्थ-संगीत अविच्छेद है और काव्य-संगीत शब्द-संदर्भ और पारंपरिक संबंधों पर निर्भर है।" कदाचित् इसीलिए प्रयोगवाद और नई कविता के युग में गीत विद्या को अज्ञेय द्वारा मृत घोषित करने पर नेपाली ने यह अचूक टिप्पणी की थी :

लाख चला अतुकांत गद्य लो युग-कविता के वेश में
चल न सकेगा नीरस पद तुलसी-मीरा के देश में।

संदर्भ-ग्रंथ

1. टैगोर का साहित्य-दर्शन, अनुवादक : राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1956, पृष्ठ-65, 2. हमारे मुस्लिम संत कवि, कृ.गो. वानखड़े गुरुजी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 19-20, 3. कला विवेचन के संदर्भ में मध्ययुगीन हिंदी-काव्य, डा. मदन मोहन प्रसाद वर्मा, पूर्णेंदु, पब्लिशर्ज एण्ड एडवर्टाइजर्ज, दिल्ली-51, प्रथम संस्करण 1998, पृष्ठ संख्या 685, 4. अनकहा निराला, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, संस्करण 2003, पृष्ठ संख्या 196, 5. 'वर्तमान साहित्य' (सदी का सिनेमा), अगस्त-दिसंबर 2002, पृष्ठ संख्या 331, 6. परिमल, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 8-9, 7. Selected Prose : The music of poetry : T.S. Eliot, Page 53-54

❑

संपर्क : हरीतिमा, चौधराईन मंदिर गली, नयाटोला, मुज़फ़्फ़रपुर-842001 (बिहार)

नदियों से हमारा संबंध

क्षमा शर्मा

करीब पचास साल से ऊपर हुए होंगे। गांव में जब सारा परिवार आंगन में सोता था तो मां कहती थी कि अरे उधर पांव मत करो, उधर गंगा जी हैं। पाप लगेगा। गंगा की तरफ़ पांव करके सोना मना था। बचपन में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गांवों में इस लेखिका ने देखा था कि लोग अपनी चारपाई का सिरहाना उस दिशा में रखते थे जिधर से गंगा बहती थी। गंगा की तरफ़ पैर करके सोना बुरा माना जाता था। हर बात पर यह सुनाई देता था—हे गंगा मइया रक्षा करना। हे गंगा मइया हमारी भूलों को माफ़ करना। यात्रा करते वक्त जब यमुना के पुल से गाड़ी गुज़रती थी तो पूजा के रूप में उसमें पैसे फकने की परंपरा थी। यही नहीं हर शुभ कार्य से पहले तुलसी के पत्तों से गंगाजल का छिड़काव एक अनिवार्य घटना होती थी। नदी माने ईश्वर देवी का अंश। इसीलिए शायद हमारे यहां नदियों के मंदिर भी बनाए गए। नदियों के नाम के आगे जी लगाने की परंपरा आज तक भी कायम है। जैसेकि गंगा जी, यमुना जी, नर्मदा जी।

गंगा की सफ़ाई के लिए वर्तमान सरकार ने अलग से मंत्रालय बनाया है और नमामि गंगा योजना शुरू की गई है। यमुना के लिए भी नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल की पहल पर मैली से निर्मल यमुना कार्यक्रम शुरू किया जा रहा है। हालांकि अब तक गंगा और यमुना सफ़ाई योजनाओं पर अरबों रुपये ख़र्च हो चुके हैं मगर अब भी इन नदियों के प्रदूषण-स्तर में कोई ख़ास सुधार नहीं हुआ है।

पूरे भारत में इसी प्रकार की भावनाएं जन मानस में अन्य बहुत सी नदियों को लेकर हैं। पूरी दुनिया में नदियों के प्रति इतना प्रेम शायद ही कहीं देखने को मिले क्योंकि नदी को 'सदानीरा' भी कहते हैं यानि कि उसमें हमेशा जल होता है। जीवन का स्रोत जल जहां हमेशा मिलता हो उस नदी को कैसे भूला जा सकता है। नदियां हमारी मां सरीखी होती हैं। हमसे बिना कोई उम्मीद किए हमारे जीवन की रक्षक। इसीलिए उन्हें 'मां' कहकर पुकारते हैं। गंगा मइया यमुना मइया। मातृशक्ति का प्रतीक। पालने-पोसने वाली। एक, दो, दस पीढ़ी, हज़ारों-हज़ार पीढ़ियों की पालनकर्ता, जीवन की अबाध चलती चली आई डोर का पहला सिरा। जल देने वाली जिसके बिना एक पल भी आदमी तो क्या पेड़, पशु-पक्षी ज़िंदा नहीं रह सकते। नदियां मां की तरह ही बदले में हमसे कुछ नहीं मांगतीं इसलिए हम हमेशा उन्हें भूले रहते हैं। बुढ़ापे में मां जिस तरह बोझ लगने लगती है, उसी तरह नदी का पूरा दोहन करने के बाद भी उसे हम बोझ समझते हैं। इसीलिए तो कभी कुछ पल रुककर उनकी हालत के बारे में कुछ नहीं सोचते।

नदी कभी न रुकने वाले पानी का स्रोत है। पानी का महत्व भारतीय समाज में इस बात से ही समझा जा सकता है कि लोगों ने जीवन देने वाले जल को भगवान का दर्जा दिया। नदी तो संपूर्ण रूप में देवियां थीं ही उनमें भरा जल भी ईश्वर का एक रूप था। जिस तरह आसमान और पातालों के देवों की कल्पना की गई, उसी तरह जल में रहने वाले देवता को भी आहूत किया गया। जल का देवता वरुण माना गया। वह पानी में ही रहता है। इस देवता का महत्व भी उतना ही है जितना कि आकाश से बरसने वाले पानी के देवता इंद्र का।

बारिश, नदी और समुद्र जैसे एक-दूसरे के पूरक हैं। समुद्र का पानी नदियों तक लंबी यात्रा करके आता है। नदियों में बहता मीठा पानी रास्ते-भर के लवणों को समेटते हुए समुद्र तक पहुंचते-पहुंचते खारा हो जाता है। इसे पिया नहीं जा सकता। फिर वह वाष्प के रूप में बादल बन जाता है। ये बादल मीठे पानी की सौग़ात लाते हैं। बादल बरसते हैं और नदियां उस पानी को अपनी संतान की तरह अपने में समेट लेती हैं धरती, खेतों और सभ्यताओं की प्यास बुझाने के लिए। न जाने प्रकृति को कैसे मालूम है कि मनुष्य और अन्य जीवधारियों को पीने के लिए मीठा पानी ही चाहिए। इसलिए समुद्र चाहे अनंत जलराशि से भरा है, अथाह है मगर नदियों के सामने बौना ही है।

नदी की तरह पानी का महत्व हमारे समाज में सदा से रहा है। प्यासे को पानी पिलाना बहुत पुण्य कार्य माना जाता था। जगह-जगह प्याऊ लगवाना, घड़ों में पानी भरकर रखना, यहां तक कि पशु-पक्षियों के लिए भी पानी का इंतज़ाम किया जाता था। आज की तरह पानी का व्यापार नहीं होता था। पानी से संबंधित अमृतलाल वेगड़ की एक बहुत ही सुंदर कविता इंडिया वाटर पोर्टल पर इस लेखिका ने पढ़ी थी। उसके कुछ अंश यों उधृत किए जा सकते हैं—

पानी जब समुद्र से आता है, तब बादल
और जाता है तो नदी कहलाता है
बादल उड़ती नदी है / नदी बहता बादल
बादल से वर्षा होती है/ वर्षा इस धरती की शालभंजिका है
उसके पदाघात से धरती लहलहा उठती है
और जब वर्षा नहीं होती/ तब यही काम नदी करती है।

नदी को बहता बादल कहना अद्भुत प्रयोग है। नदियों का हमारे जीवन में कैसे-कैसे चले आना कभी दिखाकर तो कभी छिपकर, इस बात को भारत के लोगों से अच्छा शायद कोई नहीं जानता। दुनिया की सारी सभ्यताएं नदियों के तटों पर ही विकसित हुईं क्योंकि मीठा पानी इतनी आसानी से और हमेशा और कहीं से नहीं मिल सकता था। इसीलिए न केवल मनुष्य बल्कि पशु-पक्षी सब उसकी तरफ़ खिंचे चले आते हैं। कोई रात में आता है तो कोई दिन में। और नदी किनारे उगने वाले पेड़ों के तो कहने ही क्या! उनकी जड़ पानी की खोज में कहीं दूर-दराज़ की यात्रा से परेशान नहीं होतीं।

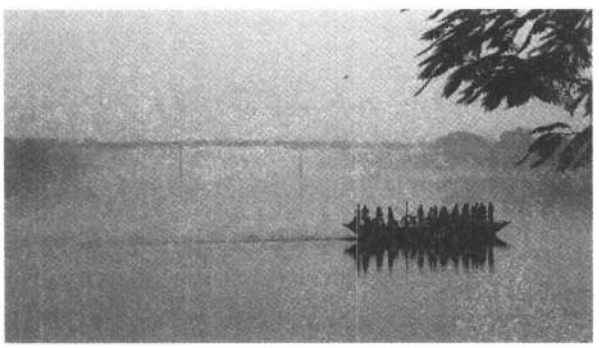
हमारी सभ्यता और हमारी संस्कृति नदियों की ऋणी है जिनके कारण मानवता और धरती का विकास हो सका। नदियों, बादलों, मनुष्यों का संबंध युग-युगों से चला आ रहा है। बादलों को देखकर जैसे नदियां दूर से मुसकराती हैं कि अब सूखे और कम पानी के दिन गए। पक्षी नाचते हैं। गौरैया पंख फड़फड़ाकर अंगड़ाइयां लेती हैं। मोरों और कोयल के गान से वन गूंज उठते हैं।

मनुष्य भी कहां पीछे रहते हैं। अच्छी वर्षा माने बारहों महीने पानी की कोई कमी नहीं, खेत-खलिहान अन्न से भरे। खुशी ही खुशी हर ओर लोक गीतों और लोक नृत्यों के रंगारंग कार्यक्रमों से सराबोर धरती।

यदि पुराणों को पढ़, पुरानी कथाओं को देख तो पाएंगे कि बड़े-बड़े ऋषियों के आश्रम नदियों के किनारे होते थे। हमारे अधिकांश तीर्थ नदियों के किनारे आज भी हैं। किसी महत्वपूर्ण त्योहार या पर्व पर नदी स्नान की परंपरा

भी पुरानी है। आज भी कुंभ और अर्धकुंभ के अवसर पर लाखों लोग गंगा और अन्य नदियों में स्नान करते हैं। कुंभ के अवसर पर नदियों के किनारे बिना किसी प्रचार-प्रसार के जो लक्खी भीड़ इकट्ठी होती है, उसे देखकर अकसर विदेशी मीडिया और विदेशी सैलानी चकित रह जाते हैं। आख़िर कौन-सा आकर्षण है, कौन-सा रिश्ता है जो लोग बिना किसी आमंत्रण के नदियों की तरफ़ दौड़े चले आते हैं। उनके पानी से स्नान करके खुद को धन्य समझते हैं।

ग्रहण का चाहे कोई वैज्ञानिक आधार न हो मगर आज भी ग्रहण के दिन लोग नदियों में स्नान कर अपने पापों से मुक्ति की प्रार्थना करते हैं। और तो और मृत्यु के बाद गंगा या किसी और नदी के किनारे अंतिम संस्कार करना आज भी बहुत अच्छा माना जाता है। यही नहीं अंत में अस्थि विसर्जन भी



नदियों के जल में ही किया जाता है। आमतौर पर लोग मां की कसम खाते हैं, पिता, बच्चे भगवान और गंगा की कसम भी खाते हैं। गंगाजल उठाते हैं। एक नदी को इतना महत्व प्राप्त है कि कहा जाता है कि गंगा की कसम माता-पिता तथा अन्य कसमों से भी बड़ी होती है। एक बात और सोचने लायक है कि हमारे यहां हर वार-त्योहार नदियों को पूजने की परंपरा है। उन्हें इश्वर का दर्जा प्राप्त है। शायद संसार के किसी अन्य देश में नदियों को इतना पवित्र और सम्माननीय दर्जा प्राप्त नहीं है।

अरुणाचल के पूर्व मुख्यमंत्री मकुट मिथी ने फरवरी 2001 में नदियों के बारे में एक अद्भुत बात कही थी—ब्रह्मपुत्र दर्शन की प्रेरणा उन्हें सिंधु दर्शन अभियान से मिली। सन् 2000 में सिंधु दर्शन अभियान के तहत लद्दाख गए थे तब सिंधु का पूजन किया था। ब्रह्मपुत्र का जल भी उसमें डाला था। सिंधु और ब्रह्मपुत्र दोनों हिमालय के नद हैं। ब्रह्मपुत्र की विशालता ही उसकी विशेषता है। वैसे यह भी सोचने की बात है कि मात्र ये दो नदियां ही नद हैं यानि कि पुल्लिंग, बाकी सारी नदियां स्त्रीलिंग हैं। देवी और मातृशक्ति की पहचान हैं।यही नहीं गंगा की आरती देखने के लिए आज भी शाम के समय हरिद्वार, वाराणसी आदि स्थानों पर बड़ी संख्या में लोग इकट्ठे होते हैं। यह दृश्य अनोखा होता है। दीपों की पानी में पड़ती परछाइयां जैसे पूरे नगर को आलोकित कर देती हैं।

पर जिन नदियों को हम हर पल पूजते हैं, हमारे हर संस्कार में वे काम आती हैं, आख़िर हमारी यह कौन-सी मानसिकता है कि एक ओर तो हम नदियों के बिना अपने जीवन की कल्पना तक नहीं कर सकते। मगर दूसरी तरफ़ हमने अपनी इन नदियों को कूड़े-करकट के ढेर में बदल दिया है। जिन्हे माता कहते हैं, जिन्ह पवित्र मानकर अर्घ्य चढ़ाते हैं, उन्हीं के अंदर अपने घरों, उद्योगों की सारी गंदगी प्रवाहित कर देते हैं। इस गंदगी से जैसे नदियों की सांस रुकी जाती है। उनके पानी में आक्सीजन की मात्रा कम होती जा रही है। हमारी इसी लापरवाही का नतीजा है कि जिन नदियों का जल अमृत माना जाता था, जिसके आचमन से हम खुद को पवित्र हुआ समझते थे, वह आज पीने तो क्या जानवरों को नहलाने और सिंचाई के काबिल भी नहीं रहा। सरकारों को नदियों को प्रदूषण मुक्त करने की योजनाएं बनानी पड़ रही हैं। गंगा की सफ़ाई के लिए वर्तमान सरकार ने अलग से मंत्रालय बनाया है और नमामि गंगा योजना शुरू की गई है। यमुना के लिए भी नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल की पहल पर मैली से निर्मल यमुना कार्यक्रम शुरू किया जा रहा है। हालांकि अब तक गंगा और यमुना सफाई योजनाओं पर अरबों रुपये खर्च हो चुके हैं। मगर अब भी इन नदियों के प्रदूषण-स्तर में कोई ख़ास सुधार नहीं हुआ है। यह ठीक है कि सरकार नदियां साफ़ करने की सोचे मगर एक नागरिक की हैसियत से हम अपनी जिम्मेदारियों से भी नहीं बच सकते। कायदे से तो हर व्यक्ति को अपने आसपास की नदियों के बारे में यह प्रण करना चाहिए कि न तो वे खुद नदियों को गंदा करगे, न उसमें गंदगी फकगे बल्कि दूसरों



को भी इस बारे में जागरूक करगे। और सिर्फ़ नदियां ही क्यों पानी के जो भी स्रोत हैं जैसेकि झील, पोखर, तालाब, झरने, कुएं सबकी सफ़ाई के बारे में सोचगे। अगर हर व्यक्ति यह तय कर ले तो सच मानिए न तो नदियां गंदी होंगी, न कभी पानी की कमी होगी।

यह कितने दुख की बात है कि एक ओर हमारे देश में इतनी नदियां हैं, दूसरी तरफ जनसंख्या के बड़े हिस्से को साफ़ पीने का पानी तक उपलब्ध नहीं है। दूषित पानी पीने के कारण बड़ी संख्या में लोग हर साल काल के गाल में समा जाते हैं। पानी जनित बीमारियों से लाखों बच्चे हर साल मर जाते हैं। इसके अलावा हर साल कहीं भारी बारिश के कारण बाढ़ आती है। सर्वनाश होता है। अकूत जन-धन की हानि होती है तो कहीं पानी की एक बूंद नहीं पड़ती और लोग सूखे से त्राहि-त्राहि करते हैं। पानी के अभाव में सूखे पड़े खेत, तालाब, पोखर, कुएं और नदियां भी अपनी विपदा की कहानी खुद कहते हैं।शायद इसी बात को ध्यान में रखते हुए सरकार ने देश की नदियों को जोड़ने की योजना बनाई है जिससे कि बाढ़ के समय अधिक पानी के कारण बाढ़ न आए। पानी दूसरी नदियों में चला जाए और सूखे से भी निपटा जा सके। सिंचाई के अच्छे साधन विकसित हो सक। और प्रचुर मात्रा में बिजली भी मिल सके। हालांकि पर्यावरणविद्। नदियों को आपस में जोड़ने की योजना का विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि हर नदी का ईको सिस्टम अलग है। इनमें अलग-अलग प्रजाति के जीव-जंतु भी पाए जाते हैं। जो नदियों के पानी की अलग-अलग विशेषताओं के कारण, अलग-अलग नदियों में विकसित होते हैं। जैसेकि गंगा में महाशीर या डाल्फिन पाई जाती है तो चम्बल में घड़ियाल मिलते हैं।

एक नदी का पानी दूसरी में मिलेगा तो यह पानी के लिए भी अच्छा नहीं है क्योंकि हर नदी में प्रदूषण का स्तर अलग-अलग है। हर नदी प्राकृतिक रूप से भी अलग है। नदियों को जोड़ने की शुरुआत की बात पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल में शुरू की गई थी। इसे 'अमृतक्रांति' का नाम दिया गया था। बाद में मनमोहन सिंह की सरकार ने इसे जारी रखा था और सर्वेक्षणों पर पचास करोड़ रुपये से अधिक खर्च भी किए थे लेकिन 2009 में तत्कालीन पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने इसे बंद कर दिया था।

उनका कहना था कि इसके आर्थिक, सामाजिक और पारिस्थितिकीय परिणाम अच्छे नहीं होंगे लेकिन अब नई सरकार ने इसे फिर से चालू किया है। अब प्रधानमंत्री के कहने पर जल संसाधन एवं विकास मंत्रालय नदियों को जोड़ने की योजना से स्थानीय लोगों को जागरूक करने की पहल भी कर रहा है। मंत्रालय ऐसी नदियों को पहले जोड़ेगा जो एक ही राज्य में बहती हैं। इस योजना के जो भी फायदे हों मगर पर्यावरणविदों की चिंता पर भी ध्यान देने की जरूरत है। कहीं ऐसा न हो कि जिस योजना को लोगों के फ़ायदे के लिए शुरू किया जा रहा है, उससे लोगों का नुकसान हो। तरह-तरह की बीमारियों की चपेट में वे आ जाएं जैसाकि पानी के लिए काम करने वाले लोग चिंता

एक ज़माने में लंदन की टेम्स नदी की हालत अपनी यमुना से भी बुरी थी लेकिन सरकारी प्रयासों और लोगों की जागरूकता ने आज उसे बेहद साफ़-सुथरी नदी बना दिया है। गुजरात की साबरमती के बारे में भी यही कहा जाता है यानी कि अगर हम तय कर लें तो दुनिया में ऐसा कोई काम नहीं जो न हो सके।

जता रहे हैं। हालांकि सरकार यदि लोगों को किसी योजना से जोड़ रही है, तो यह एक अच्छी बात है। लोगों की भागीदारी के बिना कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता है। नदियां तो लोगों से गहरे जुड़ी हैं। जल्दी से जल्दी उन्हें इस ओर ध्यान देना ही होगा। लाखों टन पूजन सामग्री जिस तरह से नदियों में प्रवाहित की जाती है अगर उसे ही लोग फेकना बंद कर दें तो नदियों के पानी को बहुत हद तक ख़राब होने से बचाया जा सकता है। इस पूजन सामग्री को अगर एक जगह इकट्ठा किया जाए और इसकी खाद बनाकर आसपास के पार्कों में इसका प्रयोग किया जाए तो न तो कूड़ा फैलेगा बल्कि उपयोगी खाद भी मिलेगी। यही नहीं बहुत से उत्सवों के अवसर पर भारी मात्रा में मूर्तियों का विसर्जन नदियों में किया जाता है। इनसे भी नदियों के पानी में ज़हरीले तत्व जाते हैं लेकिन इन सब बातों को रोक लगाकर नहीं रोका जा सकता। लोगों को खुद ही निर्णय लेने होंगे और उन्हें अपने-आप लागू करना होगा। एक ज़माने में लंदन की टेम्स नदी की हालत अपनी यमुना से भी बुरी थी लेकिन सरकारी प्रयासों और लोगों की जागरूकता ने आज उसे बेहद साफ़-सुथरी नदी बना दिया है। गुजरात की साबरमती के बारे में भी यही कहा जाता है। यानि कि अगर हम तय कर ल तो दुनिया में ऐसा कोई काम नहीं जो न हो सके।

नदियों में जल मार्ग बनाने की योजना पर भी विचार हो रहा है। आजकल भी जो मोटर-बोट गंगा और अन्य नदियों में चलती हैं, इनसे तेल की पर्त पानी में फैलती है जो पानी को बुरी तरह से प्रदूषित करती है। कहीं ऐसा न हो कि जल मार्ग नदियों के पानी को और अधिक ख़राब कर द और जलीय जीव-जंतुओं पर भी इसका असर पड़े। जल विश्व दिवस दुनिया-भर में बाइस मार्च को मनाया जाता है। क्यों न हम हर दिन को जल दिवस बना द क्योंकि पानी की ज़रूरत तो हमें हर रोज़ होती है। पानी की चिंता करेंगे तो वह हमारी चिंता करेगा। नदी साफ़-सुथरी होगी तो न केवल हमारे लिए बल्कि आने वाली पीढ़ियों की भी आवश्यक जरूरत पूरी होंगी। न जाने कितने रोगों से मुक्त होंगे। हरियाली के रूप में देश की संपन्नता और आर्थिक स्थिति सुधरेगी। लोगों का जीवन स्तर सुधरेगा। हो सकता है कि पानी खरीदने से मुक्ति मिल जाए। ❑

संपर्क : 17 बी I, हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट्स, मयूर विहार, फ़ेज़-1, दिल्ली-110091

कविताएं : **केशव शरण**

ग्रीष्म

एक

अभी गोरी की
ठीक से नींद भी नहीं खुली है
और धूप
तपने और तपाने लगी है/ पनघट को

दो

बड़े होते
टिकोरों से लदे
आम्रवृक्ष की घनी छांव
एकदम ताज़ा खुदी मिट्टी
और कूलर की हवा
चाहने लगी है / कि दाहने लगी है दुपहर

तीन

शाम सुहानी है
ख़ास बात यह है
धूप को तो
ढलना ही था
दहककर चाहे जितना दहकती

चार

दोपहर के
उलट है रात्रि
लू के उलट है
बह रही हवा
और चांदनी
चिलचिलाती धूप के उलट है ही सर्वथा

पांच

सूरज उगेगा
और एक बेहद गर्म
और बेचैनी-भरा दिन
ला देगा
जिसे पेड़ों और चिड़ियों से ज़्यादा
कौन झेलेगा
पर वे झूम रहे हैं
और वे गा रही हैं, उसके स्वागत में।

संपर्क : एस. 21564, सिकरौल, वाराणसी-221002 (उ.प्र.)

मुझे इल्म की प्यास शिद्दत से आज भी है!

क़िस्सागोई के फ़न में माहिर **नासिरा शर्मा** *जब सृजन-संदर्भ को प्रक्रिया के स्तर पर सुनाती हैं तो पाठकों के लिए चरित्रों को जानने और पहचानने का एक और दरवाज़ा खुलता है। प्रस्तुत है कथाकार* **नासिरा शर्मा** *से* **मजीद अहमद** *की बातचीत*

आपने इलाहाबाद पर अपने लेखन को बहुत केंद्रित किया है, उस शहर में ऐसी क्या विशेषता लगी?

दरअसल, मैं कुछ मुद्दे उठाना चाहती थी, जिससे विश्व के अधिकांश राष्ट्र परेशान थे। मैं उन्हें अंतर्राष्ट्रीय समस्या समझकर उठा रही थी। अतः मुझे कोई एक देश या शहर को चुनना था। मेरे लिए सबसे अच्छा इलाहाबाद था। वह शहर जिस शहर पर मेरी पकड़ थी और वहां भी वही समस्याएं थीं, जो मैं दर्शाना चाहती थी। अगर आप खुद देखें तो आपको मालूम होगा कि जगह कोई भी हो, वहां पर लोग पुलिस, वकील, गुंडे और नेता से परेशान हैं। 'अक्षयवट' का जो नायक है, वह इलाहाबाद का है। इसके चार स्तंभ हैं। इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि इलाहाबाद न्यायालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और कई प्रधानमंत्री देने वाला वह शहर था, जिस पर मेरी पकड़ थी। इसीलिए दूसरे उपन्यास 'कुइयांजान' जो इंसानी और जल समस्या पर है, उसे भी इलाहाबाद से उठाया कि त्रिवेणी का शहर पीने के पानी की समस्या से गुज़र रहा है।

फ़ारसी भाषा पर गहरी पकड़ होने के कारण आपने ईरान पर बहुत कुछ लिखा। आज ईरान और अन्य देशों में जो उथल-पुथल मची हुई है, उसे आप किस तरह से देखती हैं?

ग़लतियां थोड़ी-बहुत दोनों तरफ़ से हैं। इराक और अफ़ग़ानिस्तान का जो हाल हुआ, वह कभी नहीं होता, अगर ईरान की तरह उनमें एका होता। ईरान में वैचारिक स्तर पर आपसी मनमुटाव कितना भी हो, मगर देश के प्रति सब एक हो जाते हैं, इसलिए अमेरिका अपनी सारी धमकियों के बावजूद न वहां पर बम गिरा पाता है और न ही वहां की किसी पार्टी या समूह को भुना पाता है, जो काम इराक में कुर्दिशों द्वारा उसने किया। आज मध्य-पूर्वी देशों या अफ्रीका के कुछ देशों में जो उथल-पुथल मची है, वह पेट्रोल, जल और खनिज पदार्थों की है। मध्य-पूर्वी देशों का अपना कल्चर है। वे उसी कल्चर में सांस लेते हैं। जो लोग इन देशों में जाते हैं वे खुद बता सकते हैं कि तकनीकी रूप से, रहन-सहन और पूरे एटीट्यूड में वे कितने आधुनिक हैं। इसका अंदाज़ा इन देशों के साहित्य और कला को देखकर आसानी से किया जा सकता है, जिसका ज़िक्र कहीं नहीं आता है।

जेएनयू परिसर में रहते हुए आपने 'शाल्मली' को शब्दबद्ध किया है। 'शाल्मली' ने बहुतों की सोच को बदला, वह जैसे एक लंबी कविता की तरह है...

जब मैं जेएनयू में आई थी, उस वक्त मेरी उम्र करीब बाईस साल की थी। वहां जो छोटे-छोटे पेड़ लगाए थे, उन्होंने अरावली का पूरा हुस्न निखार दिया था। वहां रहकर और उन पेड़ों का हुस्न देखकर ही मैं 'शाल्मली' रच पाई। जेएनयू परिसर में रहना एक बड़े बाग़ में रहने जैसा था। इन सारी खूबियों के



बावजूद वहां कुछ कमियां भी थीं। कुछ दुर्घटनाएं हुईं और वह लाज़िमी भी हैं लेकिन एक सच बहुत बड़ा है कि आज जेएनयू में जिस तरह की पढ़ाई और प्रतिबद्धता है और उसका नाता विदेशों के विश्वविद्यालयों से बंधा हुआ है, वह किसी अन्य यूनिवर्सिटी को नसीब नहीं है। 'शाल्मली' का हर अध्याय मैंने एक नए वृक्ष से शुरू किया है—शिरीष, गुलमोहर, अमलतास, सेमल, कीकर। शाल्मली एक नरक का नाम भी है। शाल्मली पाताल में प्रवहमान एक नदी है। शाल्मली लकड़ी की खूबी है कि वह जितनी जल में भीगती है उतनी ही मज़बूत होती है। शाल्मली अपने में एक सुंदर पेड़ है। इसकी सुंदरता और खूबियों से औरत बहुत मिलती-जुलती है। 1947 के नए हिंदुस्तान में जो औरत पैदा होती है, वह शाल्मली है, जिसे नूरा की तरह घर छोड़ने में कोई दिलचस्पी नहीं। वह घर के साथ बाहर की दुनिया को पाना चाहती है।

आपके उपन्यास 'शाल्मली', 'अक्षयवट' और 'पारिजात' ये सब किसी न किसी वृक्ष के नाम से जुड़े हैं। अपनी इस आरण्यक दृष्टि पर कुछ कहेंगी?

पारिजात का पता मुझे 1999 में लगा था, जो दुनिया का इकलौता पेड़ है। वह सिर्फ़ अगस्त के महीने में ही फूलता है। 27 अगस्त, 2000 को पहली बार मैंने इसे देखा। कहते हैं उसका खिला हुआ फूल देखना सभी के लिए संभव नहीं है। मैंने सात फूल एक साथ खिलते हुए देखे। यह धरती की ओर मुंह करके खिलता है। वहां का जो पुजारी था, वह गिरे हुए फूल को मंदिर में चढ़ा देता था। वह पेड़ मेरे मन में छा गया। कहा जाता है कि पारिजात सागर-मंथन में निकला था। यह पेड़ कई साल मेरे साथ चलता रहा।

मेरे नए उपन्यास का जो पात्र है, उसका पुत्र खो जाता है। उसका

नाम पारिजात है, जो एक रूपक है। रूपक इस तरह से भी है—पारिजात के पिता रोहनदत्त हैं, जो हुसैनी ब्राह्मण हैं। महाभारत युद्ध के बाद कुछ लोग सऊदी अरब जा बसे। दत्त परिवार भी मोहम्मद पैग़ंबर के निकट था। पैग़ंबर इन्हें सुलतान दत्त कहते थे। जब कर्बला में लड़ाई हुई, तब अपनी मित्रता साबित करने के लिए सुलतान दत्त वहां पहुंचे। मगर उनके पहुंचने से पहले ही जंग खत्म हो गई।

'पारिजात' में आपने इस बार इलाहाबाद की जगह लखनऊ से कहानी शुरू की है, लेकिन रूही के चरित्र को कहां से लिया?

कुछ लोग सोचते हैं कि शिया लोग हैं। वह हल्के से शराब भी पीती है और डांस भी करती है, तो लखनऊ में ऐसा नहीं हो सकता लेकिन हमारा समाज परतदार है, बहुत कुछ होता है। शिया समाज हमेशा से बहुत पढ़ा-लिखा और एडवांस रहा है। यह मैं किसी पक्षपात की वजह से नहीं कह रही हूं, तारीख़ी हक़ीक़त को बता रही हूं। रूही की पढ़ाई-लिखाई बाहर हुई है। जब अपर क्लास ऊपर अपर क्लास में मिलता है, तो उसकी आदतें मिल जाती हैं लेकिन रूही बहुत हिंदुस्तानी लड़की है। रूही का चरित्र कई चीज़ों से मिलकर बना है। इसमें इलाहाबाद और लखनऊ दोनों हैं और आसपास का जो एरिया है वह भी है। ख़ास बात यह कि इसमें हुसैन के लिए जो दोहे हैं उन्हें मैंने गांव-गांव जाकर इकट्ठे किए। वह बहुत रेयर चीज़ है।

'ज़ीरो रोड' के सिद्धार्थ में कोई ऐसी छवि नहीं दिखती, जो उसे मुखर और विचारशील युवा का आभास दे, जबकि वह पूरब के ऑक्सफोर्ड से पढ़-लिखकर निकला है। वह चुप रह जाने वाले प्रतिरोध-विरोध के रूप में इलाहाबाद की भूमिकाओं में है?

सिद्धार्थ काम करने के लिए धोखे से दुबई जाता है, लेकिन रिवोल्ट करने की उसकी भूमिका कुछ नज़र नहीं आती। वह रिवोल्ट करता भी नहीं, क्योंकि वह रिवोल्ट नहीं कर सकता। उसका पासपोर्ट वहां के वर्कर अपने पास रख लेते हैं। अगर वह रिवोल्ट करता भी तो सीधे जेल जाता। वह उस हालत में कुछ नहीं कर सकता था। वह जिन लोगों के साथ उठता-बैठता था, वे भी उसी की तरह बेचारे थे लेकिन सिद्धार्थ जैसे जब वहां जाते हैं, उनकी यही गति होती है। उन्हें उसकी शिक्षा की ज़रूरत नहीं होती। मैंने इसके ज़रिए यह कहने की कोशिश की है कि किस तरह यहां पढ़े-लिखे लोगों को नौकरी नहीं मिलती। बाहर के देशों में वहां का सिस्टम शोषण नहीं करता, शोषण वहां का कानून करता है। जो ग़लत है, हमारा ही चलाया हुआ है। हम अपने ही लोगों को ग़लत वीज़े पर भेजते हैं।

'दूसरा ताजमहल' की नैना एकाकी मन की चाहत के लिए बुभुक्षित आत्मा की जो चरित्रगाथा रचती है, उसमें उसे नैराश्य, छल-प्रपंच और हर मोड़ पर बनते-बिगड़ते तर्क ही मिलते हैं?

'दूसरा ताजमहल' प्रेमगाथा नहीं है। दरअसल, कहना मैं यह चाहती थी कि आज का जो दौर है उसमें हम इतना झूठ बोलते हैं कि हमारे कहे शब्द हवा में उड़ जाते हैं। हम कहीं भी अपने कहे शब्दों पर ठहरते नहीं हैं। उन दिनों जब मैंने कहानी लिखी और जिन लोगों के साथ उठी-बैठी, उसने मेरे दिमाग़ में एक अजीब-सा एहसास जगाया कि कोई भी सच नहीं बोल रहा है—न लेखक, न आम आदमी। एक ऐसा माहौल, जिसे न चापलूसी कहेंगे, न छल-कपट। एक ऐसा रिवाज कि मौक़ा देखकर बोलो और आगे बढ़ो। उससे मैं बहुत परेशान थी। कहानी में किसी प्रेम-प्रसंग को उठना नहीं था, इसलिए जो संवाद रखे वे एक ख़ास कैफ़ियत में थे। वह जो बोल जाता है उसकी ट्रेजडी है। वह जिससे शादी करना चाहता था, नहीं कर पाया। उसकी शक्ल नैना से मिलती थी, तो असहज होकर सारे संवाद बोल जाता था। नैना उससे मिलने जाती है, वह माफ़ी मांगता है कि कहीं कोई ऐसी बात तो नहीं कह दी।

मर्द और औरत के साथ हमारा समाज, धर्म और आर्थिक हालात जो जकड़न और ज्यादतियां करते हैं, उसकी यह कहानी है। मैं उसके बिल्कुल ख़िलाफ़ हूं कि नैना जो है छल और कपट और वह खुद पैर उठाकर जाती है। नैना को उस चीज़ की ज़रूरत होती है, जिसकी ज़रूरत वास्तविकता में होती है। दोनों के एटीट्यूड में फ़र्क़ है। वह घर ज़मीन पर चाहती है और वह कल्पना में चाहता है। इसे समझने के लिए अलग दृष्टि और बड़ा तजुर्बा रखना चाहिए।

'अक्षयवट' कई युवा ज़िंदगियों की मार्मिक कहानी है। किरदार व्यवस्था की सड़ांध और आपाधापी में ही अवसाद भरी ज़िंदगी जीने के लिए क्यों अभिशप्त हैं?

यह सच है, लेकिन ज़हीर जिस माहौल से निकलता है और जिस तरह मुरली से जुड़ता है, वह अपने में एक इंक़लाब है। उसका घर कोई मामूली नहीं, वह बहुत अपर क्लास का है। कल्चरल रूप से अपर क्लास की सिर्फ़ बातें रह गई हैं, वह पैसे से तबाह है। कल्चर और पैसा साथ नहीं चलते। कल्चर अपनी जगह है और पैसा अपनी जगह! ज़हीर का मुरली से जुड़ना और बिसातखाने में दुकान खोलना, सारी चीज़ें ख़िलाफ़ हैं। जो पुराने कल्चर का नमूना है, उसमें बहुत ख़ालीपन है। उस वक्त किसी ने कहा था—कहानी में बूढ़ी औरत शतरंज खेलती है। शतरंज और कौड़ियां औरतें खेलती ही थीं। वह खेल में शामिल था, जुए में नहीं। वक़्तगुज़ारी था वह। दादी हैं जो हालात को प्रस्तुत करती हैं। मां सिपुतन हैं और जो तीसरा लड़का है, उसे लगता है कि उसके साथ ज्यादती हुई। यूनिवर्सिटी में नक़ल का इल्ज़ाम लगा दिया गया। जो वैल्यूज़ थी उसने हिम्मत नहीं दी कि वह जाकर लड़ता, क्योंकि वह देख रहा था कि इसके पीछे बंटवारे और ज़मींदारी उल्मूलन की त्रासदी थी। यह उस घर का लड़का है जहां ट्रेजडियां ही होती रही हैं और सब चुपचाप देखते रहे हैं। बाद में वह रिवोल्ट करता है। वह आम तरीके से हथियार नहीं उठाता, जबकि लोग सोच सकते थे कि वह हथियार उठाता।

फ़िलहाल यह सवाल उसी से निकलता है कि जो काम वह नहीं कर पाया, दूसरे स्टूडेंट ने किया। वाइस चांसलर के पास ले जाकर बात कहना, जुलूस निकालना, ये सारी चीज़ें उपन्यास में अपने-अपने अंदाज़ से दूसरों के ज़रिए हुई हैं लेकिन इसका अपना एक अंदाज़ रहा है। वह एक ख़ास कल्चर, क्लास की उपस्थिति है।

मुस्लिम महिलाओं की स्थिति के बारे में आप क्या सोचती हैं? स्त्रियां स्वावलंबी कैसे बनेंगी?

औरतें स्वावलंबी इसी तरह से बन सकती हैं कि वे शरीयत कानून खुद पढ़ें। अपने बारे में बिना जाने कोई मर्द भी आज़ाद नहीं हो सकता है। इस्लाम ने अपने समय को देखते हुए औरतों का जितना समर्थन किया है, औरतों को उसका ठीक-ठीक पता नहीं है। इस्लाम आधुनिक दौर में आया हुआ एक धर्म है। अन्य धर्मों को देखते हुए उसमें आधुनिकता भी है और लचक भी है।

आपने पश्चिमी एशियाई देशों में जाकर लेखकों, बुद्धिजीवियों और राजनेताओं के तमाम साक्षात्कार किए, कोई ऐसा प्रसंग जो आज तक ज़ेहन में अटका हो?

1980 में ईरान के सूचना मंत्री से मेरा इंटरव्यू तय हुआ। समय लिया ख़लीली साहब ने। मैं जब सूचना मंत्री के कमरे में गई तो उन्होंने सवाल मांगे। मैंने पर्चा बढ़ा दिया। उन्होंने सारे सवाल पढ़े। फिर तेवर बदलकर बोले—"आप किन लोगों के साथ उठती-बैठती हैं? और ये सारे सवाल आपको कहां से मिले?" मैंने जवाब दिया—"बाज़ार में चलती हूं, टैक्सी में बैठती हूं, लोगों की बातें सुनती हूं, उन्हीं की बातों से मैंने सवाल बनाए हैं।" उन्होंने कहा—"ऐसा नहीं हो सकता। आपको बताना पड़ेगा। नहीं तो मैं पाचदारों (इस्लामिक गार्डों) को बुलाता हूं।" मन में एकदम से सवाल कौंधा कि यह ख़लील साहब की शरारत तो नहीं"? मैं जल्दी से खड़ी हुई और अदब से बोली, "उन्हें ज़हमत मत दीजिए, मैं जा रही हूं।'

शाम को ख़लीली साहब का फोन आया, "मीटिंग कैसी रही?" मैंने कहा, "बुरी नहीं!" वहां से उठकर मैं एक बात पर आई कि जिसे मैं मज़ाक समझ रही हूं, वह कहीं संजीदा बात न हो। वे सारे सवाल बहुत तीखे थे और हक़ीक़त पर थे। और ये भी बहुत बड़ा सच था कि जिन लोगों में मैं उठती-बैठती थी, वह बौद्धिक वर्ग इस्लामिक व्यवस्था का विरोधी था। कहने का मतलब मैं उस दिन संकट में पड़ सकती थी और संकट में पड़ने का साफ़ मतलब था—उनकी धर-पकड़, जेल या अत्याचार।

"तुम जो इल्म की प्यास लिए घूम रही हो, इसका कहीं अंत है?" यह वाक्य नि:संदेह मरजीना का ही नहीं, नासिरा जी के अंदर बैठी मरजीना के रुख़ और राजनीति को प्रकट तौर पर सामने लाता है ...

मेरे ख्याल से आपकी अपनी राय है कि उसमें मैं बोल रही हूं। इसमें कोई शक नहीं है कि मैं ही हूं, क्योंकि आप मुझे बहुत दिनों से जानते हैं। तब से जब मैं जेएनयू में थी। लोग जवान होते हैं तो आशिक को ढूंढते हैं और मैं तो इल्म की प्यास लिए ही घूमती रही बहुत सालों तक। मेरे अंदर की औरत मोहब्बत तो चाहती है, लेकिन कभी भी जवानी में मोहब्बत के लिए अंधी नहीं हुई हूं। मुझे इल्म की प्यास शिद्दत से आज भी है और मैं सभी दुनियावी चीज़ों का मज़ा लेना चाहती हूं लेकिन मैं इतनी शदीद नहीं जितनी इल्म।

मैं हर चीज़ के लिए संवेदनशील हूं और डिमांडिंग हूं, पर इतनी नहीं हूं कि जितनी इल्म के लिए कभी ईरान चली जाती हूं। कभी पूरा अरबी लिटरेचर अंग्रेज़ी में खंगाल लेती हूं या लोगों से लंबी-लंबी बातें करती हूं। कभी मैं शॉपिंग के लिए नहीं जाती, विंडो शॉपिंग हो गई तो हो गई। कभी ज़ेवर के लिए ऐसी कोई हरकत नहीं करती हूं। ज़ेवर अच्छे हैं, अच्छे हैं। कार चल रही है, चल रही है। मेरे ऊपर इन सब चीज़ों का कोई असर नहीं पड़ता।

भूमंडलीकरण का कथा-भाषा पर कोई प्रभाव पड़ा है?

भाषा पर भूमंडलीकरण का प्रभाव पड़ा है। भाषा को लेकर लोग थोड़ा लापरवाह तो रहे हैं। लापरवाह भी इसलिए हो रहे हैं कि आम ज़बान को जब कोट करते हैं तो वही ज़बान दे देते हैं। उर्दू वालों ने ज़बान को लेकर कहीं समझौता नहीं किया। उनके यहां भी हर इलाके की उर्दू है, जैसे हैदराबादी उर्दू, लखनऊ की उर्दू, पाकिस्तानी उर्दू, लेकिन उसके ढांचे की चूलें वैसी ही कसी रहीं। हिंदी में इलाक़ाई हिंदी है, लेकिन लापरवाही है। भाषा ही आपको बांधती है। अभी मैंने एक उपन्यास पढ़ा। उसमें एक वाक्य था, 'उन्होंने अपने पिता को आस्ट्रेलिया से मंगा लिया' तो इस तरह का प्रयोग भाषा को अटपटा बना देता है। ❑

संपर्क : के-34, सरिता विहार, नई दिल्ली-110076

ग़ज़ल और कविता : **बीना त्रिपाठी**

शिला

दौर कुछ ऐसा चला ख़ौफ़ वे खाने लगे हैं
बात कुछ ऐसी नहीं, दूर वो जाने लगे हैं
सोच से परे वो सब हुआ, पर ग़म नहीं
मुझे चहकते देख वो ग़म खाने लगे हैं,

झंझावातों में रहकर भी उसी से बहलती और
बल पाती हूं मैं, निर्बल वे दिखने लगे हैं
न परखो निहारो मैं निखरने लगी हूं
सर्व स्वीकृति देख बेचैन वो होने लगे हैं

तगादे पर तगादे की पारी नहीं अब
उऋण भांप मुझे, वो कसमसाने लगे हैं
प्रसन्नता ज़ाहिर करो हर उपमाओं के साथ
मैं वो शिला हूं, जिससे नामपट्ट बनने लगे हैं!

तीखे नैना भरे लाज से

मोहक सी छटा
लावण्य लिए मोहिनी शृंगार
सपनों में उतराई
मौन सी एक नाव
पल्ले की ओट में
कहीं गुम सी होती
होठों पर अंगुली
अदा में चार चांद सी लगाती
घूंघट की ओट में
शान लिए, लब पर नहीं
नैनों में निश्चल भाव लिए
बिंदी टीका से सजा
मुख स्नेहिल अंदाज़ से
प्यार उमड़ता ही उमड़ता जा
रहा है प्रवाह से
प्रयास किया इस मुकाम पर
आने के पहले से
डोर मिल ही गई
तेरी उन मिसालों से
तीखे नैना भर आए मेरे लाज से।

संपर्क : केंद्रीय विद्यालय, गाजीपुर (उ.प्र.)

क्षितिज : नए-पुराने संगीतकारों का

पंडित विजयशंकर मिश्र

विदुषी सविता देवी प्रतिष्ठित ठुमरी गायिका हैं। पिछले दिनों इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र ने इनके भव्य गायन का एक अलबम प्रसारित किया, जिसमें इनकी शिष्या प्रो. (डा.) दीप्ति बंसल ने इनके जीवन और संगीत के कई मुद्दों पर बातचीत की है। इस अलबम में सविता देवी ने मिश्र जोगिया में बोल बनाव की ठुमरी, खमाज में बंदिशी ठुमरी, सिंध भैरवी में दादरा, शहाना में होरी, चैती, झूला कजरी और बारहमासा जैसी रचनाओं का भावपूर्ण गायन किया है। ध्वनि मुद्रिका के लोकार्पण के तुरंत बाद सविता देवी ने आमंत्रित दर्शकों के समक्ष इसमें से संचयित कुछ रचनाओं का भावपूर्ण गायन करके समा बांध दिया। अख्तर हसन (तबला), बदलू खां (हारमोनियम), गुलाम साबिर (सारंगी) और दीप्ति बंसल (तानपूरा) ने इनका अच्छा साथ दिया। 'सम' (सोसायटी फॉर एक्शन थ्रू म्यूजिक) का दो-दिवसीय संगीत समारोह क्रमशः खलीफा पं. बिक्कू महाराज एवं पं. रंगनाथ मिश्र की स्मृति को समर्पित था। उद्घाटन पदमश्री पं. भजन सोपोरी, कैप्टन शिखर जौहरी, पं. नरेंद्र कुमार और डा. वेद प्रकाश त्रिपाठी ने किया। दो दिवशीय समारोह में गायन के ही चार कार्यक्रम थे। उद्देश्य था संगीत के आंतरिक जुड़ाव और निजी तथा शैलीगत भिन्नता को परखना। अरुंधति भट्टाचार्य ने बागेश्री की मनोहारी प्रस्तुति की। इनके गायन में इनकी गहन शिक्षा और चिंतन का परिचय मिला। परिपक्व गायकी है इनकी। बंदिश की अदायगी, भावपूर्ण आलाप, कटावदार तानें और रूपकुंवर के भजन की भावमयता सब ओर से उन्होंने प्रभावित किया। तबले पर मिहिर कुमार नट्टा की संगति सहयोगपूर्ण थी। पटियाला घराने के पं. राजिंदर सिंह ने यमन में बड़ा और छोटा ख्याल की संक्षिप्त प्रस्तुति करने के बाद उ. बड़े गुलाम अली खां की मशहूर ठुमरी 'याद पिया की आए' सुनाकर उनकी यादें ताज़ा कर दीं।

पटियाला घराने की मूल विशेषता पंजाबियत है, जो राजिंदर सिंह में कूट-कूटकर भरी है। सीधे दिल में उतरती मर्मभेदी आवाज़, कल्पनाशील बोल बनाव और शब्दों में रची-बसी मार्मिकता के बलबूते वे खूब प्रशंसित हुए। उ. अख्तर हसन की तबला संगीत काबिल-ए-तारीफ़ था। दोनों गायकों के साथ पारोमिता मुखर्जी की हारमोनियम संगति सोने में सुगंध की तरह थी। अरुंधति भट्टाचार्या और राजिंदर सिंह को 'संगीत भूषण' सम्मान से नवाज़ा गया। नम्रता देव (इलाहाबाद) युवा और प्रतिभाशाली गायिका हैं। गायन में अच्छी संभावनाएं दिखीं। मधुवंती में दो पारंपरिक बंदिशों 'तेरो गुन गाऊं' (विलंबित एकताल) और पायल मोरी बाजे (द्रुत त्रिताल) के माध्यम से उन्होंने विधिवत् आलाप, आकार, सरगम और बोल तानों के माध्यम से इस राग का सुंदर शृंगार किया। तराना में चमत्कृत करती तैयारी थी तो भजन में भक्ति और समर्पण। नम्रता के दोनों साथी कलाकार मुस्तफ़ा हुसैन (तबला) और विमल बैरागी (हारमोनियम) दिल्ली के थे। दोनों ने अच्छी संगति की लेकिन थोड़ा कम बजाते तो अधिक प्रशंसित होते।

समापन विदुषी उमा गर्ग के प्रभावशाली गायन से हुआ। राग जोग की विलंबित रचना 'पतियां पढाई रे' के माध्यम से इन्होंने राग का औपचारिक परिचय दिया। दोनों गांधारों का मार्मिक प्रयोग प्रस्तुति को और भी मार्मिक बना गया। 'साजन मोरे घर आए' को उमा जी ने रूमानी अंदाज में पेश किया। जोग एक शृंगारिक राग है और उमा जी ने शृंगार के दोनों रूपों—वियोग और संयोग की क्रमशः विलंबित और द्रुत रचनाओं के माध्यम से चित्रित किया। खमाज की ठुमरी देखे बिना बेचैन के बोल-बनाव में स्वप्निल परिकल्पनाओं का परिचय मिला। उमा गर्ग आज प्रेम के रंग में सराबोर थीं, इसलिए मीरा बाई के जिस भजन को उन्होंने प्रस्तुत किया उसमें भी प्रेम की पराकाष्ठा थी—'मैं तो गिरिधर के घर जाऊं'। उ. अख्तर हसन और डा. विनय मिश्र की क्रमशः तबला और हारमोनियम संगत ने गायन में चार चांद लगा दिया। डा. नम्रता देव को संगीत रत्न और उमा गर्ग को संगीत सुधाकर की उपाधि से सम्मानित किया गया। समारोह का सुंदर संचालन अस्मिता ने किया।



विदुषी उमा गर्ग को स्वर सुधाकर सम्मान भेंट करते हुए कैप्टन शिखर जौहरी

- स्ट्रिंग्स एन स्टेप्स तथा तबला एकेडमी ऑफ अजराडा घराना ने उ. हसमत अली खां के सम्मान में हैबीटाट सेंटर के स्टेन सभागार में संयुक्त रूप से एक कार्यक्रम आयोजित किया। इस अवसर पर हफ़ीज़ अहमद अलवी ने सुंदर और तैयार एकल तबला वादन प्रस्तुत किया। हफ़ीज़ ने अजराडा घराने की कई अच्छी बंदिशें पेश की। गतें आकर्षक थीं। स्ट्रिंग्स एन स्टेप्स के अंतर्गत नील रंजन मुखर्जी का हवाइन गिटार और संगीता मजूमदार का कथक नृत्य संपन्न हुआ। रचनाएं 7 और 16 मात्राओं में निबद्ध थीं। तबले पर जुहैब खां, वायलिन पर दानिश अली और गायन पर ज़की खां थे। आज के सांगीतिक फैशन के अनुसार यह एक फ्यूजन प्रयोग है जो काफी लोकप्रिय हुआ है। विषय और प्रस्तुति दोनों अच्छी थी। समारोह का सुरीला समापन पं. कुशल दास के बेहद सुरीले सितार वादन से हुआ। उन्होंने राग आभोगी की श्रुति मधुर प्रस्तुति की। गतें क्रमशः मध्य लय झपताल और द्रुत त्रिताल में निबद्ध थीं। उस्ताद अकरम खान ने उस्तादी अंदाज़ में तबला संगति की।
- 'सुरभि' द्वारा आयोजित सुरीली संगीत संध्या का शुभारंभ प्रवीण शिवलिकर (भोपाल) के सुमधुर वायलिन वादन से हुआ। प्रवीण ने पूरिया धनाश्री की सुरीली अवतारणा की। ये गायकी अंग से वादन करते हैं। इनका हाथ बेहद मीठा और सुरीला है। इसके बाद पं. सारथी चटर्जी का प्रभावशाली गायन संपन्न हुआ। सारथी ने कौशिक कान्हड़ा का सिलसिलेवार विस्तार करते हुए इसके मार्मिक स्थलों को मार्मिकता से उभारा। सारथी का भावप्रवण गायन काफी पसंद किया गया। विनोद लेले ने दोनों कलाकारों के साथ सूझबूझ युक्त संगति की। ❑

संपर्क : 705 डी/21 सी, वार्ड नं.-3, महरौली, नई दिल्ली-110030

समीक्षा

सहजता में गंभीर आख्यान

श्याम सुशील

राकेश तिवारी का पहला कहानी-संग्रह 'उसने भी देखा' 1993 में प्रकाशित हुआ था। लंबी ख़ामोशी के बाद वे फिर से कथा-लेखन में सक्रिय हैं और इधर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों से फिर चर्चा में हैं। उत्तराखंड के गरमपानी (नैनीताल) में जन्मे राकेश तिवारी दशकों से पत्रकारिता की दुनिया से जुड़े रहे हैं, लेकिन वह मूलतः कथाकार हैं। पत्रकारिता से उनके कथाकार ने बहुत कुछ पाया है, इसलिए कथा में भी उन्हें अपनी बात कहने के लिए किसी तामझाम की ज़रूरत नहीं पड़ती।

राकेश तिवारी के प्रकाशित ताज़ा संग्रह 'मुकुटधारी चूहा' में कुल सात कहानियां हैं। और हर कहानी को कहने का ढंग जैसे कथा की विषयवस्तु के भीतर से स्वतः ही उपजता चला गया है। सहजता में गंभीर आख्यान कहना एक कला है और इस कला को साधना सहज नहीं है, बहुत कठिन है। इन कहानियों को पढ़ते हुए हमें लगता नहीं कि हम कहानियां पढ़ रहे हैं बल्कि लगता है कि एक भयावह समय के बीच कई ज़िंदगियों के साथ हम भी जी रहे हैं। 'सुबह है और चश्मिश है' में यह रंग कुछ अलग ढंग का है, लेकिन कहानी में कविता और कविता में कहानी पढ़नी हो तो राकेश तिवारी के इस संग्रह की 'अंधेरी दुनिया के उजले कमरे में' प्रवेश कीजिए! आप को भीतर तक हिला देगी यह कहानी जो सचमुच एक बेचैन कर देने वाली कविता ही है! 'ये सन्नाटा, ये आवाज़, चमगादड़ों का भ्रम' यह कतई साबित नहीं करता कि यह कोई भुतहा दास्तान है। यह एक सत्य घटना है, पर सत्य से थोड़ा दूर करार दिए जाने की सारी संभावनाओं से भरी हुई। इस घटना में सबसे स्तब्धकारी युवती का कुर्ता फाड़ना है। अब गुड़गुड़ के साथ छीना-झपटी और युवती के चिल्लाने का स्वर गड्डमड्ड हो रहे थे। बस इतना पता चलता था कि चीख़ने का स्वर ज़नाना है और गुड़गुड़ का मर्दाना। कहीं सचमुच में दिल्ली में तो नहीं हूं समय... जैसे रुक गया है। शायद यह कभी ख़त्म न होने वाली रात थी, जिस रात की कोई सुबह नहीं थी। नहीं, शायद थी क्योंकि अभी-अभी ऐसा लगा कि उसकी चीख़ से अंधेरे की चादर फट जाएगी। शायद यह अंधेरा इसलिए इतना घना है, ताकि वह अपने कुर्ते के बाद अंततः अंधेरे को फाड़ दे।"

'साइलेंट मोड' कहानी की शुरुआत बड़े ही रहस्यमय ढंग से होती है और जैसे-जैसे आप आगे पढ़ते जाते हैं यह रहस्य अनेक स्तरों पर और गहरा होता जाता है। इस कहानी को पढ़ते हुए आप भी सोचने पर मजबूर हो जाएंगे कि क्या अनुभव की गटरी का वज़न बढ़ते जाने से आदमी इतना अतिचौकन्ना होता चला जाता है कि अघटित की भी कल्पना करने लगता है और अतिकल्पनाशीलता परेशानी का सबब भी बन सकती है। 'अंजन बाबू हंसते क्यों हैं' दफ़्तरी जीवन की एक आम कथा है, लेकिन प्रस्तुतिकरण इतना मनोरम मुहावरेदार है कि पढ़ते हुए लगता है कि तंगी और आर्थिक दबावों के बीच जीवन से फुर्र हो चुकी हंसी की चाह में हम किस कदर डूब-उतरा रहे हैं कि हमारा हंसना भी ईर्ष्या, भय और भीतर के रोने को उजागर करने लगता है। 'अंधेरी दुनिया के उजले कमरे में' की तरह ही इस संग्रह की तीन और कहानियां विशेष महत्व की हैं—'मुर्ग़ीख़ाने की औरत', 'मुकुटधारी चूहा' और 'कठपुतली थक गई'। 'मुर्ग़ीख़ाने की औरत' एक ऐसे गांव के नामर्दों की कहानी है जो अपना इलाज कराने की बजाय सारा दोष औरतों पर मढ़ते हैं। कभी उन्हें बांझ घोषित करके दूसरी औरत ले आते हैं। कभी कहते हैं कि यह गांव ही अभिशप्त है। अंत में सर्वसम्मत राय यह बनती है कि सिर उठाकर जीना होगा। सम्मान से जीने के लिए इस बात को दबाना होगा बल्कि ऐसे दफ़नाना होगा कि नपुंसकता के अवशेष हज़ारों साल बाद खुदाई में भी न मिल। 'मुकुटधारी चूहा' कहानी एक सोलह साल के लड़के मुक्की के हाथों अनजाने में हुए एक चूहे की मौत के इर्दगिर्द घूमती हुई सांप्रदायिक अराजकता के उस विकट संकट की ओर इशारा करती है, जिसकी छाया आज भारत ही नहीं, दुनिया के तमाम देशों पर मंडराती हुई देखी जा सकती है। 'कठपुतली थक गई' कहानी हमें बाज़ार के झांसे में फंसे आर्थिक रूप से कमज़ोर तबकों के जीवन की एक ऐसी त्रासदी से रूबरू कराती है जिसके चंगुल से बचना अब आसान नहीं रहा है। राकेश तिवारी की हर कहानी के भीतर अनेक कहानियों के छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे हुए हैं। भाषा पर उनका ग़ज़ब का अधिकार है। दिल को छू जाता है। ये कहानियां अपने-आप में इतनी खुली हुई हैं कि सहृदय पाठक के दिल में सीधे उतरती चली जाती हैं।

मुकुटधारी चूहा (कहानी-संग्रह)
राकेश तिवारी, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ : 132, मूल्य : 275 रुपये।

सौहार्द को समर्पित उपन्यास

मुरारीलाल शर्मा

'कथाकार व्यंग्यकार योगेन्द्र शर्मा का उपन्यास 'रुहेलखंड का गांधी', अपने-आप में अनेक विशेषताएं समेटे हुए है। हिंदी उपन्यास अधिकांश संपन्न सवर्ण हिंदुओं की पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं। दलितों, पिछड़ों व मुस्लिम परिवेश पर लेखन, अपेक्षाकृत बहुत कम रहा है। धार्मिक संकीर्णता, सांप्रदायिकता से पीड़ित व संत्रस्त समकालीन समाज के समक्ष यह उपन्यास इस्लाम का उदारवादी चेहरा पेश करता है। विचारणीय है कि अकबरे-आज़म, शाहज़ादा दारा शिकोह, टीपू सुल्तान, रसखान, रहीम, अमीर खुसरो, मौलाना आज़ाद, खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खान की रहनुमा. ई में मुस्लिम समाज का एक बड़ा तबका, हिंदुओं को गले लगाने को आतुर रहा है। बरेली के मरहम जनाब फ़ज़लुर्रहमान साहब, उर्फ चुन्ना मियां, इसी माला के एक और मोती थे। उनके जीवन पर आधारित यह उपन्यास हिंदू-मुस्लिम सौहार्द को समर्पित है।

अंधेरी रात में, सुनसान गली में, उपन्यास का नायक, भूखा-प्यासा, ग्यारह वर्षीय बेसहारा चुन्ना, अपने बंद पुश्तैनी मकान के आगे निरुपाय खड़ा था, जिसकी चाभी पड़ोसी गुजराती चच्चा के पास थी। चच्चा ने उसे भतीजे जैसा स्नेह दिया, कारोबार के लिए दो कलदार मलिका विक्टोरिया वाले सिक्के दिए और सलाह दी, "पहले खुद की मदद करना, फिर दूसरों की मदद करना।" वहीं चुन्ना एक दिन अपनी लगन, परिश्रम और व्यवहारकुशलता से सेठ फ़जलुर्रहमान बन गया। यहां तक कि जिले के तत्कालीन कलैक्टर नीदर सोल साहब ने उसे खान बहादुर का खिताब देने की पेशकश की। चुन्ना मियां जिनका मुंशी ऊधो नारायण जैसे कई कांग्रेसियों से प्रेम-व्यवहार था, ने उत्तर दिया कि उन्हें खुशी होगी यदि उन्हें राय बहादुर का ख़िताब अता किया जाए। कलक्टर समझ गया—"ओह नाट इंटरेस्टैड...।" चुन्ना मियां के शीतल प्रसाद से भी छोटे भाई जैसे रिश्ते थे। यद्यपि वह उनके घर का पानी भी नहीं पीते थे, परंतु बेटे के विवाह संबंध में उन्हें 'वर के ताऊ' का सम्मान मिला। अनपढ़ चुन्ना मियां ने, अनेक ग़रीब विद्यार्थियों की फ़ीस भरी, बरेली कॉलेज, इस्लामिया कॉलेज आदि अनेक शिक्षा संस्थाओं को दिल खोलकर दान दिया। भले ही वह स्वयं मोटा कपड़ा (ठटुआ) पहनते, पैरों में टायर, सोल की चप्पल पहनते, परंतु ज़कात या दान देते समय वह कंजूस से दरिया दिल हो जाते थे।

गुजराती चच्चा को उन्होंने उधार के दो रुपये, बार-बार लौटाने चाहे, परंतु वे ज़िंदगी भर टालते रहे। दरअसल, वह एक चचा की भतीजे को आशीर्वाद या बरकत की दो बूंदें थीं, जिसने उन्हें कहां से कहा पहुंचा दिया, और मियां ने चचा की अर्थी में कांधा देकर,

उनके चौथे बेटे का फ़र्ज़ अदा कर दिया। विडंबना यह, कि देश को स्वतंत्रता तो मिली परंतु शरणार्थियों के लहू से नहायी हुई। मियां निरीह लुटे-पिटे शरणार्थियों के कत्लेआम, बेबस महिलाओं पर हुए अत्याचार से द्रवित थे। उन्होंने शरणार्थी शिविरों में जा-जाकर भरपूर सहायता की। उनके एक पंजाबी किराएदार ने, बिना उनकी इजाज़त लिए, मकान के आगे की ख़ाली जगह पर टिन डलवा कर, सत्संग का आयोजन शुरू कर दिया था। ग़लतफ़हमीवश मियां ने उसे बेदख़ली का नोटिस दे दिया। इस सिलसिले में संत हर मिलापी जी से एक छोटी-सी मुलाक़ात ने उनका हृदय परिवर्तन कर दिया। उन्होंने न केवल सारी भूमि मंदिर निर्माण हेतु सहर्ष दान कर दी, अपितु मंदिर निर्माण हेतु आर्थिक दान तो दिया ही, मिट्टी-गारा ढोकर श्रमदान भी किया। उक्त लक्ष्मीनारायण मंदिर को, जिसका लोकार्पण देश के प्रथम राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद के द्वारा हुआ, शहर बरेली की जनता अब भी चुन्ना मियां के मंदिर के नाम से जानती है। मंदिर के अतिरिक्त एक गुरुद्वारे के निर्माण में भी मियां का तन-मन-धन से सहयोग रहा। अपने पोते के जन्मदिन पर पंडित राधेश्याम कथावाचक के माध्यम से सत्य नारायण की कथा करवाई। इस प्रकार की मियां से संबंधित घटनाएं, शहर बरेली में 'टाक ऑफ दि टाउन' रहीं। सन् 1857 से 1968 के कालखंड की अवधि में शहर बरेली में जंगे आज़ादी संबंधित अनेक गाथाएं व ऐतिहासिक चरित्र यथा गांधीजी, पंडित नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, पुरुषोत्तम दास टंडन, नवाब खान बहादुर खां, राधेश्याम कथावाचक आदि उपन्यास की शोभा बने हैं। जिला जेल बरेली की अनेक घटनाएं भी उपन्यास में दर्शनीय हैं।

उपन्यास में जहां लेखक हिंदू रूढ़िवादियों पर एक पात्र के माध्यम से व्यंग्य करता है। वहीं मुस्लिम कट्टरपंथियों पर निशाना साधते हुए मियां कहते हैं, "इस्लाम को मैं दुनिया का सबसे अच्छा मज़हब मानता हूं, लेकिन क्या ऐसे मज़हब की तरक्की के लिए किसी ख़ौफ़ की जरूरत है।" रुहेलखंड के इस गांधी के व्यक्तित्व की ऊंचाई का बयान करता एक ऐतिहासिक पात्र प्रो. कृपानंदन का कथन, "दादा, आप इस्लाम के गुनाहगार हो सकते हैं, क्योंकि आपके मज़हब में बुत परस्ती कुफ़्र है, पर इंसानियत पर क़र्ज़ है आपका।" परंतु उपन्यास बताता है कि सांप्रदायिक सौहार्द का यह विस्मृत नायक, एक आला मुसलमान तो था ही, एक भला इंसान भी था। मुस्लिम परिवेश के इस उपन्यास में पवित्र कुरान की कतिपय शिक्षाप्रद कहानियों व उक्तियों को समाहित किया गया है।

रुहेलखंड का गांधी (उपन्यास),
योगेन्द्र शर्मा
प्रकाशक : नमन प्रकाशन,
423।/1, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

संपर्क : एम.आई.जी.-24, ए.डी.ए. कॉलोनी, सासनी गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)

तनकर मन से लिखा हुआ व्यंग्य

अशोक मनोरम

व्यंग्य-रचना करना तलवार की धार पर चलना है। यों तो हिंदी में कई व्यंग्य लेखकों ने झंडे गाड़े हैं, पर पाठकों के बीच कुछ ही लोग नेकनाम रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक योगेंद्र शर्मा की कई महत्वपूर्ण पुस्तकों में से एक है। यहां कुल 51 शीर्षकों के माध्यम से सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक व्यंग्य का सृजन किया गया है। व्यंग्य से नीति को जोड़कर कोई विरले ही मनभावन रचना लिख सकता है, पर नीति के ऊपर कटाक्ष करके व्यंग्य धारदार बनाई जा सकती है। व्यंग्य का अर्थ होता है, समाज में फैली कुरीतियों को हंस-हंस कर समाज के नुमाइंदों को चुभोना। जब कुछ चुभेगा तो टीस भी होगी। जब टीस होगी तो अन्य लोग भी प्रभावित होंगे। जब कोई प्रभावित होगा तो वह प्रभावित जनों का समूह बनाएगा और समूह बनेगा तो कुछ व्यंग्य के माध्यम से सोचने को मजबूर भी होंगे और कभी-कभी आंसू भी बहाएंगे। एक रचना है 'रिश्वत की तासीर'। इसका मतलब है–'हर जगह रिश्वत ही रिश्वत, कोई मिल तो ले...।' इस व्यंग्य को शर्मा जी ने बड़े ही मन से तनकर लिखा है। धन कमाने की चाह झलकती है, और स्टाइल देखकर चचा सक्सेना (स्वर्गीय के.पी. सक्सेना) की याद आ जाती है। प्रकारांतर से इस रचना के बारे में कहा जा सकता है कि रचना अच्छी है। 'शांति के पुजारी हैं बुश साहब!' इसके तहत शांति का भोंपू वही बजाता है, जो ज्यादा कलहप्रिय होता है। व्यंग्य के मानदंड पर यह रचना बेहतर दिखती है। व्यंग्य का एक उपादान है, 'गंजापन'। गंजा होना जहां व्यक्ति की समृद्धि का परिचायक है, वहीं यह आज की राजनीति में आरक्षण का उपक्रम भी हो गया है। यह रचना 'गंजों को मिले आरक्षण' के माध्यम से साफ़ झलकता है। मांग की कोई परिभाषा नहीं होती। मांग कैसी भी हो, वह हमेशा जायज़ ही होती है। नाजायज़ तो वे बातें होती हैं, जिन पर अमल नहीं किया जाए। भला कोई मांग ऐसी भी हो सकती है, जिस पर अमल न हुआ हो। कुछ लोग मांग को नाजायज़ मानते हैं, पर नाजायज़ कहते कभी नहीं। 'गंजों के द्वारा आरक्षण की मांग' के प्रति कई सारे तर्क हैं और कुशलता के साथ उन तर्कों की कसौटी भी अच्छी है। रचना स्तरीय है, सो पठनीय भी। भक्ति आध्यात्म सिखाती है। भक्ति सहनशीलता से रू-ब-रू कराती है, भक्ति व्यक्ति को बहुप्रतिभा-संपन्न भी बनाती है। अध्यात्म के द्वारा आप अपनी नैतिकता पर लगे धब्बे को धो-पोंछ सकते हैं–आप अगर किसी व्यक्ति की प्रशंसा लीक से हटकर करते हैं, तो दुनिया आलोचना करेगी, पर जब आप उसमें छिपे अध्यात्म की व्याख्या करेंगे तो आप अपनी बात को सर्वमान्य बनाने में सफल हो जाएंगे, है न अध्यात्म का प्रभाव और 'ईश भक्ति का नया फंडा'। एक अन्य रचना है 'फिल्म सुपरहिट हो, देश जाए तेल लेने'। सामाजिक जीवन हो अथवा व्यापारिक, सब जगह केवल सफलता को ही पूजा जाता है। फिल्म चाहे कैसी भी हो अगर किसी कारण से चर्चा में आ जाए और सुपर हिट हो जाए तो सबों की बल्ले-बल्ले हो जाती है। क्या नायक-क्या नायिका, क्या निर्माता क्या दर्शक...। अगर कोई दर्शक अव्वल हो जाता है, तो उसके भी पांव ज़मीन पर नहीं पड़ते हैं। वह सबों से कहता फिरता है–मैंने तो यह फिल्म 'फर्स्ट शो, फर्स्ट डे देखी है....।' इसके अलावा और भी दर्जन-भर रचनाएं अच्छी हैं, पर कुछ अन्य रचनाएं दाल-भात में कंकड़ भी बन रही हैं। एक ही विषयवस्तु पर एक से अधिक रचनाएं थोड़ी खटकी। भाषा अच्छी है, पर प्रयोग करने में थोड़ी सावधानी चाहिए थी, जो नहीं दिखती है।

जुगाड़ से चलता देश (व्यंग्य-संग्रह)
योगेंद्र शर्मा
प्रकाशक : नमन प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002

संपर्क : आर.जेड-31, ब्लॉक-एक्स, कैप्टन रिसाल सिंह मार्ग, 28 फुटा रोड, न्यू रौशनपुरा, पपरावट, नजफगढ़, नई दिल्ली-110043

यथार्थ और त्रासदी का राग

सुरेश कुमार

युवा कथाकार हरे प्रकाश उपाध्याय का भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित नवीनतम उपन्यास 'बखेड़ापुर' उन सिद्धांतों और दावों को झूठा और खोखला साबित करता है, जिनमें यह कहा जाता कि 'भारत की आत्मा' गांव में बसती है। गांव में यातना, ग़रीबी, भुखमरी, शोषण और दबंगई निवास करती है। दलित और स्त्री पर हुए अत्याचार को बड़ी मार्मिकता के साथ उठाया है। वे ग्रामीण जीवन के यथार्थ को गहराई में जाकर पकड़ते हैं। उपन्यास में कथा के केंद्र में बखेड़ापुर है। गांव में दो टोले–दक्षिण

हिस्से में रेज (नान्ह) और पूरब में बड़ टोल। प्रत्येक जाति और धर्म के लोग रहते थे लेकिन जाति और वर्ण के चलते गांव में एकता नहीं थी। बखेड़ापुर गांव में स्कूल भी है, 'रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय बखेड़ापुर में कुल तीन मास्टर थे, चार छोटे-छोटे कमरे और आठ कक्षाएं में पढ़ने वाले कुल सौ के करीब छात्र होंगे। जो भेड़-बकरियों की तरह कमरों में भरे रहते।' लेखक ने बिना किसी लागलपेट के भारत के सरकारी विद्यालयों का सच कह दिया।

बखेड़ापुर कथा सुदामा और धीरू के दोस्ती से शुरू होती है। सुदामा और धीरू बचपन से ही लंगोटिया यार थे और दोनों रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय में पढ़ते थे। सब कुछ समान होते हुए भी, दोनों की जाति अलग थी। एक दिन सुदामा ने धीरू के घर पानी पीकर गिलास में छोड़ दिया, बचे हुए पानी को धीरू ने भी पी लिया। धीरू की मां को सुदामा का जूठा पानी पीना इतना नागवार लगा कि धीरू को अकेले में लेकर हिदायत दी दलित जाति के लोगों के जूठ पानी पीने से धरम नष्ट हो जाता है। निष्कर्ष यह निकाला जाए कि हिंदू पुरुष ही नहीं उनकी स्त्रियां भी छुआछूत में विश्वास रखती हैं। घर के बाहर उदारवाद का ढिंढोरा पीटा जा रहा है, और घर के अंदर कट्टरवाद चल रहा है। इस घटना के द्वारा लेखक बता रहे हैं कि आज भी गांव 'जाति व्यवस्था', 'वर्ण व्यवस्था' और छुआछूत की प्रयोगशाला है। उपन्यास में पचमा मास्साब एक ऐसे अध्यापक हैं, जिन्हें शिक्षा को रसातल में ले जाने का श्रेय दिया जाना चाहिए। बखेड़ापुर में रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय में पचमा मास्साब पढ़ाते हैं। उनका रोज़ाना का काम था कि स्कूल की प्रार्थना के बाद अपनी खेती का काम देखने चले जाते थे। स्कूल के हेडमास्टर तो कभी-कभार ही स्कूल आते थे। जब कभी वे आते तो छात्रों को पढ़ाने के बजाए उनसे अपनी सेवा करवाने में लग जाते थे। वे स्कूल की छात्राओं से भी सेवा करवाने का काम करते थे। 'हेड सर' के इस कृत्य का इसी स्कूल के उगना मास्साब खुलकर विरोध करते थे। इससे अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि इस तरह के अध्यापक स्त्री-शिक्षा में कितने बड़े बाधक हैं। ऐसे शिक्षकों के रहते ना जाने कितनी लड़कियों को अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ती है। हरे प्रकाश उपाध्याय ने रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय के साथ भारत के विद्यालयों का सच कहा है। स्त्री-शिक्षा और भारत सरकार का कार्यक्रम सर्वशिक्षा अभियान के फ़ेल होने का कारण भी बता गए हैं। उगना मास्साब के ट्रांसफर होने के बाद संगीता मैडम रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय में उनकी जगह पर आई। वे एक आधुनिक और महत्वाकांक्षी महिला हैं। हरे प्रकाश उपाध्याय ने स्त्री चिंतकों को आगाह किया है कि संगीता मैडम जैसी लेखिकाओं ने 'स्त्री-विमर्श' को 'देह विमर्श' में तब्दील कर दिया है। अब स्त्री चिंतकों की जिम्मेदारी है कि ऐसी लेखिकाओं के लेखन का बहिष्कार करें। 'बखेड़ापुर' उपन्यास में लेखक ने दलित-समस्या को व्यापक स्तर पर उठाया है। लेखक दलित और उसकी स्त्रियों की सबसे गहरी यातना और सबसे बड़ी पीड़ा को इस उपन्यास में दर्ज कर गए हैं। 'बखेड़ापुर' उपन्यास यथार्थ के धरातल पर रचा गया, भारत के प्रत्येक गांव की त्रासदी का राग है। उपन्यास वर्तमान की वास्तविक घटित तमाम घटनाओं का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत करता है। लेखक ने सामंती अत्याचार को उजागर किया है।

बखेड़ापुर

हरे प्रकाश उपाध्याय

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

मूल्य : 175 रुपये (सजिल्द)

संपर्क : 68, बीरबल साहनी शोध छात्रावास, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ-226007 (उ.प्र.)

अपने समाज का कथाकार

पंकज चौधरी

हिंदी कविता के गांधी भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि 'जैसा मैं बोलता हूं वैसा तू लिख, और उससे भी बढ़कर वैसा तू दिख'। संदीप मील की कहानियों को यदि आप पढ़ेंगे तो पाएंगे कि भवानी प्रसाद मिश्र की इन काव्य पंक्तियों को उन्होंने अपनी कहानियों में पूरी तरह चरितार्थ कर दिया है। वह एक चलता-फिरता, जीता-जागता कथाकार है। उसके पास कहानी कहने के लिए नितांत अपनी भाषा है, अपने मुहावरे हैं, अपना सलीका है, अपना बंजारा संस्कार है और सबसे बढ़कर राजस्थान का अपना परिवेश है, तो उसके कैरेक्टर भी अपने हैं। इसीलिए उनके यहां कृत्रिमता लेशमात्र भी नहीं है। चारों ओर उसके यहां प्राकृतिकता ही प्राकृतिकता है। संदीप मील राजस्थान के सीकर जिले से आते हैं इसलिए उनकी अधिकांश कहानियों के प्लॉट भी वहीं से बनते हैं। संदीप मील जैसा विचारों से आधुनिक और प्रगतिशील कथाकार जब जाटों के सामंती ठाठ-बाट, सोच-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा का वर्णन करने लगता है तो कहानी का कंट्रास्टी और तनाव भी देखते ही बनता है। कथाकार संदीप के यहां जो जाट कैरेक्टर आते हैं वे सभी के सभी खाप पंचायतों के फ़रमानों पर चलते हैं, वहां कोई बदलाव हुए ही नहीं हैं या अभी भी वहां कबीलाई तौर-तरीका ही पूरी तरह से हावी है। सीकर जैसी जगह के जाटों के यहां इतना बदलाव तो जरूर हुआ है कि अब वहां से भी लड़कियों को पढ़ने के लिए जयपुर या दिल्ली जैसे आधुनिक वातावरण के शहरों में भेजा जाता है लेकिन यह बात अलग है कि उनकी शादियां अभी भी मां-बाप या समाज की मर्ज़ी से ही होती हैं। संदीप की कहानी की नायिका की भी शादी उसके मां-बाप अपनी मर्ज़ी से तय कर देते हैं लेकिन यहां नायिका ग़ायब हो जाती है। नायिका अंत-अंत तक अपने मां-बाप के फ़ैसले का विरोध करती है और बात जब बनते नहीं दिखती है तो उसे मजबूर होकर अपने को ग़ायब करवाना पड़ता है। नायिका का अन्य प्रसंगों में भी विद्रोही तेवर देखने को मिलता है। संदीप ने इस नायिका को भक्तिकालीन कवयित्री मीरा से जोड़कर देखा है और इसे 'दूजी मीरा' का नाम दिया है। कथाकार अपनी इस नायिका के माध्याम से जाट समाज को एक मैसेज देने का काम कर रहे हैं कि ऐसा होना अवश्यंभावी है।

जाटों को लक्ष्य करते हुए संदीप की दूसरी कहानी है—'एक प्रजाति हुआ करती थी जाट।' इस कहानी के ज़रिए संदीप यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि खापों के मुखिया चौधरी जब बेलगाम हो जाते हैं तो किस तरह से वे खुदा और दिमाग़ को भी फांसी पर चढ़ा देने का फ़रमान जारी करते हैं। यह एक प्रतीकात्मक कहानी है और चौधरियों की बर्बरता और तालिबानी मानसिकता का पर्दाफ़ाश करती है। इस कहानी को पढ़ते हुए भारतेंदु के प्रसिद्ध नाटक 'अंधेर नगरी' की याद हो आती है, जिसमें राजा के पास बकरियों की मौत के जिस किसी भी संदिग्ध गुनहगार को पकड़कर लाया जाता है, राजा सबको फांसी पर चढ़ा देने का हुक्म तामील करता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान में खापों के फ़रमानों पर जिस तरह से आंख मूंदकर अमल किया जाता है उससे तो अंधेर नगरी का ही पता चलता है। पूरी कहानी संवाद शैली में है और एक ज्वलंत नाटक का आभास देती है। 'झूठी कहानी', 'खोट', 'जुस्तजू', 'लुका पहलवान', 'नुक्ता', 'टांगों पर ब्रेक', 'वहम' और 'थू' भी घूमा-फिराकर जाट समाज की ही कहानियां हैं। इन कहानियों में जाट समाज अपनी विविध छवियों के साथ उपस्थित हुआ है।

संदीप छोटी-छोटी कहानियां लिखते हैं। जाट समाज की भी और जाट समाज से इतर राजपूत समाज की भी, ब्राहमण समाज की भी और दलित समाज की भी। संदीप मील की रीढ़ फिलहाल मज़बूत है। इसके अलावा भी बहुत सारे तत्व हैं जो कहानी को जीवंतता प्रदान करते हैं। आज हिंदी कहानी को हरेक समाज के कथाकारों की दरकार है। हिंदी कहानी की यात्रा अभी तक दलित कथाकार, आदिवासी कथाकार और स्त्री कथाकार तक ही पहुंची है।

दूजी मीरा (कहानी-संग्रह)

संदीप मील

प्रकाशक : ज्योतिपर्व प्रकाशन, 99 ज्ञानखंड-3, इंदिरापुरम, ग़ाज़ियाबाद-201012, मूल्य : 129 रुपये

संपर्क : द्वारा जीपी वर्मा, 348/4, गोविंदपुरी, कालकाजी, नई दिल्ली-110019

माध्यमिक (10वीं) व उच्चतर माध्यमिक (12वीं) पाठ्यक्रमों के असफल विद्यार्थियों के लिए प्रवेश जारी

01.05.2015 से 30.06.2015 तक



अभी सोचें

आपको अपने कीमती साल बचाने का सुनहरा मौका

परीक्षा अक्टूबर 2015 में

परिणाम 10 दिस. 2015 तक

NIOS द्वारा स्ट्रीम–2 के अंतर्गत माध्यमिक (10वीं) व उच्चतर माध्यमिक (12वीं) पाठ्यक्रमों हेतु अपने पोर्टल www.nios.ac.in के जरिये ऑन–लाइन प्रवेश की सुविधा।

मान्यता प्राप्त बोर्डों के असफल विद्यार्थियों के लिए

पात्रता मापदंड : किसी मान्यता प्राप्त परीक्षा बोर्ड की माध्यमिक अथवा उच्चतर माध्यमिक स्तर की सार्वजनिक परीक्षा के ऐसे शिक्षार्थी जो परीक्षा में बैठे हों लेकिन उत्तीर्ण न हो सके हों अथवा परीक्षा में बैठने के पात्र हों लेकिन परीक्षा न दे सके हों। मूल बोर्ड के अनुरूप सिर्फ विषय संयोजन में प्रवेश की अनुमति है। आवेदन पत्र के साथ अंक तालिका/प्रवेश पत्र की मूल प्रति आवश्यक है।

सहूलियतें : **ट्रांस्फर ऑफ केडिट (टीओसी)** : मान्यता प्राप्त बोर्डों से अधिकतम 2 उत्तीर्ण किये गये विषय असफल विद्यार्थियों के लिए

NIOS में सार्वजनिक परीक्षा : इस स्ट्रीम के शिक्षार्थी अक्टूबर–नवम्बर 2015 मे सार्वजनिक परीक्षा एवं उसके बाद ऑन डिमांड परीक्षा/सार्वजनिक परीक्षा में शामिल होने के लिए पात्र होंगे।

NIOS के सीधे ऑडियो प्रसारण कार्यक्रम में भाग लेने के लिए NIOS की वेबसाइट पर मुक्त विद्या वाणी क्लिक करें। विस्तृत विवरण, जैसे विषय, शुल्क, योग्यताएं, NIOS के अध्ययन केन्द्रों की राज्यवार सूची, NIOS के क्षेत्रीय केन्द्रों के पते तथा **www.nios.ac.in** पर जाएं अथवा शिक्षार्थी सहायता केन्द्र (एलएससी) के टॉल फ्री नं **1800-180-9393** ई–मेल : **lsc@nios.ac.in** पर संपर्क करें।

शुल्क विवरण

पाठ्यक्रम	पंजीकरण शुल्क	परीक्षा शुल्क	टीओसी
माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक (स्ट्रीम–2 के अंतर्गत)	₹350/-	सिद्धांत के लिए ₹150/- प्रति विषय इसके अलावा प्रयोग के लिए ₹70/- प्रति विषय	₹100/- प्रति विषय

उपर्युक्त शुल्क के अतिरिक्त ₹ 50/- (केवल पचास रूपये) ऑनलाइन स्ट्रीम–2 के आवेदन फॉर्म के शुल्क के रूप में जोड़ा जाएगा।

- **स्ट्रीम–3 एवं 4 के अंतर्गत ऑनलाइन प्रवेश** : ऐसे असफल विद्यार्थियों के लिए वर्ष भर खुला है जो माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रमों में 'जब चाहो तब परीक्षा' प्रणाली के द्वारा परीक्षा देना चाहते है।
- NIOS वर्चुअल ओपन स्कूलिंग (वीओएस) के माध्यम से आईसीटी एप्लीकेशन एवं रूरल टैक्नॉलाजी में ऑनलाइन पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है। विस्तृत जानकारी हेतु NIOS की वेबसाइट **www.nios.ac.in** की वीओएस लिंक पर क्लिक करें।

सचिव

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार के अधीन एक स्वायतशासी संगठन)
ए-24/25, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर-62, नोएडा-201309, गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)
(सीबीएसई/सीआईएससीई के समकक्ष भारत सरकार का परीक्षा बोर्ड) वेबसाइट : **www.nios.ac.in**

विद्यामनन् सर्वमनं प्रधानम्

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

विश्व की सबसे बड़ी मुक्त शिक्षा प्रणाली

AH-52/2015

डाक तार पंजीयन सं. डी एल (एस) - 05/3222/2015-17 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली से पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डी एन)-49/2015-17

Postal Regn. No. DL (S) - 05/3222/2015-17
Licenced U (DN) - 49/2015-17 to post without pre-payment at RMS Delhi

दिल्ली डाक **आर एन आई 701/57**
Delhi Postal **RNI 701/57**

● 10 जून 2015 को प्रकाशित ● 21-22 जून 2015 को डाक द्वारा जारी

वार्षिक मूल्य : ₹ 100



प्रकाशक व मुद्रक : डॉ. साधना राउत, अपर महानिदेशक एवं प्रभारी द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए एजूकेशनल स्टोर्स, गाजियाबाद (उ.प्र.) से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : राजेन्द्र भट्ट, संपादक : फरहत परवीन